गंगाप्रसाद विमल का सृजनात्मक साहित्य : एक अध्ययन

GANGAPRASAD VIMAL KA SRIJANATMAK SAHITYA : EK ADHYAYAN

THESIS
SUBMITTED TO
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

BY

रमादेवी पी. आर.
REMADEVI P. R.

Dr. M. EASWARI
(Professor & Head)
Department of Hindi

Dr. N. MOHANAN
(Professor)
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022
1999

Certificate

This is to certify that this Thesis is a bonafied record of work carried out by **Smt. Remadevi. P.R.** under my supervision for Ph.D. (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. N. MOHANAN
Supervising Teacher

Professor
Dept.of Hindi
Cochin University of
Science And Technology
Kochi-682022

Kochi-692 022
10.12.1999

Declaration

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of **Dr. N. Mohanan**, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Cochin-682 022 and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any university.

Remadevi P.R.

Department of Hindi
Cochin University of Science Technology
Cochin-682 022.

पुरोवाक्

रचना की परख उसकी समाज सापेक्षता में है । रचनाकार दरअसल रचना के ज़रिए बृहत्तर जन-जीवन की वास्तविकता को ही संप्रेषित करता है, भले ही उसमें वैयक्तिकता का अंश क्यों न हो ? स्वाधीनता परवर्ती हिन्दी साहित्य की सभी विधाएँ इस खासियत से भरपूर हैं । इस समय के साहित्य ने मानव जीवन को उसकी समग्रता में संप्रेषित करने का कार्य किया है । आधुनिकता के प्रखर प्रवाह के उपरान्त की रचनाएँ यह उद्घोषित करती हैं कि रचनाकार का धर्म अपने समय के साथ सार्थक संघर्ष करना ही है । वैसा साहित्य ही प्रासंगिक बन पाता है और काल का अंकन करने में कामयाब निकलता है ।

सन् साठ के बाद के रचनाकारों में गंगाप्रसाद विमल की प्रासंगिकता इसलिए उल्लेखनीय बनती है कि उन्होंने अपनी रचना धर्मिता के माध्यम से अपने समय को समूर्त करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । विमल का साहित्य निस्सन्देह अपने समय के साथ सार्थक संवाद का साहित्य ही है । पर पता नहीं क्यों इस प्रतिभा का नज़र अन्दाज़ किया गया ? उनकी रचनाओं पर कारगर अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है । उनकी रचनाओं से गुज़रते समय ऐसा लगा कि यह रचनाकार तथा उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य जगत केलिए अनुपेक्षणीय है । उनकी देन चिरस्मरणीय है । अहिन्दी

प्रदेश में जनम लेकर किसी भी हिन्दी प्रदेशी साहित्यकों का सानी करने योग्य रचनाएँ करके उन्होंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सेवा की है । अत: उनकी साहित्यिक साधना का अन्वेषण एवं अध्ययन अनिवार्य महसूस हुआ । इसका विनम्र परिणाम है प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "गंगाप्रसाद विमल का सृजनात्मक साहित्य : एक अध्ययन" । इसके पाँच अध्याय हैं ।

पहला अध्याय है "वैयक्तिक एवं सृजनात्मक सन्दर्भों की तलाश" । इसमें विमलजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दिया गया है । "जीवन की अन्तरंगता की पहचान - कविता" शीर्षक दूसरा अध्याय विमलजी की कविताओं पर केन्द्रित है । इसमें उनके संपूर्ण काव्य का प्रवृत्तिगत अध्ययन किया गया है । तीसरा अध्याय है "जीवन की समग्रता का सम्प्रेषण - उपन्यास" । इसके अन्तर्गत विमलजी के उपन्यासों का विश्लेषण है । "खण्ड खण्ड सत्य का साक्षात्कार - कहानी" चौथा अध्याय है । इसमें विमल की संपूर्ण कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है । पाँचवाँ अध्याय है "रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विमल का सृजनात्मक साहित्य" । इसमें कविता, उपन्यास और कहानी के संरचनात्मक पक्ष के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है । अन्त में उपसंहार में विमल की साहित्यिक उपलब्धियों पर विचार किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो॰डा॰ एन॰मोहनन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ । उनके बहुमूल्य सलाहों एवं सुझावों से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है । इस मंजिल तक पहुंचने के लिए उन्होंने सदैव मुझे प्रेरणा देती रही है । उनके प्रति मैं सदैव आभारी हूं ।

विभाग की अध्यक्षा डॉ॰एम॰ ईश्वरी जी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ कि वे निरन्तर मुझे प्रेरणा देती रही है ।

डॉ॰ए॰ अरविन्दाक्षन जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । उन्होंने समय समय पर मुझे अपने बहुमूल्य सुझावें देकर इस अध्ययन को सार्थक बनाने में काफी मदद की है ।

मेरे अन्य गुरूजनों के प्रति भी मैं आभारी हूँ । उनकी प्रेरणाओं ने ही आखिर मुझे इसके काबिल बनाया था ।

सामग्री संकलन से लेकर प्रबन्ध की पूर्ति तक डॉ॰ गंगाप्रसाद विमलजी तथा श्री॰ईश्वरचन्द्र मिश्रजी ने जो सद्भाव दिखाया है उस को मैं इस सन्दर्भ में कृतज्ञता के साथ स्मरण कर रही हूँ ।

हिन्दी विभाग के कार्यालय तथा पुस्तकालय के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ कि वे सब मेरे इस प्रयत्न में प्रेरणा देते रहे हैं ।

आखिर में अपने प्रिय मित्रों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ कि वे इस ऊबड-खाबड रास्ते में मुझे निरन्तर हिम्मत देते रहे हैं ।

यह शोध प्रबन्ध बडी विनम्रता के साथ विद्वानों के सामने समर्पित कर रही हूँ । इसकी कमियों एवं गलतियों के लिए क्षमा प्रार्थ

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोचिन - 22
तारीख : 10 दिसंबर 1999॰

सविनय

रमादेवी॰ पी॰आर॰

विषय सूची

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय .. .. 1 - 32

वैयक्तिक एवं सृजनात्मक सन्दर्भों की तलाश

शिक्षा के क्षेत्र में : विमल - अध्यापक : विमल - वाग्मी : विमल - पुरस्कारों के घेरे में विमल - विमल : बृहत्तर क्षेत्र में - पत्रकारिता के क्षेत्र में : विमल - रचनाकार : विमल - आलोचक : विमल संपादक : विमल - अनुवादक : विमल - कवि : विमल - विजप - बोधिवृक्ष - इतना कुछ - सन्नाटे से मुठभेड - मैं वहाँ हूँ कहानीकार विमल - अतीत में कुछ - कोई शुरूआत - बाहर न भीतर - इधर उधर खोई हुई थाती - इन्तज़ार में घटना वर्णित कहानियाँ - उपन्यासकार विमल अपने से अलग - कहीं कुछ और - मरीचिका मृगान्तक - निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय .. .. 33 - 112

जीवन की अन्तरंगता की पहचान : कविता

स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति - स्थूल यथार्थ से सूक्ष्म यथार्थ की ओर - सामाजिकता का दूसरा दौर - व्यक्तित्वान्वेषण की छटपटाहट -

पृष्ठ-संख्या

सन्तुलित संवेदना की अभिव्यक्ति - विद्रोह का
कृष्ण पक्ष - हिन्दी काव्यजगत में विमल का
प्रदेश - आधुनिक मानव का अभिशप्त
यथार्थ - अनचाहे यथार्थ का भोक्ता -
अनिश्चितताओं के बीचों बीच -
दिक्भ्रमित पथिकों की पुकार - महानगर में
गुम होता व्यक्ति जीवन - अपने को तलाशने
वाला व्यक्ति - जीवन्त सत्य का वरण -
सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयाम -
अभिशप्त नगर जीवन - आश्रयहीन आम जनता
का यथार्थ - क्रांति की कामना -
राजनीतिक यथार्थ - प्रजातंत्र : प्रजा के
तंत्र - जनशोषक नेता - सत्ता की नृशंसता -
व्यवस्था और आम जनता - सत्ता और
शांति व्यवस्था - मुखौटाधारी नेता -
प्रकृति की पहचान - प्रकृति की विराटता
की स्वीकृति - ऋतुराज का वर्णन - प्रकृति
का मानवीकरण - प्रकृति की संजीवनी
शक्ति - यांत्रिक जीवन और प्रकृति -
प्रकृति में लियमान कविमन - प्रकृति के प्रति
अत्याचार - ऋतुओं में बदलती प्रकृति -
निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय .. .. 113 - 168

जीवन की समग्रता का संप्रेषण : उपन्यास

पृष्ठ-संख्या

हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा -
हिन्दी उपन्यास और गंगाप्रसाद विमल
अपने से अलग - कहीं कुछ और - मरीचिका
मृगान्तक - मध्यवर्गीय मानसिकता -
आर्थिक समस्या - पारिवारिक विघटन
जिजीविषा की अनुगूंज - अस्तित्व की तलाश
निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय .. .. 169 - 201

खण्ड खण्ड सत्य का साक्षात्कार : कहानी

हिन्दी कहानी एक अंतरंग पहचान - हिन्दी
कहानी और विमल - सांस्कृतिक आस्था
का स्वर - शहरी जीवन में गुम होता हुआ
व्यक्ति जीवन - मतलब का रिश्ता और
इनसानियत का कृष्णपक्ष - जनतांत्रिक -
व्यवस्था का पोल - अकेलापन के महाशून्य
से पीड़ित व्यक्ति - जड़ से उखड़े हुए लोगों
की कराह ध्वनि - पारिवारिक
विघटन के इर्द-गिर्द घूमते व्यक्तित्व
निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय .. .. 202 - 245

रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विमल का
सृजनात्मक साहित्य

हिन्दी कविता के संरचना स्तर - विमल के
काव्य में बिम्ब - प्रतीक - अलंकार
छन्द - प्रयोगात्मकता - भाषा -
कथा साहित्य का संरचना पक्ष -
कथ्यगत विशिष्टताएँ - विमल के पात्र
स्वप्न तथा स्मृति चित्रों का प्रयोग -
प्रतीक्षा खोज या तलाश का प्रयोग -
संकेतों का प्रयोग - कथा साहित्य की
भाषा - निष्कर्ष ।

उपसंहार .. .. 246 - 247

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची .. .. 248 - 259

पहला अध्याय

वैयक्तिक एवं सृजनात्मक सन्दर्भों की तलाश

पहला अध्याय

वैयक्तिक एवं सृजनात्मक सन्दर्भ की तलाश

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी गंगाप्रसाद विमल मात्र साहित्यकार ही नहीं बल्कि वे एक कुशल वाग्मी, प्रौढ प्राध्यापक, संपादक एवं सफल प्रशासक भी हैं । उनके व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं । "समय की विडम्बना ने जब लीक से हटकर किसी तलाश में भटकने को विवश" किया तो चिन्तन के क्षेत्र में इन्हें बहुआयामित्व मिला । उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना एवं अनुवाद जैसी विभिन्न विधाओं को अपनी लेखिनी से समृद्ध करने का कार्य किया । मित्रों के सच्चे मित्र, परिचय में अनौपचारिक एवं अपनेपन के धनी विमलजी की वाणी एवं व्यवहार सबको आकर्षित करनेवाले हैं । उनके व्यक्तित्व के गढ़न परिवेश, वातावरण, शिक्षा, संस्कार आदि का बहुत बडा योगदान है ।

प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न हिमालय के एक छोटे से कस्बे में 1939 में उनका जन्म हुआ । विमलजी व्यक्तित्व में धरती की महक, परिवेशगत सुषमा एवं वातावरण की कोमलता

---

1. बहुआयामी व्यक्तित्व गंगाप्रसाद विमल (लेख)
   वल्लभ डोभाल - कल्पांत, 7 फरवरी 1992

समा गयी है, "गंगा के नैहर गढ़वाल की सादगी एवं उस धरती की पावनता में पले पढ़े और बढ़े बचपन के संस्कार, ऋषीकेश के निर्मल वातावरण में पल्लवित हुए और प्रयाग ने उन्हें रूप और रंग दिया, जिसकी महक उनके चरित्र, आचरण तथा व्यक्तित्व में समा गई ।"[1] सालों से अपनी माटी से दूर महानगर में रहने के बावजूद अपनी धरती के प्रति, वहाँ के जनजीवन, परम्परा एवं प्रकृति के प्रति अटूट रिश्ता है । माटी के प्रति उनके अपार स्नेह का प्रमाण यह है कि आज भी वे वहाँ के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं से जुड़कर कार्यरत हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में : विमल

परिवेश के ही समान व्यक्तित्व के गठन में शिक्षा का बड़ा योगदान है । टिहरी गढ़वाल के जूनियर हाइस्कूल में शिक्षा का श्री गणेश किया । इण्टर कालेज ऋषिकेश (1954) एवं के·पी· कालेज इलाहाबाद (1954-56) से माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की । एस·डी· कालेज अम्बाला (1959-60) में स्नातक शिक्षा तथा पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की । 1965 में पंजाब विश्वविद्यालय से पी-एच·डी· की उपाधी से अलंकृत हुए । मेधावी छात्र होने के नाते वे विभिन्न छात्रवृत्तियों एवं पुरस्कारों से सम्मानित हुए । स्नातक स्तर की शिक्षा के दौरान उनको गांधी अध्ययन केन्द्र की छात्रवृत्ति मिली । स्नातकोत्तर स्तर पर वे सर्वोच्च छात्रवृत्ति से लाभान्वित हुए शोधार्थी के रूप में पंजाब विश्वविद्यालय की फेलोशिप प्राप्त हुई ।

1· मेरे भाई, मेरे मित्र - श्री·गंगाप्रसाद विमल (लेख) - डा·नारायणदत्त पालीवाल - कल्पांत 7 फरवरी 1992

अध्यापक : विमल

प्रौढ़ प्राध्यापक के रूप में भी उनको गौरव प्राप्त हुआ । भाषा, साहित्य एवं शोध के क्षेत्र में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । एक प्राध्यापक के नाते "छात्रों के बहुआयामी विकास के लिए प्रयत्न-शील रहे ।"[1] उन्होंने विद्यार्थियों को न केवल पुस्तकीय ज्ञान ही दी, बल्कि उन्हें विभिन्न संगोष्ठियों, सेवाकार्यों एवं शिबिरों के आयोजनों में भी जोड दिया । साहित्यिक, सामाजिक एवं जन-कल्याण कार्यों में उन्होंने छात्रों को संपृक्त रखा । सहयोगियों के साथ उनके संबन्ध बडे ही सौहार्दपूर्ण हैं । 1962 से 1964 तक पंजाब विश्वविद्यालय में विदेशी छात्रों को भाषा एवं साहित्य का शिक्षण देते रहे । इसके बाद 1964 से 1989 तक पच्चीस वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय के ज़ाकिर हुसैन कालेज में अध्यापन कार्य में रत रहे ।

हिन्दी के प्रबल समर्थक विमलजी केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक के पद से सन् 1994 में अवकाश प्राप्त हुए । उन्होंने हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार के लिए अनेक महत्वपूर्ण योजनाएं बनाई हैं । अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को प्रमुखता देते हुए विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन में जुड़े रहे हैं । इन्हीं योजनाओं के माध्यम से भारतीय जनता में एकता की स्थापना इस संस्था का लक्ष्य है । इन्होंने अपनी कार्यशैली के माध्यम से निदेशालय की छवि को निखारने के साथ साथ उसके कार्यक्षेत्र को बहुआयामित्व भी प्रदान किया, "इस से इनके कुशल प्रशासक के रूप का भी परिचय मिला ।"[2]

---

1. मेरे भाई मेरे मित्र श्री·गंगाप्रसाद विमल - डॉ·नारायणदत्त पालीवाल - कल्पांत 7 फरवरी 1992
2. वही

वाग्मी : विमल

कुशल वाग्मी के रूप में भी उनको राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली है । राष्ट्रीय मंच के साथ साथ लंदन, मास्को, जर्मनी, एथेन्स, सोफिया आदि अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी उन्होंने अपनी प्रभावशाली वक्तृत्व का परिचय दिया है । अनेक समारोहों, सम्मेलनों और गोष्ठियों में भाषण, कविता-पाठ, साक्षात्कार, चर्चा एवं व्याख्यान देकर उन्होंने अपने व्यक्तित्व के बहुआयामित्व का परिचय भी दिया है । एक ओर हास-परिहास से पूर्ण मज़ाक और चुटकुलों को महत्व देते हैं तो दूसरी ओर गंभीरता तथा चिन्तन पूर्ण मानसिकता को भी "उनके व्यक्तित्व की उन्मुक्तता एवं गंभीरता एक ही सिक्के के दो पहलू है ।"[1]

पुरस्कारों के घेरे में विमल

साहित्यकार के रूप में वे विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित हुए । अमेरिका के पोयट्री पीपुल पुरस्कार एवं बल्गेरिया यादरोव सम्मान भी प्राप्त हुए । आर्ट यूनिवर्सिटी रोम ने उनको डिप्लोमा से सम्मानित किया । 'आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में' नामक पुस्तक पर उत्तर प्रदेश सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ और "बोधिवृक्ष" नामक कविता संग्रह पर बिहार राज-भाषा-विभाग का पुरस्कार भी ।

विमल : बृहत्तर क्षेत्र में

प्राध्यापक, हिन्दी सेवी तथा कुशल प्रशासक होने के साथ ही साथ संगठन कर्ता, समाज सेवी, संपादक, पत्रकार, लेखक आदि

---

1. आइए डॉ॰गंगाप्रसाद विमल से मिले (लेख) - डॉ॰कमल किशोर गोयनका, कल्पांत 7 फरवरी 1992

विभिन्न रूपों में वे सक्रिय रहे हैं । संस्कृति एवं परम्परा में आग्रह रखनेवाला विमल विभिन्न संस्थाओं का सदस्य है । 1961-62 में वे पंजाब विश्वविद्यालय की सर्वोच्च संस्था लिट्रेरी सोसायटी के सचिव रहे । पंजाब विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् के अध्यक्ष के रूप में 1961-64 तक कार्यरत थे । 1974-75 में वे दिल्ली कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे । "रंगकर्म की संस्था "रंजिका" के 1966 से 1979 तक अध्यक्ष थे, साथ ही साथ 1971 में गढ़वाल साहित्य मण्डल के भी अध्यक्ष थे । आर्थर्स गिल्ड आफ इण्डिया" के सदस्य एवं कार्यकारिणी सदस्य के रूप में भी उन्होंने सेवा की । हिमालय सेवा संघ की कार्यकारिणी के सदस्य, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के बोर्ड ओफ स्टडीज़ के सदस्य, कम्पेरटीव इण्डियन लिट्रेचर एसोसियेशन दिल्ली के संस्थापक सदस्य आदि विभिन्न पदों को अलंकृत करनेवाले विमलजी सदैव क्रियाशील हैं । सेन्टर फार बलोरियन स्टडीज़ के संस्थापक सदस्य, रायल एशियाटिक सोसइटी लंदन के फेलो, आर्थर्स गिल्ट के उपाध्यक्ष, भारतीय अनुवाद परिषद् के उपाध्यक्ष आदि के रूप में भी उन्होंने हिन्दी साहित्य एवं समाज की बडी सेवा की है, और कर भी रहे हैं । विभिन्न संस्कृतियों के आदान-प्रदान से ही भारतीय एकता संभव है । इस मत पर विश्वास रखनेवाले विमलजी ऐसी संस्थाओं से जुड़कर भारतीय एकता के मार्ग पर आज भी अग्रसर हैं ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में : विमल

सम्पादक के रूप में भी वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचे । 1958 में देश सेवा साप्ताहिक 'यमुना सागर' के संपादक के रूप में शुरू करके उन्होंने संपादन कला में अपनी सिद्धहस्तता प्रदर्शित की । 'इम्पेक्ट' अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला पत्रिका के एशियायी संपादक "न्यूज़लैण्ड मन्थली रिव्यू" के सहभागी संवाददाता (1978-79)

आदि पद भी उन्होंने संभाले हैं । "इण्डियन आथर", "हिमालय मैन एण्ड नेचर", 'बहरहाल' पत्रिका के आप्रिकी विशेषांक आदि के सम्पादक मण्डल में वे सदस्य रहे हैं । नागरीलिपि परिषद् की पत्रिका "नागरी संगम" के (1983-89) प्रबन्ध सम्पादक का तथा 1989 से 1990 तक 'परामर्शी संपादक का काम संभाला । 1983 से 1985 तक "जर्नल आफ इण्डियन सेन्टर फार बल्गेरियन स्टडीज़" के प्रधान संपादक तथा 1985 से 1989 तक परामर्शी सम्पादक रहे । उन्होंने "यूनेस्को दूत" के गैर मुख्यालयी हिन्दी संस्करण के संपादन का कार्य भी संभाला । इस दिशा में उनका कार्य ज़ारी है ।

रचनाकार : विमल

व्यक्ति और कृति का अटूट संबन्ध होना स्वाभाविक है । इसके संबन्ध में विमलजी का कथन है, "मैं आदमी और लेखक दो अलग चीज़ नहीं मानता । आदमी से ही लेखक बनता है । अत: आदमी को जानना ज़रूरी है ।"[1] इसलिए रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप पडना स्वाभाविक है । विमलजी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखिनी चलाई है । अंग्रेज़ी से उपन्यासों और कविताओं का अनुवाद भी हिन्दी में किया है । यद्यपि उन्होंने विविध विधाओं पर काम तो किया है फिर भी कहानी उनकी प्रियविधा है । उसमें ही वे रचना धर्मिता की पूर्णता मानते हैं । "कविता भी मुझे मोहती है । मुझे लगता है कि रचना ही परिपूर्ण विधा कविता ही है ।"[2] लेकिन विमल का रचनाकार व्यक्तित्व बहुआयामी है । वे सफल उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक, संपादक एवं कवि भी है ।

---

1. डॉ.गंगाप्रसाद विमल से 21 दिसम्बर 1991 डॉ.कमल किशोर गोयनका के साथ हुई बातचीत, कल्पान्त 7 फरवरी 1992 में प्रकाशित ।
2. वही

आलोचक विमल

आलोचना के क्षेत्र में भी विमलजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । "प्रेमचंद पुनर्मूल्यांकन" (1967), "समकालीन कहानी रचना विधान" (1966), "आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में" (1978) जैसी रचनाएं हिन्दी आलोचना साहित्य को उनकी गौरव-पूर्ण देन हैं । उनकी आलोचना में गहनता एवं प्रगाढ़ता है । "जीवन के सारे सन्दर्भों में रुचि रखनेवाले डॉ॰विमल की आस्तिकता यदि कहीं जमती है तो वह है साहित्य ..... जो डॉ॰हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के सान्निध्य की उपज है । खासकर आलोचना विधा के अन्तर्गत देश-विदेश में डॉ॰ विमल का अपना एक स्थान सुनिश्चित है ।"[1]

संपादक विमल

उन्होंने विभिन्न ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य भी किया है । "गजानन माधव मुक्तिबोध का रचना संसार" (1968), "अज्ञेय का रचना संसार" (1978), "आधुनिक हिन्दी कहानी" (1978) जैसे ग्रन्थों का संपादनकार्य उन्होंने खुद संभाला । "अभिव्यक्ति" (1968), "सर्वहारा के समूहगान" (1979) आदि के संपादन में सहयोगी सम्पादक के रूप में भी भाग लिया । "नागरी लिपि की वैज्ञानिकता" नामक ग्रन्थ के सम्पादन में भी सहयोग दिया । इसके अलावा वे "लाडा" नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थ का सम्पादक भी रहे ।

---

1. बहुआयामी व्यक्तित्व डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल - वल्लभ डोभाल कल्पांत 7 फरवरी 1992

अनुवादक : विमल

सृजनात्मक साहित्य के साथ साथ उन्होंने अनुवाद का कार्य भी किया । "एलिज़बेथ वाग्रयाना" की कविताओं को उन्होंने "दूरान्त यात्राएं" नाम से अनुदित किया । क्रिस्तो बोतेव की कविताओं का "पितृ भूमिश्च", दिटसेक्सिस की कविताओं का 'पुश्नान्वक' निकोला वप्नसारोव की कविताओं का "जन्मभूमि तथा अन्य कविताएं", मिलेन ब्रेण्ड की कविताओं का "शान्तियात्रा" लेवचेव की कविताओं का "शाश्वत पंचांग" एलेन्कोव की कविताओं का "छुट्टि का दिल" योदनि मिलेव की कविताओं का "सड़क किनारे पेड," नाम से उन्होने हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया ।

विमलजी ने कई अंग्रेज़ी उपन्यासों का भी हिन्दी में अनुवाद किया है । इवान वजोव का "दाव के तले" एवं एमिल्यान स्तानेव का "पर्वतों और वादियों के परे" शीर्षक में अनुदित किया । मिचियों नाकियामा का उपन्यास "हरा तोता" एवं कोमन काल्चेव का उपन्यास "उद्गम" नाम से अनुदित किया ।

कवि विमल

विमलजी का वास्तविक रचना क्षेत्र कविता है । अभी तक उनके पांच कविता-संग्रह प्रकाशित हुए - "विजप" (1967), "बोधिवृक्ष" (1983), "इतना कुछ" (1990), "सन्नाटे से मुठभेड" (1994) एवं "मैं यहां हूं" (1996) ।

विजप (1967)

"विजप" उनका पहला काव्य संग्रह है । इसका प्रकाशन 1967 में राधाकृष्ण प्रकाशन के द्वारा हुआ । "विजप" एक सहयोगी प्रयास है । इस में विमल जी के अलावा जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार की कविताएं भी संकलित हैं । प्रस्तुत संकलन के कारण विमलजी "अकविता" आन्दोलन से जुड जाते हैं । विजप में प्रकाशित उनकी कविताओं में अकविता की प्रमुख प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं । वे हमेशा व्यवस्था की आलोचना में संलग्न रहे । क्योंकि वे "सदैव रचना को व्यवस्था का प्रतिपक्ष घोषित करते हैं ।"[1] उन के ही शब्दों में "वर्तमान बहुत खौफनाक है । यह हमारी स्मृति और कल्पना से भी अधिक अकल्पनीय है ।"[2] ऐसी स्थिति में जीने के लिए अभिशप्त मानव की यातनाओं के चित्र "विजप" की कविताओं में उपलब्ध हैं । मनुष्य हमेशा एक त्रासदी को ढोता ही रहता है, "एक मंडराता धुआं है हम सबके ऊपर ।"[3] यहाँ के लोग दिग्विजयी सपने पालनेवाले अविजयी खलनायक के रूप में जीने के लिए अभिशप्त हैं । कुर्सियों में टिके रहने के लिए बडी बडी बातें करनेवाले अधकचरे राजनीतिज्ञों के प्रति आक्रोश भी विजप की कविताओं में प्राप्त है । "विजप के कवियों में सबसे अधिक उभरकर सामने आनेवालों में जगदीश चतुर्वेदी एवं गंगाप्रसाद विमल ही प्रमुख रहे ।"[4]

---

1. डा॰गंगाप्रसाद विमल से 2 दिसम्बर 1991 को डा॰ कमल किशोर गोयनका के साथ हुई बातचीत - कल्पान्त 7 फरवरी 1992 में प्रकाशित ।
2. वही
3. विजप, पृष्ठ संख्या 11, प्रथम संस्करण 1967
   राधाकृष्ण प्रकाशन
4. गंगाप्रसाद विमल आत्मीयता के सेतु - स्वदेश भारती कल्पांत 7॰ फरवरी 1992

इस प्रकार "विजप" वर्तमान जीवन की विडम्बना की तीव्रता को अभिव्यक्त करनेवाली कविताओं का संकलन ठहरता है ।

बोधिवृक्ष (1983)

"बोधिवृक्ष" उनका दूसरा काव्य संग्रह है । यह ग्रन्थ बीहार राजभाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत भी है । लगभग पन्द्रह साल के अन्तराल के उपरांत विमल का दूसरा काव्य संकलन "बोधिवृक्ष" प्रकाश में आया है । इसका विमल "विजप" का विमल नहीं । उनका दृष्टिकोण बदल गया है । समकालीन यथार्थ के साथ सतत संघर्ष करनेवाले कवि में आस्थावादिता का स्वर मुखर है । वर्तमान परिस्थिति पर वे निराशग्रस्त तो हैं फिर भी निराशावादी नहीं । इसलिए "बोधिवृक्ष" में कवि की नयी चेतना का परिचय मिलता है, "एक लम्बे अंतराल के बाद 1982 में विमल का कविता संकलन "बोधिवृक्ष" प्रकाशित हुआ, जिसमें कविता के नये अनुभव जगत की ज़मीन दिखाई दी । विमल ने अपनी कविताओं के माध्यम से मनुष्य की आस्था और उनके संघर्ष को बेहतर ढंग से उभारा है ।"[1]

इतना कुछ (1990)

उनका तीसरा काव्य-संग्रह है "इतना कुछ"। इस में प्रकृति एवं मनुष्य के बीच की घनिष्ठता और पहाड के संघर्षरत मनुष्य के यथार्थ को वाणी मिली है । "बोधिवृक्ष" संकलन से लेकर विमल की काव्य कला में एक विशिष्ट प्रवृत्ति का सहज विकास दिखाई देता है - वह है प्रकृति के प्रति विशेष लगाव । यद्यपि "विजप" में

---

1. गंगाप्रसाद विमल आत्मीयता के सेतुबन्ध (लेख) - स्वदेश भारती कलकत्ता 7 फरवरी 1992, पृ.10

इसकी प्रारंभिक झलक मिलती है तो भी "बोधिवृक्ष" से "इतना कुछ" तक पहुंचने पर प्रकृति कवि का विशिष्ट विषय बन जाती है ।

इसके आलावा प्रस्तुत संकलन की कविताओं में विचार, अनुभूति एवं संस्कृति की भी झलक मिलती है । लेकिन प्रारंभकालीन काव्य प्रवृत्तियां पूर्णत: गायब नहीं हो गयी हैं । आधुनिक जीवन की विसंगति का स्वर अब भी उसमें वर्तमान है ।

"चल रहा हूं वर्षों से
नहीं पहुंचता हूं
कहीं भी

चल रहा हूं मैं भी
गन्तव्यों की ओर
पर पहुंचता
कहीं भी नहीं ।"[1]

किसान, हवा, पेड, सूरज रास्ता एवं पहाडों को भी सम-सम्मान देनेवाले कवि ने परिवेश की कठिन जीवन-परिस्थितियों को भी ईमानदारी से चित्रित किया है । कवि संसार को अविश्वास भरी दृष्टि से नहीं बल्कि विश्वास की दृष्टि से देखता है । कवि वर्तमान से भागना नहीं बल्कि उसमें शामिल होना चाहता है ।

"शामिल होना चाहता हूं
क्यों
जबकि इतिहास में

---

1. गन्तव्य - इतना कुछ - गंगाप्रसाद विमल, पृ.19
किताब घर, 1990

हम सबको होना है अनकहा
इस अंधी दौड में ।"[1]

सालों से शहरी परिवेश में रहने पर भी उनको अपनी माटी के साथ अटूट संबन्ध है । शहर के शोरगुल से तंग आकर कवि यों पूछता है -

"कितना शोर है शहरों में
क्या आदमी भी
बन गया है पशु
वन में शांत हो जाता है
अंधड
बादल
पसीज कर
देते हैं जल ।"[2]

कवि बहुत कहना चाहता है पर कह नहीं पाता ।

"इतना कुछ कह गया है अबतक
फिर भी कुछ है जो नहीं कहा गया
मैं वही कहना चाहता हूं ।"[3]

इस प्रकार "इतना कुछ" में कवि की बदली हुई कविदृष्टि अभिव्यक्त हुई है । वह एकायामी नहीं बल्कि बहुआयामी है ।

---

1. लोगों के साथ - इतना कुछ - गंगाप्रसाद विमल, पृ.11
   किताब घर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1990
2. वही
3. वही, पृ.59

सन्नाटे से मुठभेड़ (1994)

"सन्नाटे से मुठभेड़" का प्रकाशन 1994 ई. में हुआ। इस में भी कवि का प्रकृति प्रेमी व्यक्तित्व प्रखर है। यह एक सार्वकालिक समस्या है। युग युगों के कवि व्यक्तित्व इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि प्रकृति किसी भी कवि के लिए अभिव्यक्ति का अक्षय भंडार है। विमलजी भी इससे मुक्त नहीं।

"कभी कभी चुप होते हैं पेड़
जैसे ध्यानमग्न हों
कभी हिलते हैं गुस्सैल से
कभी चुपचाप उनके बीच
गुजरती है हवा
कभी सन्नाटा
सीटी मार कर दहलाता है।"[1]

लेकिन कवि छायावादी कवियों के समान प्रकृति की गोद में स्वच्छन्द सुषुप्ति का रस लेनेवाला नहीं। वे अधुनातन जीवन परिस्थितियों से संघर्षरत आम आदमी की पीड़ा को भी अभिव्यक्त करने में सक्षम निकले हैं।

"जीवित है हत्यारे भी
तस्कर घूसखोर
बाकी लोग मैन के मुंह में
वैसे भी तैयार है
क्यों कि वे पहले से

---

1. खिड़की से हरियाली - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.87
किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1994

किसी भी अर्थ में
जीवित नहीं है ।"[1]

मैं वहाँ हूँ (1996)

"मैं वहाँ हूँ" विमलजी का नवीनतम काव्य संग्रह है । इसका प्रकाशन 1996 में हुआ । किताबघर द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत संग्रह में 53 कविताएँ संकलित है । इसमें, अन्धेरे में प्रकाश की तलाश करनेवाले मानव मन को अभिव्यक्ति मिली है । वर्षा से धुलनेवाली सड़क की तरह, किस्मत के खुलने पर अपने भूख, ताप, संताप, एवं हड़कम्पन के दूर हो जाने की प्रतीक्षा में रहनेवाले आधुनिक मानव का खुलासा है यह संकलन । गाँव के घर की सन्नाटा, बरसात, धूप एवं हरियाली के माध्यम से कवि उन बच्चों को वापस बुला रहा है जो कभी यहाँ खेले थे । आधुनिक मानव की अनिश्चितता एवं आकांक्षा का भी चित्रण हुआ है । उन्हें पता नहीं कि कहाँ जाना है, सिर्फ इतना मालूम है कि उन्हें आगे जाना है, दूसरों से भी आगे । लोगों को इसकी चिन्ता नहीं है कि अपने लिए क्या बचा है ।

आधुनिक मानव के अस्तित्व की तलाश एवं भटकन को भी उन्होंने बहुत ही सजगता से चित्रित किया है ।

"सपने की भटकन सा भटकता हूँ मैं,
मैं कहाँ सच हूँ वहाँ कि यहाँ ..... ।"

---

1. सुरक्षित - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.66
किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1994

इस संसार में सब कुछ नियत है । कुछ भी आकस्मिक नहीं । जन्म लेना - मरना, कहना और सुनना सब कुछ नियत है । लोगों की आवश्यकताएं इतनी बढ़ गयी है कि उन्हें व्यक्त करने के लिए शब्द नाकाफी हैं । बडी बडी आकांक्षाओं को लेकर नगर बसने आए लोग उसकी आबोहवा में बदरंग होते जा रहे हैं । इस संसार में जो कुछ है उसे व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत शब्द अपर्याप्त है । शब्द के बाहर आते ही सब अर्थहीन हो जाते हैं । प्रस्तुत संग्रह में भी उन्होंने मानव जीवन की सारी विद्रूपताओं को उसकी पूरी तीव्रता के साथ वाणी देने का कार्य किया है । केवल मनुष्य की स्मृतियों में झांककर उन्हें संवारने का ही प्रयास नहीं हुआ है बल्कि सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को भी उजागर करने का प्रयास किया गया है । मानव मन को कुरेदनेवाली समस्याओं को, चाहे स्मृति हो "चाहे विडम्बना", चाहे अनिश्चय या अनिर्णय की स्थिति हो उन्हें वाणी मिली है । आदमी कभी भी समसामयिकता से हटकर जी नहीं सकता । नि:सन्देह विमलजी के प्रस्तुत संग्रह "मैं वहां हूं" में समसामयिक समाज की विडंबनाओं एवं मज़बूरियों को वाणी मिली है । स्पष्ट है कि विमल किसी कटघरे का कवि नहीं । उनका काव्य बहुआयामी जीवन संदर्भों का संस्पर्श करते हुए आगे बढ़ते रहनेवाला एक अजस्र प्रवाह है ।

कहानीकार : विमल

विमलजी का कहानीकार व्यक्तित्व भी विशेष उल्लेखनीय है । समकालीन कहानी आन्दोलन के प्रवर्तक के रूप में ख्याति प्राप्त विमलजी की कहानियों में आधुनिक संवेदना परिपाक हुआ है । आधुनिकता का मोह एवं विसंगति की हताशा से मुक्त होकर उन्होंने नये सन्दर्भों को तटस्थता के साथ अपनी कहानियों में

अभिव्यक्त किया है । भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था रखने-वाले लेखक की कहानियों में "भारत की ऊपरी तस्वीर नहीं थी बल्कि वास्तविकताओं की भीतरी जटिलताओं को एक रोचक भाषा में मूर्तित किया गया है ।"[1] भारतीय संस्कृति का आदर करनेवाले "यूनानी अधेड" व्यक्ति की दावालता एवं सम्मान के सामने लेखक विवश हो जाते हैं । उन्हें खुद से पूछना पड़ता है "मैं किसे बताऊँगा कि भारत में क्या हो रहा है ? जो किताबें वह पढ़ता है और जो यहाँ घटता है उसमें कितना फरक है"[2] ? गाँवों के प्रति वे मोहित ज़रूर है इसलिए उन ग्रामांचलों और बस्तियों की तलाश वे ज़रूर करते हैं । अपनी रचनाओं में उन्होंने तरह तरह के प्रयोग किए हैं लेकिन उनमें जो यथार्थ है वे अपने भोगे हुए एवं समझे गए यथार्थ ही हैं । विषय की विविधता एवं अभिव्यक्ति की गहनता उनकी कहानियों की विशेष शक्ति है । इसलिए यह विधा विमल को बहुत प्रिय रहा है । इसके सम्बन्ध में उनका कहना है "मुझे कहानी लिखने में एक विशेष प्रकार की परितृप्ति का अनुभव होता है, क्योंकि कहानी में कविता निबन्ध, नाटक, शोध और यहाँ तक की तर्कशास्त्र, गणित और विज्ञान का भी उपयोग किया जा सकता है । एक तरह से कहानी सभी विधाओं को अपने में समाहित कर सकती है ।"[3]

अभी तक उनके नौ कहानी संग्रह निकले हैं । इन में सात हिन्दी कहानियों के हैं तो दो अंग्रेज़ी के । अतीत में कुछ (1972), कोई शुरूआत (1973), इधर उधर (1978), बाहर न भीतर (1981), चर्चित कहानियाँ (1993), खोई हुई थाती (1993), इन्तज़ार में

---

1. कल्पांत साप्ताहिक अंक 26 वर्ष 7 फरवरी 1992
2. सैलानी : खोई हुई थाती गंगा प्रसाद विमल, पृ.119
3. कल्पांत 7 फरवरी 1992

घटना (1993) । इन संग्रहों में उनकी हिन्दी कहानियाँ विन्यस्त हैं तो हियर एण्ड डियर (1978) तालिस्मान एण्ड अदर स्टोरीस (1990) में उनकी अंग्रेज़ी कहानियाँ ।

अतीत में कुछ

"अतीत में कुछ" विमलजी का प्रथम कहानी संग्रह है । इसका प्रकाशन 1972 ई॰ में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा सम्पन्न हुआ । इसमें ग्यारह कहानियाँ संग्रहीत हैं । भविष्य का अंधकार एवं वर्तमान यथार्थ की कटुता मनुष्य को अतीत रागी बना देता है और अतीत की बातें कहानियाँ बन जाती है । देश से निकालने पर अपनी बच्ची की लाश को भी वैसे ही छोड़कर खाली हाथ लौटनेवाले फौजी अफ़सर की कहानी है "अतीत में कुछ" । धुन्ध में अपने आप को छिपाने के लिए इच्छा रखनेवाले लोगों को अतीत की स्मृतियों में खो जाने के सिवाय कोई रास्ता नहीं है । यांत्रिक सभ्यता ने मनुष्य को भावुकताहीन प्रदर्शन प्रिय एवं बनावटी बना दिया है । लाश के सामने बैठकर ताश खेलने, हँसी मज़ाक करने और दूसरों के सामने रोते हुए दिखावा करने में कोई हिचक नहीं है । यांत्रिकता ने मनुष्य को सचमुच यंत्रवत् बना दिया है । एक आदमी दूसरे का इन्तज़ार सिर्फ इसलिए कर रहा है कि उसे अपना वक्त काटना है । उसकी बातों पर न कोई दिलचस्पी है, न ही उसके प्रति भावुकता पूर्ण दृष्टिकोण । पारिवेशिक विसंगतियों ने मनुष्य के जीवन को यातनापूर्ण बना दिया है । उसे खुद को हाथी के पैरों तले महसूस करना पड़ता है । आदमी की अवमानवीकृत स्थिति ने उसे ऐसा बना दिया है । उसे इतना भी मालूम नहीं है कि किसी नौजवान के मरने पर अफ़सोस प्रकट करना है या नहीं ? अगर प्रकट करना है तो कैसे ? किस से ? प्रेत के समान जीवन बिताने के लिए

विवश मनुष्य को कभी कभी अपने अस्तित्व पर ही शंका होने लगती है ।

इस प्रकार आधुनिक जीवन की विविधोन्मुखी समस्याओं को कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त करने में विमलजी सफल हुए है । उनका प्रथम कहानी संग्रह ही इसका प्रमाण है । "अतीत में कुछ" की कहानियां भावुकतापूर्ण एवं आधुनिक भावबोध से ओतप्रोत हैं ।

कोई शुरूआत

"कोई शुरूआत" विमलजी का दूसरा कहानी संग्रह है । इसका प्रकाशन 1973 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा सम्पन्न हुआ । इसमें सोलह कहानियाँ संग्रहीत हैं । इसके पात्र हर दिन नई शुरूआत करने की इच्छा रखता है । मगर हकीकत तो यह है कि कोई शुरूआत नहीं हो पाती । दिन-भर शाम की प्रतीक्षा करते रहने पर शाम आते ही लगने लगता है वह प्रतीक्षा व्यर्थ थी । अर्थहीन प्रतीक्षा के अलावा कोई बदलाव नहीं होता । ज़िन्दा रहने के लिए मनुष्य को काफी अभिनय करना पड़ता है । जीवन के इस नाटक का अंत नहीं होता सब "अधूरा नाटक" है । रोज़ी-रोटी के लिए रोज़ नया नाटक गढ़ना पड़ता है । वर्तमान के मोहभंग एवं निराशा भविष्य को शून्य एवं उदासीन बनाते हैं और वे अतीतोन्मुखी बने रहते हैं । आदमी को किसी भी बात के प्रति भावुकतापूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए । बातें होनी चाहिए चाहे वह नीरस हो या सरस । नीरस और सरस में कोई फरक नहीं है । हत्यारे "हत्या" के लिए कोई कारण नहीं ढूँढ पा रहा है । हत्या एक कृत्य है । हत्यारे के पास इस के सिवा कोई आधार नहीं है । आधुनिक मनुष्य इस प्रकार के निर्णय के लिए विवश है । केवल कार्य की ज़रूरत है कारण का

नहीं । आधुनिक मानव निरुद्देश्य जीने के लिए विवश है । लेखक का कहना है मनुष्य अपने आप को धोखा देकर ज़िन्दगी बिताने के लिए मज़बूर है ।

इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रभाव है । किसी भी शुरूआत का मूल स्वर बदलाव की प्रतीक्षा है । पर यह अर्थहीन प्रतीक्षा है । क्या बदलना चाहिए और किसकी शुरूआत करनी चाहिए इसका कोई निर्णय उनको नहीं है । "अभिशाप" नामक कहानी में "मैं" को अपने ही चेहरे पर काला धब्बा नज़र आता है । लेकिन "मैं" इस को पहचानने में असमर्थ हो जाता है । इसलिए भय एवं त्रास के शिकार हो जाता है । विध्वंस में भी अनिश्चय एवं अनिर्णय का स्वर है । बीच की दरार में प्रतीक्षा एवं प्रतीक्षा से उत्पन्न दरार का ही चित्रण है ।

संक्षेप में इस संग्रह की कहानियाँ विषय की विविधता एवं प्रयोग-धर्मिता के लिए पर्याप्त प्रमाण है ।

बाहर न भीतर

"बाहर न भीतर" विमल जी का चौथा कहानी संग्रह है । इसका प्रकाशन आलेख प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा 1981 ई. में हुआ। इस में सोलह कहानियाँ संग्रहीत हैं । नवीन परिस्थितियों ने भारतीय जनता के जीवन को इतना बदल दिया है कि वह अपने जीवन में एक प्रकार की शून्यता का अनुभव करता है । सब कुछ होते हुए भी एक सन्नाटा व्याप्त है । एक ऐसा सन्नाटा, जो मौत के समय छा जाता है । कभी कभी सत्ताधारी के काले करतूतों के बीच आम आदमी पड जाता है । उनकी साज़िश में न तो वह ठीक तरह उतर

सकेगा या उससे बच भी । "शहर में" कहानी में शहरी जीवन की उबाहट एवं व्यर्थता को चित्रित किया है । शहर के यंत्रवत क्रम से लोगों को डर लगने लगा है । अर्थात् कोई कार्यक्रम बनाने का तात्पर्य खुद आत्महत्या करने के सिवाय कुछ नहीं है । "बच्चा" नामक कहानी में अनजान बच्चे की मृत्यु पर मातम मनानेवाली महिलाएँ जब यह जान लेती है कि वह लड़का धोबिन का है तो सारा रोना-धोना बन्द कर देती है । भावुकता के स्थान पर दिखावा आ गया है ।

इधर उधर

"इधर उधर" विमलजी का पाँचवाँ कहानी संग्रह हैं । इसका प्रकाशन 1980 ई॰ में पराग प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा सम्पन्न हुआ । इसमें दस कहानियाँ संग्रहीत हैं । इसमें प्रकाशित पहली कहानी "कहानियों का रफ नोट्स" बाद में कथासूत्र के रूप में प्रकाशित हुआ है । इसमें लेखक यह बताना चाहता है कि कहानी लेखन की भी कहानी होती है, "हर सम्पन्नता टूट-टूटकर पुराने होते होते सामान घर की चीज़ बन जाती है । जब कोई बूढ़ा सम्पन्नता के दिनों के प्रतीक को उठाता तो वह अपने अतीत में खो जाता, और बच्चों को अपनी सम्पन्नता की कहानियाँ बताने लगता है ।"[1] उसी प्रकार दिमाग की किसी कोने में ठूसे रहनेवाली यादों का कबाड़ ही समय समय पर कहानी बनकर बाहर निकलता है । उसने मुझे बहुत सी बातें सिखायी । उसने बताया कि पूंजीवाद कोई वर्ग या विचारधारा का नाम नहीं बल्कि यह एक आदमी का ही नाम है । उस आदमी की, जिसने चालाकी से सबकी मेहनत का हिस्सा खाने का गुर

1॰ कहानियों का रफ नोटस - इधर उधर, पृ॰7

व्यापारियों को बता दिया है ।"[1] उसने जब से सोचने को विवश किया तब से उसे सभी चीज़ों का निकट भविष्य बहुत अन्धकारपूर्ण दीखता है । "मैं" अब किसी और नहीं देखना चाहता । सिर्फ उस आदमी की तलाश में है जिसने "मैं" को इस काम में फंसा दिया है । उसकी पहचान है ..... । उसकी पहचान भी भविष्य की तरह अन्धकारपूर्ण है । न कोई पहचान छोडा है । शक्तिहीन, नकली व्यवस्था को बनाये रखने के लिए बेकसूर लोगों को गोली का शिकार बनाता है । इसके लिए साहब थाने में दरवाज़े के पास ही आग लगाने का हुक्म देते हैं । क्यों कि भीड सिर्फ नारे लगाती हैं । इससे गोली और आंसु गैस का हुक्म नहीं दे सकते हैं । सुबह अखबारों में खबरें ज़रूर निकलेंगे । अपने फायदे के वास्ते किसी हद तक अखबार लोगों को जनहत्यारों के प्रशंसकों के रूप में मज़बूत करते हैं ।

"इधर-उधर" में समाज के ऐसे काले करतूतों को चित्रित किया है । पारिवारिक विघटन आखिर आधुनिकता की ही देन है । मां-बाप एवं परिवार के टूटे सम्बन्धों के बीच बच्चों को "निर्वासित" होना ही पडता है । बच्चों के लिए पुलीस हो या पापा, दोनों एक जैसे लगते हैं । "सिद्धार्थ का लौटना" कहानी में बहुत ही व्यंग्यात्मक ढंग से लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि पिटाई का शिकार केवल स्त्री ही नहीं, पुरुष भी है । स्त्रियों के अत्याचारों से भयभीत होकर घर छोड़कर भागनेवाले अनेक है । उनमें एक है सिद्धार्थ । जो कभी कभी कपिलवस्तु के सिद्धार्थ राजकुमार की याद दिलाती है । इस प्रकार सोचने के लिए विवश बनाते हैं कि सिद्धार्थ राजकुमार इसलिए साधु बन गया होगा कि वहाँ साधुओं के लिए गृहस्थ बने रहना निषिद्ध था । और वहाँ तलाक का कानून

---

1. कहानियों का रफ नोट्स - इधर उधर, पृ.8

नहीं था । इसलिए कानून की जकड़ से खुद को मुक्त करना चाहता था । प्रस्तुत कहानी संग्रह में वैयक्तिक विडम्बनाओं के साथ साथ सामाजिक कुरूपताओं को भी बखूबी चित्रित किया है ।

खोई हुई थाती

"खोई हुई थाती" विमलजी का छठा कहानी संग्रह है । इसका प्रकाशन 1993 ई. में किताबघर नई दिल्ली द्वारा सम्पन्न हुआ । इसमें चौदह कहानियाँ संकलित हैं । इन कहानियों में समकालीन समाज की कुरूपता को पूरी समग्रता के साथ व्यक्त किया है । अस्तित्व की तलाश में भटकते हुए अपनी विरासत को ही खो देनेवाले आधुनिक मानव की विसंगतियाँ इसमें चित्रित हैं । विरासत में मिली लिपि खो जाने के कारण, याने चुप्पी का मुखौटा पहनने के कारण समाज के प्रति अपना दायित्व निभाने वे असमर्थ हो जाते हैं । शोषण या अपहरण की व्यापकता इतनी ही है कि वह आकाश के नीचे शायद आकाश को ही ग्रस लेता है । लोग इतना हताश हो गए हैं कि वे सपने में भी निरोग एवं स्वस्थ जीवन बिताने लायक घर नहीं देख पाते । हम भावनाशून्य हो गये हैं । "सपने में सही ..... सपनों में तो वह टुकड़ा हम हासिल कराया जाये तो अपने आप को धन्य मानना चाहिए ।"[1]

हमारे समाज में मूल्य हीनता का वातावरण अदृश्य है । पारिवारिक सम्बन्धों में हुए मूल्य विघटन को दिखाते हुए लेखक यही बताना चाहते हैं कि हमारी संस्कृति के अतीत गौरव की गाथा संसार भर में व्याप्त है । लेकिन आज कल के परिवर्तनों से वे वाकिफ नहीं है । पढाई के लिए अपने बाप-दादा के जमीन तक बेचने के लिए आधुनिक मानव विवश है । परीक्षा में सर्वोत्तम रहने के बावजूद

---

1. खोई हुई थाती - गंगाप्रसाद विमल,

सिफारिश के अभाव में उसे अपने साथियों की अपेक्षा छोटी नौकरी स्वीकार करनी पड़ती है । अपने बच्चे एवं परिवार की आवश्यकताओं को निभाने में असमर्थ तथा दूसरों की निगाह में निकम्मे होकर आत्म-हत्या का सहारा लेनेवाले नौजवानों की मज़बूरी एवं मोहभंग, परंपरागत रूढ मूल्य परिकल्पना के कारण उत्पन्न द्वन्द्व आदि को बड़ी ही सादगी के साथ चित्रित किया गया है ।

संक्षेप में "खोई हुई थाती" वह आईना है जिसमें समसामयिक समाज का यथार्थ प्रतिफलित है । आदमी की तटस्थता या चुप्पी आज के क्रूर एवं अमानवीय संसार की निर्मिति के लिए जिम्मेदार है । विमलजी यही बताना चाहते हैं कि आज की परिस्थिति के लिए सिर्फ सत्ताधारी ही नहीं सामाजिक के नाते हम सब ज़िम्मेदार हैं ।

इन्तज़ार में घटना

"इन्तज़ार में घटना" विमलजी का नवीनतम कहानी-संग्रह है । प्रकाशन 1993 ई॰ में आसेतु प्रकाशन द्वारा सम्पन्न हुआ । कहानी का कोई विशेष दायरा नहीं है । लेकिन चिन्तकों ने इसे ससीम कर दिया है । विमल जी एक प्रयोगधर्मी रचनाकार है । उनका अपना दृष्टिकोण भी है । उनकी राय है, व्यंग्य, आत्मकथ्य, संस्मरण, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तान्त, रेखाचित्र एवं गल्प आदि विभिन्न साहित्यिक रूपों को भी कहानी के अन्तर्गत रखा जा सकता है । अपनी रूपात्मक सत्ता में अलग अलग होने पर भी ये विधायें कथा की संपूरक दिशाएँ ही हैं । प्रस्तुत संग्रह में विभिन्न रूपाकृतियों को समायोजित करने का कार्य हुआ है । "इन्तज़ार में घटना" इस श्रेणी की पहली रचना है । कथ्य की विविधता ने अभिव्यक्ति में वैविध्य प्रदान किया । विमल जी की इन चुनी हुई कहानियों में से यह साबित हो जाता है कि वे एक सफल कहानीकार अवश्य हैं ।

प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश रचनाएं कहानियों के रूप में ही अन्य संग्रहों में प्रकाशित हैं । इन्तज़ार में घटना, सिद्धार्थ का लौटना आदि "इधर-उधर" संग्रह में प्रकाशित है । "नुक्कड नाटक" नामक कहानी खोई हुई थाती में प्रकाशित है तो "प्रदर्शन","अतीत में कुछ"में । कथासूत्र कहानियों का रफ नोट्स" नाम से इधर उधर संग्रह में प्रकाशित है । इधर-उधर एवं बीच की दरार जैसी लम्बी कहानियां "इधर उधर" "और कोई शुरूआत" संग्रहों में प्रकाशित थी ।

चर्चित कहानियां

1993 ई॰ में सामयिक प्रकाशन द्वारा ही इस संग्रह का प्रकाशन हुआ । इसमें सोलह कहानियां हैं । समसामयिक प्रकाशन ने उसकी रजत जयन्ती के अवसर पर हिन्दी के मूर्धन्य कहानीकारों की चर्चित कहानियों के संकलन निकालने की योजना बनाई । इस योजना के अन्तर्गत विमलजी का भी संकलन निकाला । कहानी बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गयी । विमलजी के प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित अधिकांश कहानियां इससे पहले अन्य कई संग्रहों में प्रकाशित हैं । इन कहानियों में कहानीकार विमलजी की निपुणता प्रस्फुटित हुई है । प्रत्येक कहानी अपने आप में विशिष्ट है ।

उपन्यासकार : विमल

अन्य विधाओं के समान उपन्यास को भी सम्पुष्ट बनाने का प्रयास विमलजी ने किया है । सन् साठ के बाद की जन-मानसिकता को गहनता के साथ पकड पाने का प्रयास विमलजी के उपन्यासों में देख सकते हैं । अन्तर्मुखता, पलायन, अलगाव, अन्धकार, मानवीय सम्बन्धों में आये बदलाव आदि को सूक्ष्मता के साथ चित्रित

किया है । उन्होंने हिन्दी में चार उपन्यास लिखे हैं । कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से चारों उपन्यास अपना अलग अस्तित्व रखते हैं । अपने से अलग (1969) कहीं कुछ और (1971) मरीचिका (1973) एवं मृगान्तक (1978) आदि उपन्यासों के अलावा "मिरजा" (1982) नामक अंग्रेज़ी उपन्यास भी उनकी देन है ।

अपने से अलग

"अपने से अलग" विमलजी का पहला उपन्यास है । 1969 में राजकमल प्रकाशन से इसका प्रकाशन हुआ । इसमें खास सम्पन्नता में रहने के बाद अभावग्रस्त जीवन बिताने केलिए विवश मध्यवर्ग की कथा है । इसका एक कारण पिता के व्यवसाय की बुरी हालत था तो दूसरा पारिवारिक सम्बन्धों में आयी हुई दरारें हैं । ज़िन्दगी में कई बार असफलताओं का सामना करने के बावजूद माँ ने बच्चों को इसका अहसास तक नहीं होने दिया । पिता को किसी दूसरी महिला के साथ सम्बन्ध था । इसलिए माँ और पिता के बीच खाई पैदा हुई । आर्थिक विपन्नता एवं अन्य कई समस्याओं से जूझने पर भी इन लोगों में यही आस्था बनी रही कि एक दिन सभी समस्याएँ सुधर जायेगी । अन्तिम घडी तक यह आस्था बनी रही ।

मध्यमवर्ग के खास संस्कार से युक्त माँ इन विपन्नताओं से बचना चाहती तो है, मगर कोई सक्रिय कदम उठाने में विफल है । भीतर के टूटन का एहसास वह बाहर तक होने नहीं देती । सम्पूर्ण परिवार को निगलनेवाले अन्धेरे का एहसास तो उसे ज़रूर है । चेहरे की अजीब सी थकान, आँखों की विवशता एवं मुरझायापन से यह व्यक्त

होती है । पिता के अनैतिक सम्बन्धों की खबर बच्चों तक पहुँचने नहीं दिया था । पर छोटे लड़के के पत्र से पता चलता है कि उसने सब जान लिया है । यहाँ माँ पूर्ण रूप से टूट जाती है, क्यों कि वह बच्चों के मन में पिता का अच्छा स्वरूप बनाए रखना चाहती थी । जब वह भी कर नहीं पाती तो माँ का दु:ख और बढ जाती है ।

पिता के व्यवहार से छोटा बेटा और बेटी बहुत परेशान हैं । दोनों शहर के होस्टल में है और कालेज में पढते हैं । परिवार के टूटे सम्बन्ध ने उन में असुरक्षा का भाव जगाया । अपने आपको इन परिस्थितियों से बचाने केलिए, खुद को अकेला स्थापित करने केलिए छोटा भाई और बहन नशाखोरी के शिकार हो जाते हैं ।

संक्षेप में विमलजी के "अपने से अलग" उपन्यास में सन् साठ के बाद की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है । मध्यवर्ग की झूठी आस्था, अन्धविश्वास, निष्क्रिय प्रतीक्षा, नशाखोरी, पारिवारिक विघटन, आर्थिक विपन्नता, नैतिक-मूल्य-विघटन आदि को गहरे में चित्रित किया है । सुधरी हुई भाषा, स्मृति, अनुभव की बारीकी से वर्णन आदि से इस उपन्यास ने अपना एक अलग माहौल ही सृजित किया है ।

कहीं कुछ और

"कहीं कुछ और" विमलजी का दूसरा उपन्यास है । 1971 में "ज्ञानपीठ प्रकाशन" से इसका प्रकाशन हुआ । पारिवारिक विघटन के फलस्वरूप उत्पन्न आर्थिक विडम्बना का सूक्ष्म चित्रण ही इस उपन्यास का कथ्य है । मध्यवर्ग का आस्थावादीदृष्टिकोण ज़िन्दगीभर प्रतीक्षारत रहने के लिए उन्हें प्रेरणा देता है । परिवार का

हर सदस्य पिता के उस पत्र के इन्तज़ार में है जिसके साथ पैसा भी आनेवाला है । झूठे संस्कार इन्हें कुछ करने नहीं देता । आर्थिक विपन्नता से बुरी तरह जकड जाने पर वह अपने रूढ संस्कार से मुक्त नहीं हो पाता । पर मुक्त होने की इच्छा है । मध्यवर्ग की झूठी शान एवं मान्यता कदम कदम पर उन्हें रोक देती है । अब उनका केवल यही श्रम है कि परिवार की हालत किसी दूसरे तक न पहुंचे । इसलिए समय समय पर बहाने का सहारा लेता है । पत्र के न मिलने का भी नया नया कारण खोजता है । पिता के साथ की घनिष्ठता न मिट जाए इसके लिए पिता की बीमारी की खबर फैला दी जाती है । मां इन परिस्थितियों के लिए अपने भाग्य को कोसती है । बडा लडका पैसा न मिलने के कारण पढाई छोडकर वापस आता है । पर वह सत्य मां से छुपाना चाहता है । दीदी भी यह बात छिपाती है कि वह पति का घर छोड आई है । इस प्रकार सारे के सारे पात्र अपना एक रहस्य लेकर उपस्थित है । अत: खुद संघर्ष का अनुभव कर रहे हैं । पैसा उधार में लेना उनके लिए अपने आपको नंगा करने के समान है । इसलिए मां कभी इसके लिए सहमत नहीं होती । जब सोने के गहने बेचने का प्रस्ताव रखा गया तो मां यह कहकर टाल देती है कि इससे सम्पूर्ण परिवार की बदनामी होगी । मध्यवर्ग की झूठी कुलमहिमा उसे कुछ करने नहीं देती । वे सिर्फ इतना ही कर सकते हैं - इन्तज़ार । सुनहरे कल की झूठी आशा ही असल में मध्यवर्ग के लोगों के जीने की प्रेरणा है । जब नौकरी करने की बात रखी गयी तो मां का कहना है, मां-बाप के रहते ऐसा करना अच्छा नहीं । ऐसा करना मां-बाप पर के विश्वास को खो देना है ।

विमलजी के "कहीं कुछ और" उपन्यास में भी इसी मध्य-वर्गीय संस्कार का बोलबाला है । उन्हें इससे बचने की इच्छा तो अवश्य है फिर भी कोई सक्रिय कदम उठाने में वे सफल नहीं हो पाते ।

यह विवशता इसकी ओर संकेत करती है कि मध्यवर्ग की युवा पीढ़ी भी अपने झूठे अहं के जाल से मुक्त होने में अब भी असमर्थ है । किसी दार्शनिक की भाँति सब कुछ दबाने तथा मौन धारण करने के अलावा वे कुछ नहीं कर पाते ।

पारिवारिक सम्बन्धों में आए उलझनों ने उन्हें अपनी खास संपन्नता से नीचे गिरा दिया था । अपने वर्तमान यथार्थ को जानते हुए भी वे अपने को बदलना नहीं चाहते । वे समझौता नहीं कर पाते । अपने अतीत गौरव को पुन: प्राप्त करने की इच्छा तो अवश्य है । पर उसके लिए कोई सक्रिय कदम उठाने में वे असमर्थ है । इसलिए सम्पूर्ण उपन्यास में जिजीविषा का संघर्ष देख सकते हैं । मध्य-वर्गीय चेतना को पूर्णता के साथ चित्रित करने में वे सफल हुए हैं ।

मरीचिका

"मरीचिका" उनका तीसरा उपन्यास है । 1973 में इसका प्रकाशन राजपाल एण्ड सन्स् द्वारा सम्पन्न हुआ । विमलजी के पहले दो उपन्यासों की अपेक्षा अभिव्यक्ति की नवीनता इस में है । भारतीय समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, झूठी आस्था आदि का पोल खोलना लेखक का उद्देश्य है । ज़िन्दगी में बहुत कुछ करने पर भी सम्पन्न न बन पाने वाले लोगों के मन में इसके प्रति लालसा अवश्य होती है । "मरीचिका" का 'मैं' ऐसा एक बुद्धिजीवि है जो अपनी ज़िन्दगी में कई पड़ावों से गुज़रने के बावजूद जीवन की सुख सुविधाएं जुटाने में उतना सफल नहीं हुआ जितना कि उनका गरीब साथी हरिप्रकाश । हरिप्रकाश की सम्पन्नता उसकी वेषभूषा हाव-भाव से स्पष्ट है । वे इसका कारण संत भजनसिंह का आशीष बताते हैं ।

"मैं" पहले इस पर विश्वास नहीं करते थे पर जितने लोगों से मिले वे सब ऐसी आशीर्वादवाली कहानियाँ सुनाते हैं । "मैं" इसके विरुद्ध कई तर्क प्रस्तुत करती हैं । लेकिन संत भजनसिंह के जयजयकार में सब कुछ गल जाते है । अन्त में संत की झटाटोप में अनेक रूप दिखाई दिए । झटाटोपवाले संत प्रतीकमात्र है । मध्यवर्ग अपनी इच्छा पूर्ती के लिए ऐसे गप्पों पर विश्वास रखता है । जल्दी ही धनवान बनने या सुख सुविधायें जुटाने के लिए लोग आसान तरीका ढूँढते हैं । उपन्यासकार यह स्थापित करना चाहता है कि ऐसे आसान तरीकों का कोई मतलब नहीं । ये सब केवल दिखावे मात्र हैं । झूठी मान्यता का पोशाक पहनकर अपने आप को धोखा मात्र दे सकते हैं । सिर्फ बने-बनाए रास्ते से जाते हैं । "मैं" सन्त भजनसिंह के बारे में सुनकर उसकी तलाश में निकलता है । अपने मन के कोने कोने झांकने पर उसे सन्त भजनसिंह के स्थान पर कफ्फू पागल ही याद आती है । इसके बारे में बताते हुए कहते हैं अगर कोई समाज के तौर तरीके पर प्रश्न चिह्न लगाने लगे तो वह ज़रूर पागल कहा जायेगा । एक दृष्टि से पागल बन जाना ही अच्छा है । क्यों कि उसे व्यवस्था के विरोध में बोलने का अधिकार है, खुद के द्वारा खींचे गये रास्तें से चल सकता है । हरिप्रकाश खुद इस प्रकार के गप्पनों से जुडा हुआ आदमी है । फिर भी वह इसका पोल खोलना चाहता है । वह सुख सुविधा की तलाश में विदेश गया हुआ है । और वह इसी के इन्तज़ार में है कि कोई कब हमारे समाज में व्याप्त निष्क्रियता रूपी विभीषिका से मुक्ति दिला सके । आज हमारे समाज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । सभी लोग समाज के प्रति, काले करतूतों के प्रति सचेत है । लेकिन सब इसकी प्रतीक्षा में है कि कोई समाज को बचाये । हर व्यक्ति इन्तज़ार ही करता है ।

जाहिर है कि विमलजी का "मरीचिका" समसामयिक मानसिकता से जुडा हुआ उपन्यास है । नवीनतम शैली में उन्होंने समसामयिक समस्याओं को ही प्रस्तुत किया है । आस्थावादी दृष्टिकोण मानव को निरंतर अन्वेषी बने रहने के लिए विवश बना देता है । शिक्षित युवाओं की बेकारी और उससे उत्पन्न समस्याओं को उन्होंने अभिव्यक्ति दी है । राजनीतिक भ्रष्टाचारिता के साथ तथाकथित राजनीतिक नेताओं की झूठी मान्यता एवं शान पर करारा व्यंग्य छोडा है । इसलिए यह कहना कभी अनुचित न होगा कि "मरीचिका" नवीनतम अभिव्यक्ति शैली में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय मानसिकता का दस्तावेज़ है ।

मृगान्तक

विमलजी का चौथा एवं अन्तिम उपन्यास है । इसका प्रकाशन 1978 में लिपि प्रकाशन द्वारा सम्पन्न हुआ । अभिव्यक्ति की नवीनता कथ्य एवं गठन की विशिष्टता के कारण यह उपन्यास अपना अलग स्थान रखता है । बोक्षु विद्या एवं तन्त्रसाधना के माध्यम से समाज में होनेवाले शोषण एवं अत्याचार की ओर संकेत करना लेखक का उद्देश्य है । ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था भारतीयों के रग रग में व्याप्त है । इससे मुक्ति संभव नहीं है । इस सच्चाई से अभिज्ञ लोग इस की फायदा उठाते हैं । वे अन्धविश्वास के जाल में फंसा कर लोगों का शोषण करते हैं । इसलिए "मृगान्तक" का कथ्य बिलकुल प्रासंगिक है । बोक्षु विद्या एक ऐसी विद्या है जिसके ज़रिए लोग बाघ का रूप धारण कर सकता है । लोगों को डरा सकता है, धमका सकता है । एक प्रकार से अमरत्व की साधना की तलाश है । बोक्षु विद्या की पाण्डुलिपि एक ऐसी भाषा में लिखी गयी है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग भाषा के मुताबिक पढ सकता है । कोई खास

पाण्डुलिपि नहीं है, मानव की भाषा है । उसके मनोविकारों की भाषा है । "मैं" इसकी तलाश में निकला हुआ है । विशिष्ट साधना में लगे हुए साधु सर्वदानंद से अमरत्व की साधना का पर्याप्त विवरण मिलता है । अपनी साधना की पूर्ती के लिए यह एक गरीब लड़की को खरीद लाया है । बोधु बन जाने के बाद फिर मानव बनने केलिए मनुष्य का रक्तपान करना अनिवार्य है । लोगों का कहना है कि बोधु साधना की सफलता के लिए कन्या की अक्षत योनी की ज़रूरत है । इस लड़की के यहाँ तक आने का एक कारण भी उनका अन्धविश्वास ही है । दूसरी ओर परिवार की आर्थिक विपन्नता की वजह से लडकियों को बेचना भी पड़ता है ।

रखलीदेई से पता चलता है कि जलेड में बोधु साधना के बहाने कुछ और ही हो रहा है । आर्थिक विपन्नता एवं देवी के डर से रखलीदेई तंत्रसाधना की चीज़ बन जाने के लिए तैयार हो जाती है । देवी साधना पर आस्था रखनेवाली रखली अंत में अपने कन्यकात्व को समाप्त करके सर्वदानंद की साधना को विफल बनाने की कोशिश करती है । रखलीदेई आधुनिक पीढी का प्रतिनिधित्व करती है । नाकछेदा की माँ पूर्व पीढ़ी का है । उन्होंने मानव की पशुता की पराकाष्ठा का परिचय दिया है । नाना के बोधु बन जाने के बाद अपनी पोती पर ही टूट पड़कर वध करता है । अपने बच्चों को शाप से बचाने केलिए उनमें नाक कान छेदने की परम्परा चल पड़ा । लोग आज भी इसका पालन करते हैं । नाकछेदा की मा, और रखलीदेई में पीढ़ियों का अन्तर है । इसलिए दोनों की नज़रिया भी भिन्न है ।

मानव के पशु बन जाने पर उसके पास न अपना कुछ रहता है न पराए का । अपना पराये का बोध मिटाकर स्वार्थपूर्ती के लिए वह सब पर हमला करता है । मानव मन में छिपी पाशवीयता का ही

चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । प्रगति के पथ पर अग्रसर हमारे समाज में मूल्यहीनता बढ़ती जा रही है । मानवीयता के स्थान पर पाशवीयता को बढ़ावा मिल रहा है । तंत्र साधना के मुखौटे पहनकर अन्धविश्वास एवं गरीबी से त्रस्त लोगों का शोषण करनेवाले धर्मान्ध लोगों का पर्दाफाश करना लेखक का उद्देश्य रहा है । इस प्रकार समाज में बढ़ती हुई अराजकता एवं पशुता पर उंगली उठाने में लेखक निकले है । संक्षेप में विमलजी के अन्तिम उपन्यास "मृगान्तक" अभि-व्यक्ति एवं कथा गठन की दृष्टि से प्रयोगधर्मिता का परिचायक है ।

संक्षेप में विमल मात्र रचना के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी विमल ही रहे । वे सहज, सरल एवं उदारता के प्रतीक है । दूसरों को सुनने समझने एवं संमान करने की महिमा उनमें है । "मुस्कान में, बातचीत में चर्चा परिचर्चा में सहजता ही उनका गुण है । दूसरों की भावना का विचारों का दृष्टिकोण का, सम्मान करना कोई उनसे सीखे । उन्हें अपने सिद्धान्तों पर अटल विश्वास है । छल कपट से दूर विनम्र एवं स्पष्टवादी व्यक्ति के रूप में वे सभी के प्रिय है ।"[1] जाहिर है कि गंगाप्रसाद विमल एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो साहित्य के क्षेत्र में तथा व्यावहारिक जीवन में अपने नाम को हुबहू सार्थक रखता है । ईमानदारी, सादगी, सहजता एवं सूक्ष्म दृष्टि उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में समान रूप से वर्तमान है । उनकी रचनाएँ अपने व्यक्तित्व की इन खासियतों का साक्ष्य प्रस्तुत करनेवाली अवश्य है ।

---

1. मेरे भाई मेरे मित्र श्री गंगाप्रसाद विमल - डॉ॰नारायणदत्त पालीवाल, कल्पांत 7 फरवरी 1992

दूसरा अध्याय

जीवन की अन्तरंगता की पहचान : कविता

दूसरा अध्याय

जीवन की अंतरंगता की पहचान - कविता

स्वाधीनता परवर्ती हिन्दी कविता पर विचार करने से पहले पूर्ववर्ती आधुनिक हिन्दी कविता की हैसियत पर विचार करना अनिवार्य बनता है । कोई भी साहित्यिक धारा स्वयं रूपायित नहीं होती । वह अपनी सुदृढ परम्परा से नया मार्ग बनाकर प्रवाहित होती है । वह युग जीवन के तीष्ण यथार्थ को अपने में समाहित करते हुए भविष्य की ओर अग्रसर रहती है । यह परम्परा का निषेध नहीं बल्कि पुनर्मूल्यांकन है । यह सिलसिला आधुनिक हिन्दी कविता में बराबर बना रहता है ।

स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति

यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य का बीजवपन भारतेन्दु युग में हुआ तथापि आधुनिक हिन्दी कविता की शुरूआत द्विवेदीयुग से है । प्रत्येक युग के साहित्यिक विकास में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का बहुत बडा योगदान रहता है, "कोई भी सार्थक काव्य प्रवृत्ति इकहरी यात्रा नहीं करती और समय, समाज के दबाव उसे नया मोड लेने के लिए बाध्य करते हैं ।"[1]

---

1. नयी कविता की भूमिका - डॉ॰प्रेमशंकर, पृ॰12

भारत में अंग्रेज़ों का शासन हो रहा था । वे भारत के मज़दूरों एवं किसानों का शोष कर रहे थे । जनता आर्थिक विपन्नता से आक्रांत थी । परिणामत: उनके मन में क्षोभ और असन्तोष की चिनगारियाँ उठने लगी । इस समय भारत की जनता के वर्तमान को बदलने के प्रयत्न में कुछ महापुरुषों एवं संस्थाओं ने कार्य किया है । रामकृष्ण परमहंस, महर्षि अरविन्द, स्वामि विवेकानंद आदि के निस्वार्थ समाज सेवा में सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से लोगों को प्रबुद्ध बनाया । अंग्रेज़ी शिक्षा से प्रेरणा प्राप्त विभिन्न लेखकों ने जनता को उद्‌बुद्ध बनाने का प्रयास किया । जनता को अंग्रेज़ी शासन और उसकी क्रूर नीति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार किया । "इस अवधि में समग्र भारतीय जनता का मुख्य अन्तर्विरोध अंग्रेज़ी राज से था ।"[1]

द्विवेदी युगीन कवियों के सामने विभिन्न समस्यायें थी । एक ओर अंग्रेज़ी के विरुद्ध जनता को एकत्रित करना था तो दूसरी ओर जन मानस में देश प्रेम की भावना जगाना । इसके लिए उन्होंने प्रचलित काव्य-भाषा-ब्रजभाषा - के स्थान पर जब सामान्य बोल-चाल की भाषा खड़ीबोली को काव्य भाषा बनाई ।

1900 ई॰ से लेकर सरस्वती पत्रिका प्रकाशित होने लगी । 1903 में महावीर प्रसाद इसका सम्पादक बने । आधुनिक हिन्दी कविता के प्रथम चरण के विकास में सरस्वती पत्रिका एवं द्विवेदी जी का योगदान महत्त्वपूर्ण है । "द्विवेदी जी ने अपने युग का साहित्यिक संस्कार और मार्गदर्शन मुख्यत: इसी पत्रिका के माध्यम से किया ।"[2]

---

1. द्विवेदी युगीन सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (लेख) - डा. रामविलास शर्मा
2. द्विवेदी युगीन खण्डकाव्य - डॉ॰ सरोजिनी अग्रवाल

द्विवेदीजी ने इस युग की कविता को निश्चित ढाँचा बना दिया । द्विवेदी युगीन कविता का मुख्य स्वर राष्ट्रीयता थी । इस युग के कवियों ने जन जीवन को सुधारने का महत्वपूर्ण दायित्व अपने ऊपर ले लिया । उन्होंने इतिहास एवं पुराण के आदर्श पात्रों को जन सामान्य के सामने रखा । इन सभी प्रयत्नों के मूल में सरस्वती पत्रिका की भूमिका अवश्य रही है । "उस समय की "सरस्वती" हिन्दी कविता और हिन्दी भाषा का व्याकरण है ।"[1] मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल "सनेही" नाथूराम शर्मा शंकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस समय के प्रमुख कवि थे ।

संक्षेप में, द्विवेदीयुगीन कविता कलात्मकता की अपेक्षा भावात्मकता की कविता है । इसने पूर्ववर्ती कविता की रीति-शृंगारिक प्रवृत्तियों के स्थान पर देशप्रेम सांस्कृतिक पुनरुद्धान, राजनीति आदि की महत्ता को स्वीकार किया । नारी के कोमल रूप के स्थान पर उसके सती, साध्वी, और वीर रूप की प्रतिष्ठा की ।

भाषा के सन्दर्भ में आम जनता की भाषा को काव्य भाषा का स्तर प्रदान किया । यह घटना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । कलात्मक अनुपलब्धी एवं इतिवृत्तात्मकता के आरोप लगाने पर भी यह जनसाधारण के निकट की कविता है । सामाजिक दायित्व के प्रति सजगता की कविता है । इन सब से बढ़कर परम्परा की मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर अपना एक अलग रास्ता बनानेवाली कविता भी है ।

---

1. नयी कविता रचना प्रक्रिया - डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी

स्थूल यथार्थ से सूक्ष्म सौन्दर्य की ओर

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत एक नयी सांस्कृतिक राजनीतिक चेतना की कविता का उदय हुआ जो छायावाद के नाम से जाना जाता है । यहाँ भी कविता लीक तोड़कर बहना चाहती है । नयी अभिव्यक्ति शैली एवं आलंकारिक काव्य भाषा के प्रयोग के साथ 1920 के आसपास छायावादी काव्यधारा का आविर्भाव होता है । प्रस्तुत काव्यधारा को पोषित करनेवाली राजनीतिक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ तो थीं अदृश्य । 1920 ई॰ से लेकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व गाँधीजी करने लगे । फलस्वरूप पिछडी एवं शोषित जनता स्वतंत्रता संग्राम की मुख्य धारा से जुडने लगी । भारतीय नारी को चार दीवारी से बाहर निकाला गया । पहली बार शत्रु के विरुद्ध निरस्त्र क्रांति हुई, इस महान आन्दोलन ने भारतीय जनता के चित्त को बन्धन मुक्त किया ।"[1]

आधुनिक शिक्षा पद्धति ने भारतीय जनता को परम्परागत रूढ संस्कारों से मुक्त कर दिया तथा पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कारों से मुक्त कर दिया तथा पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कार से परिचित कराया । नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों ने नवीन मान्यताओं को जन्म दिया । रामकृष्ण परमहंस, महर्षि अरविंद एवं स्वामि विवेकानन्द आदि ने भारतीय जनता के सामाजिक सांस्कृतिक पुनरुद्धान के लिए बहुत बडा योगदान दिया । आर्यसमाज, ब्रहमसमाज एवं प्रार्थना समाज ने भारत में आध्यात्मिकता की लहर दौडाई । पाश्चात्य साहित्य का गहरा प्रभाव तत्कालीन समाज पर पडा । अंग्रेज़ी शिक्षा के फलस्वरूप पारिवारिक सामाजिक एवं वैयक्तिक दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर आया ।

---

1. नया मोड (निबन्ध) आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी छायावाद निबन्ध संग्रह - सं॰डा॰ शम्भनाथ सिंह प॰24

छायावादी कविता व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित कविता है । द्विवेदीयुगीन आदर्शोन्मुख स्थूल यथार्थ के स्थान पर सूक्ष्म व्यक्तिवादी चेतना को प्रमुखता दी गयी । छायावादी कवियों ने व्यक्ति को अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त करने का प्रयास किया । इन्होंने माना कि व्यक्ति की मुक्ति से ही समाज की मुक्ति संभव है । छायावादी कविता में व्यक्ति अपनी शक्ति तथा सीमा के साथ अभिव्यक्त हुआ है, "वह मनुष्य को उसकी पूरी शक्ति और सीमा के साथ स्वीकारता है ।"[1] छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूति को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया । इन्होंने सौन्दर्य के स्थूल चित्रण की अपेक्षा सूक्ष्म चित्रण को स्थान दिया । प्रकृति का मानवीकरण इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता है । इनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ हिन्दी काव्य जगत के लिए बिलकुल नयी है ।

जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला" एवं महादेवी वर्मा को ही छायावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि की मान्यता प्राप्त है । छायावादी कवियों ने छन्दों के बन्धन से कविता को मुक्त करके छन्द मुक्त कविता की रचना की । प्रकृति की विराटता और व्यापकता की ओर छायावादी कवियों का विशेष आकर्षण था । इनकी सौन्दर्य चेतना में सूक्ष्मता एवं रहस्यात्मकता विद्यमान है । प्रकृति, प्रेम और नारी सौन्दर्य का चित्रण इनकी कविता की विशेषता रही ।

छायावादी कविता की और एक विशेषता उनकी शैली की है, ये कविता अलंकृत भाषा, मणिकुट्टन शैली, कलात्मक विच्छिति

---

1. छायावादी प्रगतिशील चेतना (लेख) - रामदरश मिश्र, पृ. 120

और शिल्प सौष्ठव के प्रति पृथुल आग्रह रखती है ।"[1] विराट प्रकृति की विलक्षणताओं के साथ साथ मानव मन की निगूढता को भी छायावादी कविता में वाणी मिली है । इसके लिए विलष्ट संस्कृत पदों से सम्पन्न लाक्षणिकता और सूक्ष्मता से युक्त भाषा का प्रयोग किया । "कवि रहस्यात्मक अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तु विन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को ही साध्य"[2] मानकर चला । छन्द की दृष्टि से इन्होंने मुक्तक शैली को अपनाते हुए उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, विरोधाभास, विश्लेषण विपर्यय जैसे प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रयोग भी किया ।

संक्षेप में छायावादी कविता मानववादी चेतना से अनुप्राणित कविता है । इसकी व्यक्तिवादी चेतना समाजबद्ध ही है । द्विवेदीयुगीन कविता स्थूल इतिवृत्तात्मक एवं आदर्शोन्मुख रही तो छायावादी कविता सूक्ष्म कल्पना प्रसूत एवं रहस्यात्मक । द्विवेदी युगीन उपदेशात्मक छन्दोबद्ध शैली के स्थान पर चिन्तनशील मुक्तक शैली को अपनाया । भाषा की दृष्टि से भी छायावादी कविता प्रौढ एवं संपुष्ट है ।

उसने कविता में व्यक्ति सत्ता को प्रतिष्ठित किया । द्विवेदी युगीन सामाजिकता के नीचे जिस व्यक्ति सत्ता का अंतरंग अनखुला रह गया उसको खोलने तथा व्यक्ति सत्ता की अनिवार्यता को प्रतिष्ठित करने का कार्य छायावादी काव्यधारा की सबसे बडी देन है ।

सामाजिकता का दूसरा दौर

छायावाद के अन्तिम चरण में, 1936 ई॰ के आस पास जिस नई काव्यधारा का उदय हुआ वह है प्रगतिवाद । प्रगतिवादी

1॰ छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन - डा॰कुमार विमल, पृ॰9

2॰ हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ॰रामचन्द्रशुक्ल, पृ॰442

साहित्य के विकास में सामाजिक गतिशीलता का विशेष स्थान है । काल जनता की चिन्तन प्रणाली में बदलाव ज़रूर लाता है । गांधीजी की अहिंसा एवं निरस्त्र क्रांति से युवा मानस असंतुष्ट हो गया । हिंसा के भय से स्वयं गांधीजी ने स्वाधीनता संग्राम को कभी कभार रोका भी था । लेकिन तब तक किसानों एवं मज़दूरों का आन्दोलन ज़ोर पकड चुका था । वामपंथी विचारधारा भी प्रासंगिक सिद्ध हो चुकी थी । फलस्वरूप 1934 ई॰ में 'कांग्रेस सोशलिष्ट पार्टी' की स्थापना हुई । द्वितीय विश्वमहायुद्ध की विभीषिकाएं, बंगाल का अकाल आदि ने सामाजिक जीवन के यथार्थ के बारे में नए सिरे से सोचने के लिए जनता को विवश कर दिया ।

1935 ई॰ में पैरिस में आयोजित "प्रोग्रसीव राइटेर्स एसोसिएशन" से प्रेरणा पा कर 1936 ई॰ में लखनऊ में "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई । सभापति के रूप में प्रेमचन्द जी ने जो भाषण दिया उसमें प्रगतिवादी दर्शन एवं साहित्य के साथ के अनिवार्य सम्बन्ध की उद्घोषणा की । उन्होंने बताया, "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा । जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो - जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्यों कि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है ।"[1]

प्रगतिवादियों ने व्यक्ति के स्थान पर समाज को महत्ता दी । प्रगतिवादी कविता में ही पहली बार सर्वहारा वर्ग को वाणी मिली है । छायावादी रहस्यात्मकता एवं सूक्ष्मता के स्थान पर भौतिकता एवं स्थूलता पायी जाती है । प्रस्तुत काव्यधारा सोद्देश्यपरक एवं सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है । मार्क्सवादी सैद्धान्तिकता को मान्यता देने के कारण, प्रगतिवादी काव्य में व्यक्ति का पूर्ण तिरस्कार

---

1. साहित्य सम्बन्धी कुछ विचार - प्रेमचन्द, पृ॰25

हुआ है । इनकी मान्यता है, "कला यद्यपि व्यक्तिगत आधार पर होता है, किन्तु उसकी चेतना उस वर्ग में समाहित तथा उससे विकसित है, जिसके भीतर रहकर कलाकारों में अपने अनुभव प्राप्त किये हैं ।"[1] इन्होंने सम्पूर्ण मानवता के चित्रण के स्थान पर केवल मनुष्य के राजनीतिक पक्ष को महत्व दिया । प्रगतिवादी कविता में केवल व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व को स्थान मिला । व्यक्ति के मन की भावना को पूर्णरूप से त्याग दिया । प्रगतिवादी कविता पाश्चात्य मार्क्सवादी विचार-धारा से प्रभावित है । इसमें ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं । इसलिए कविता में आध्यात्मिकता का तिरस्कार एवं ईश्वरीय सत्ता पर अविश्वास का स्वर पाया जाता है । उनके मुताबिक व्यक्ति के अकेले लडने से समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है । इसके लिए संगठित संघर्ष अनिवार्य है । तीक्ष्ण सामाजिक यथार्थ के चित्रण के साथ साथ वहाँ की पीडित एवं शोषित जनता पहली बार साहित्य का विषय बन गयी है, "जीवन के निम्नतम तथा तिरस्कृत स्तरों का स्पर्श संभवत: प्रथम बार प्रगतिवादी साहित्य ने किया था ।"[2]

प्रगतिवादी रचनाकारों ने साहित्य और जीवन के मूल सौन्दर्यबोध को सामाजिक यथार्थ से जोड दिया । कथ्य एवं संरचनात्मक दृष्टि से प्रगतिवादी कविता छायावादी काव्य संस्कार से विद्रोह करनेवाली कविता है । केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह "सुमन", रमेश शुक्ल "अंचल", नरेन्द्र शर्मा, त्रिलोचन, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रमुख कवि है ।

---

1. साहित्य सम्बन्धी कुछ विचार - प्रेमचन्द, पृ.25
2. हिन्दी नवलेखन - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.3।

संक्षेप में प्रगतिवादी कविता मार्क्सवादी दर्शन से अनुप्राणित समाजोन्मुखी कविता है । उसने छायावादी वैयक्तिकता से कविता को मुक्त करके बृहत् सामाजिक यथार्थ से जोडने का कार्य किया । द्विवेदी युगीन आदर्शोन्मुख राष्ट्रीय चेतना एवं छायावादी आध्यात्मिकता का तिरस्कार करते हुए प्रगतिवादी कविता ने युग यथार्थ के स्पन्दनों को आत्मसात करने का कार्य किया। यहाँ छायावादी काल्पनिक कविता की कोमलता के स्थान पर खुरदरे सामाजिक यथार्थ की कठोरता है । सर्वहारा वर्ग की मुक्ति की चेतना है । प्रगतिवादी कविता हिन्दी काव्य जगत में अधिक समय तक टिक नहीं सकी । इसका एक कारण उसकी अतिशय सामाजिकता है । उस सन्दर्भ में व्यक्ति एवं वैयक्तिक समस्याओं को लगभग नज़र अन्दाज़ किया गया । दूसरी ओर मार्क्सवादी दर्शन को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य में लिखी गयी कविताओं में काव्यांश की अपेक्षा दर्शन की बोझ थी । इसलिए वैसी कविताएँ जल्दी ही काल कवलित हो जाती है । फिर भी प्रगतिवादी चेतना का विकसित एवं परिवर्तित रूप नयी कविता और उसकी बादवाली कविताओं में कुछ भिन्नता के साथ हम देख सकते हैं ।

व्यक्तित्वान्वेषण की छटपटाहट

स्वतंत्रता संग्राम के अन्तिम चरण में एक और काव्यधारा का जन्म हुआ । आलोचकों ने इसको "प्रयोगवाद" की संज्ञा दी । 1943 ई॰ में "तारसप्तक" के प्रकाशन से प्रयोगवाद की चर्चा ज़ोर पकडती है । प्रयोगवादी कविता भी युगीन माँग का परिणाम है । स्वाधीनता संग्राम में पग पग पर पराजय, सामाजिक जीवन में प्रतिकूलता ही प्रतिकूलता नज़र आती है । विज्ञान ने व्यक्ति को व्यक्ति से एवं समाज से ही अलग कर दिया । इन सब ने मिलकर जनमानस में

निराशा, कुण्ठा एवं मोहभंग को जनम दिया । इस मानसिकता से प्रयोगवादी काव्य संवेदना का विकास हुआ ।

1943 में प्रकाशित "तारसप्तक" तथा अज्ञेय द्वारा सम्पादित "प्रतीक" पत्रिका ने प्रयोगवादी कविता के विकास में सबसे अधिक सहयोग दिया था । अज्ञेय द्वारा सम्पादित "तारसप्तक" की महत्ता ऐतिहासिक है । क्यों कि इसको "हिन्दी प्रकाशन के इतिहास में पहली बार लेखकों का एक सहकारी प्रयास माना जाना चाहिए और यह "स्वयं एक काव्यात्मक पुरस्कर्ता बन गया ।"[1] "तारसप्तक" में सात कवियों की कविताएं संकलित हैं । इन्होंने कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर अनेक नवीन प्रयोग किए है । एक साथ प्रकाशित होने पर भी इनकी कविताओं में किसी प्रकार की समानता नहीं है । इनकी वैचारिकता में भिन्नता है । तारसप्तक के वक्तव्यों में कविता सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को कवियों ने व्यक्त किया है । स्वयं अज्ञेय जी ने इस वास्तविकता को स्वीकारा और तारसप्तक की भूमिका में बताया, "तारसप्तक में सात कवि संग्रहीत है । उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल तक पहूंचे हुए नहीं है । अभी राही है - राही नहीं, राहों के अन्वेषी है ।"[2]

प्रगतिवादी कविता में तिरस्कृत व्यक्ति सत्ता की पुन: प्रतिष्ठा यहां हुई है । प्रगतिवाद के नारेबाजी स्तर की सामाजिक कविता के प्रति विद्रोह प्रयोगवादी कविता में देख सकते हैं । मध्य-वर्गीय जन-जीवन की विडम्बनाओं को यहां वाणी मिली है । इस समय के अधिकांश लेखक मध्यवर्गीय परिवार से आये हुए थे । मध्य-वर्गीय ज़िन्दगी की विपन्नताओं से परिचित इन कवियों की

---

1. मेरे समय के शब्द - केदारनाथ सिंह, पृ.3।
2. तारसप्तक की भूमिका - अज्ञेय, पृ.12

कविता में घोर वैयक्तिकता एवं निराशा का स्वर ही पाया जाता है । बौद्धिकता के कारण इनकी चेतना में शुष्कता आ गयी । इनकी सौन्दर्य चेतना में परिवर्तन आ गया । इन्होंने कुरूप, असुन्दर एवं भद्दे दृश्यों को भी अपनी कविता में स्थान दिया है । इन्होंने अपने आस पास के कटु यथार्थ के चित्रण के लिए व्यंग्य एवं कटूक्तियों का प्रयोग किया । इनकी विषय वस्तु व्यापक है । संसार के नगण्य से नगण्य वस्तु ने भी इनकी कविताओं में स्वर पाया है । सच्चे अर्थों में "प्रयोगवादी कविताएँ तत्कालीन परिस्थितियों के विरुद्ध व्यक्ति द्वारा की गयी भावात्मक प्रतिक्रियाएँ है ।"[1]

प्रयोगवादी कवि शिल्पगत दृष्टि से भी अनेक प्रयोग किए है । इन्होंने परम्परागत भाषा, बिम्ब, उपमान एवं प्रतीकों को छोड दिया । कहीं कहीं परम्परागत शब्दों में नवीन अर्थ भरने का प्रयास किया तो कहीं नवीन शब्दों के गठन का प्रयास । वैज्ञानिक प्रगति ने अनेक नवीन वस्तुओं से हमारा परिचय कराया और इन्हीं के चित्रण के लिए पुराना शब्द पर्याप्त नहीं था । इसलिए इस समय घिसी पिसाई शब्द का त्याग हुआ ।"[2] प्रयोगवादी कविता की अन्तिम सीमा रेखा खोज निकालना असंभव है । क्योंकि प्रयोगवादी कविता का अंत नहीं हुआ बल्कि उसका विकास हुआ है । "दूसरे सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवादी कविता "नई कविता" में परिणत हो गयी । इस नई काव्य संवेदना के हस्ताक्षर हैं । अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमीचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि ।

---

1. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.6।
2. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ.62

इस प्रकार देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रयोगवादी कविता भी अपनी पूर्ववर्ती रूढ काव्य परम्परा से विद्रोह करनेवाली कविता है । उसमें मात्र विद्रोही मानसिकता ही नहीं बल्कि नए की तलाश भी है । नए कथ्य एवं शिल्प की तलाश प्रयोगवादी कविता को युगीन यथार्थ से जोड़ती है । स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कविता नएपन की तलाश की कविता भी है ।

सन्तुलित संवेदना की अभिव्यक्ति

"दूसरा सप्तक" (1951) के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवादी कविता "नई कविता" में परिणत हो गई । नयी कविता में स्वाधीनोत्तर भारतीय परिवेश से उद्भूत नई चेतना की अभिव्यक्ति है । विडम्बना की बात यह है कि भारतीय जनता को एक साथ दो त्रासदियों की मार्मिक पीडा सहनी पडी है । एक ओर स्वर्ग आज़ादी दूसरी ओर भारत का विभाजन । उस समय तक जिन धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की पूजा होती रही उन सब का सर्वनाश हो गया । जिस स्वाधीनता के लिए हिन्दू और मुसलमान मे हिल मिलकर संघर्ष किया था उसी ने उनको जानी-दुश्मन बना दिया । वे एक दूसरे को मारने काटने में संलग्न हो गए ।

भारत और पाकिस्तान के विभाजन के साथ ही गंभीर हत्याकांड हुए । जनता असुरक्षित एवं आश्रयहीन बन गई । शरणार्थी बनकर लाखों की संख्या में लोग भारत से पाकिस्तान की ओर तथा पाकिस्तान से भारत की ओर भागने लगे, "लाखों की संख्या में लोग पाकिस्तान से स्थानान्तरित होकर शरणार्थी के रूप में आये ।"[1] इनके पुनर्वसिन की समस्या नव स्वतंत्रता प्राप्त भारत

---

1. नयी कविता का इतिहास - डॉ. वैजनाथ सिंहल, पृ. 19।

सरकार के लिए चुनौती बन गयी । राजनीतिक अस्थिरता बनी रही । सरकार को विभिन्न प्रकार की आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पडा । 1948 ई॰ में गांधीजी की हत्या हुई । भारत के नव निर्माण केलिए यह बहुत बडा आघात सिद्ध हुआ । खाद्य सामग्रियों केलिए भी भारत को विदेशों से निर्भर रहना पडा । 26 जनवरी 1950 को भारत का अपना संविधान लागू कर दिया गया । संवैधानिक स्तर पर व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को वाक्स्वातंत्र्य को, स्वीकृति मिली । अस्पृश्यता एवं असमानता को दूर करने के नियम भी बनाए गए । पर ये सारे नियम पुस्तिका तक सीमित रहे । व्यावहारिक जीवन में इनका असर नहीं हुआ । व्यक्ति का यथार्थ पहले का जैसा ही बना रहा । स्वाधीनता के साथ ही साथ सुख और आह्लाद के सारे सपने बेकार सिद्ध हुए । "स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नये कवि ने भी खुशहाली के सपने संजोये थे ।"[1] तत्कालीन परिस्थिति निराशाजनक सिद्ध हुई । इसकी प्रतिक्रिया तत्कालीन साहित्य में मुखरित होने लगी । नयी कविता इस बदली हुई परिस्थिति की प्रतिक्रिया का दस्तावेज़ प्रस्तुत करनेवाली कविता है ।

'नये पत्ते' (1953) में प्रकाशित अज्ञेय के एक रेडियो संवाद में ही पहले पहल "नई कविता" शब्द का प्रयोग हुआ । अज्ञेय द्वारा प्रकाशित "प्रतीक" (1947) के भी नई कविता के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया । डा॰ जगदीशगुप्त और विजयदेव नारायण साही के सम्पादकत्व में प्रकाशित "नई कविता" (1954) लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित "निकष" आदि ने नई कविता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इसके अलावा लखनाऊ से प्रकाशित "युगचेतना" हैदराबाद से प्रकाशित 'कल्पना' एवं कलकत्ता से

---

1. नयी कविता में मूल्य बोध - शशि सहगल, पृ॰40

प्रकाशित "ज्ञानोदय" आदि का भी नई कविता के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है ।

नई कविता न व्यक्तिवादी है, न ही समाजवादी । इसमें व्यष्टि एवं समष्टि का समन्वय है । पूर्ववर्ती काव्य परम्पराओं से भिन्न नयी कविता किसी वाद से सम्बद्ध काव्यधारा नहीं है । यह एक वादमुक्त काव्यधारा है । अत: इसमें आशा और निराशा, आस्था और अनास्था का संतुलित चित्रण हुआ है । स्थूल, सूक्ष्म सभी विषय नए कवि केलिए अभिव्यक्तिक्षम है । "नये कवि की दृष्टि संभवत: सार्वभौतिक है ।"[1]

नई कविता में दूसरे सप्तक एवं तीसरे सप्तक के कवियों को स्थान है । भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन - माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर साहाय, धर्मवीर भारती, प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवरनारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि प्रमुख है । इनके अलावा "तार सप्तक" के अज्ञेय मुक्तिबोध एवं गिरिजाकुमार माथुर को भी नई कविता में प्रमुख स्थान प्राप्त है ।

युग जीवन की गहरी पहचान से ही कोई भी साहित्यिक प्रवृत्ति रूपायित होती है । नयी कविता में युगीन यथार्थ के स्पन्दनों को सही ढंग से पकड पाने का प्रयास अवश्य हुआ है । अत: नई कविता की सबसे बडी विशेषता उसका आधुनिक भावबोध है, जो "नयी कविता की आत्मा है ।"[2] आधुनिक भावबोध की तह में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण स्थान है । इसलिए नयी कविता में हृदय के स्थान पर बुद्धि की प्रमुखता है । आधुनिक भावबोध ने नयी

---

1. नयी कविता संपादक जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण सही, पृ.1
2. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - मुक्तिबोध, पृ.40

कविता की सौन्दर्य चेतना को भी बौद्धिक बना दिया । जीवन यथार्थ का सत्य ही नये कवियों के लिए सौन्दर्य है । अत: इन्हें कोई भी वस्तु असुन्दर नहीं है । नए कवि व्यक्ति और समष्टि को अभिन्न मानते हैं । ये कवि व्यक्ति को समष्टि में रखकर देखने के पक्ष में है । "नयी कविता का क्रमश: विकसित स्वर व्यक्ति की पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है ।" प्रयोगवादी हास्य व्यंग्य का विकसित रूप नई कविता में पाया जाता है । प्रकृति चित्रण में भी बौद्धिकता एवं तर्कशीलता नई कविता को अलग पहचान देती हैं । काव्य-जगत में लघुमानव को प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी नयी कविता का है ।

नयी जीवन दृष्टि एवं सौन्दर्य चेतना के अनुरूप "नई कविता" के शिल्प गठन में भी परिवर्तन हुआ है । नए बिम्बों, प्रतीकों, उपमानों एवं भाषा की तलाश ने नई कविता को आम जनता के निकट पहुंचा दिया । नई कविता का शिल्प उसकी विषयवस्तु के अनुरूप है । "सौन्दर्य के स्तर पर नई कविता सर्वथा अभिनव शिल्प सज्जा से संयुक्त है ।"[1] युग यथार्थ के समग्र संप्रेषण के सिलसिले में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों की प्रस्तुति नयी कविता की अपनी विशेषता है । इस प्रकार देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है, "जीवन यथार्थ के विकृत-संस्कृत रूपों को संक्षिप्त संकेत पूर्ण शैली में अभिव्यक्त करने का प्रयास नई कविता के बिम्बों में हुई है ।"[2]

ज़ाहिर है कि नयी कविता समन्वय की कविता है । समन्वय का यह स्वर कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर मुखरित है ।

---

1. नई कविता की वर्तमान स्थिति (लेख) - गिरिजाकुमार माथुर, पृ.44
2. नई कविता और पौराणिक प्रतीक - मलयज, पृ.49

युग यथार्थ के संप्रेषण के संदर्भ में भी नयी कविता परम्परा का तिरस्कार नहीं बल्कि उसका पुन: मूल्यांकन करके अपनी गतिशीलता के लिए लायक तत्वों को ग्रहण करनेवाली आधुनिक कविता है ।

विद्रोह का कृष्ण-पक्ष

साठोत्तरी हिन्दी कविता में मुख्यत: दो काव्य-धाराओं की प्रमुखता रही है, अकविता और प्रतिबद्ध कविता । प्रतिबद्ध कविता को लेकर बहुत सारे तर्क प्रचलित है । कुछ आलोचक इसे समकालीन कविता, विचार कविता वामपंथी कविता जैसे विभिन्न नामों से अभिहित करते हैं । लेकिन अकविता इससे भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाली कविता है । इसमें निषेध और विद्रोह की प्रवृत्ति है । स्वाधीनोत्तर भारत के शासन तंत्र की पराजय, देश भर में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनीति तथा उसके नेताओं पर अविश्वास, औद्योगिकरण और महानगरीय परिवेश में आम जनता के जीवन की त्रासदी आदि अकविता में अपनी विद्रोही मानसिकता के साथ अवतरित होती है "आज की कविता समाज की मृत मान्यताओं से टूटी हुई परम्पराओं और सामाजिक, राजनीतिक भ्रष्टाचार से क्षुब्ध युवा मानस की अभिव्यक्ति है ।"[1]

अकविता अपनी पूर्ववर्ती काव्य परम्परा की समन्वयात्मक मानसिकता पर गहरा आघात पहूँचाती है । इसलिए अकवि यह घोषित करते हैं कि नयी कविता अप्रासंगिक हो चुकी है । उसमें वर्तमान जन जीवन के अंतरंग को अनावृत करने की क्षमता नहीं । वह कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर जड हो चुकी है । "नयी कविता की विद्रोही भावना सन् साठ तक आते आते समाप्त हो चली थी और

---

1. दिशान्तर की भूमिका - सं.डा.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
डा.परमानंद श्रीवास्तव, पृ.17

उसकी मुख्य धारा में एक प्रकार की स्थिरता आ गयी है ।"[1] इस स्थिरता से अपने को अलग करने केलिए तथा अपनी मानसिकता की गतिशीलता को द्योतित करने के लिए कवि ने कविता के आगे "अ" जोड़कर निषेध प्रकट किया । "अकविता पूर्णत: नकारात्मक नहीं है, न ही अ कविता । वह तमाम नहीत्व के बाद आगामी विलयन की भूमिका है ।"[2]

अकविता के प्रचार में मुख्यत: तीन संकलनों तथा "अकविता" नामक पत्रिका का योगदान अवश्य है । "प्रारंभ" (1965) "विजप" (1967), निषेध (1973) के माध्यम से अकविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठा मिली । जगदीश चतुर्वेदी के नेतृत्व में अकविता (1965) पत्रिका निकली गयी । इसके पांच अंक निकले हैं । उनके नामों से अकविता की प्रवृत्तियां स्पष्ट होती है - विघटन, शरीर, मृत्यु - नगर एवं व्यक्ति ।

जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल, श्याम परमार, चन्द्रकांत देवताले, परेश, विनय, सौमित्र मोहन, रवीन्द्रनाथ त्यागी, मुद्राराक्षस, रमेश गौड, कुमार विकल, सकलदीप सिंह, कैलाश वाजपेय, श्रीकान्त वर्मा, मोना गुलटी, दूधनाथ सिंह, ममता कालिया, मणिका मोहिनी, कमलेश, लीलाधर जगूडी, बेणुगोपाल, आदि कवियों को अकविता के सन्दर्भ में गिन सकते हैं । लेकिन इनमें से अधिकांश कवियों ने बदली हुई परिस्थितियों के साथ अपनी रचना धर्मिता को भी बदल दिया । पर जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, विनय परेश जैसे कवियों में अकविता की प्रवृत्तियाँ ज़ोरों पर दिखाई देती है । "विजप" संकलन को छोड़कर विमल के अन्य संकलनों में अकविता का स्वर नहीं है ।

---

1. दिशान्तर की भूमिका, पृ.14
2. अकविता और कला सन्दर्भ - डॉ.श्यामपरमार,

अकविता की प्रमुख प्रवृत्तियों की ओर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि आधुनिक जीवन की विसंगतियों से ही अकविता का विकास हुआ, "आज की कविता विराट विश्व में चल रहे विनाश की अविराम प्रक्रिया की देन है ।"[1] अकविता के प्रमुख स्वर निषेध और विद्रोह है । अकवियों ने परंपरागत सामाजिक मूल्यों एवं प्रचलित नैतिकता का निषेध किया । क्यों कि आज की विसंगत सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तिगत सम्बन्धों का महत्व नहीं रह गया । इसीलिए "यह नई धारा" आधुनिक जीवन के विभिन्न विरोधाभासों को एक नया संदर्भ देती है ।"[1] अकवियों ने जीवन की हर विसंगति को सहज रूप से स्वीकारा है । महानगरीय परिवेश की विसंगति अमानवीयता एवं भ्रष्टाचारिता से दम घुटकर जीनेवाले मानव का मोहभंग ही अकविता का मुख्य प्रतिपाद्य है । अकविता में सभी प्रकार के संबन्धों का अस्वीकार है । "आज की कविता अस्वीकृति की अनिवार्यता को सहज मानकर स्वीकार करती है ।"[2]

अकवियों ने अस्वाभाविक यौन चित्रण को भी मान्यता दी है । अनास्था, रिश्तों की निरर्थकता, संबन्धों का टूटन आदि से युवा पीढी को सारे के सारे मूल्य निरर्थक लगने लगे । इसीलिए अकविता में सारे नैतिक मूल्यों का निषेध हुआ है, "अकविता के कवि तो प्रेम, शहर, राजनीति और औरतों में कोई फर्क नहीं मानता । दुर्घटना और प्राप्ति, हत्या और अभिसार सभी बातों को एक सहज प्रक्रिया मानता है ।"[3]

इन्होंने अभिव्यक्ति की औपचारिकता को मिटा दिया । लेखक-पाठक के बीच की खाई को पाट दिया । इनकी भाषा

---

1. दस्तावेज - जगदीश चतुर्वेदी, पृ.3।
2. इतिहास हंता की भूमिका - जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 1984
3. दस्तावेज - जगदीश चतुर्वेदी, पृ.37

गद्य के निकट की भाषा है । इन्होंने नयी कविता की अभिजात भाषा का तिरस्कार किया । सभ्य समाज को सुनाने के लिए असभ्य भाषा की ही अनिवार्यता है । इसलिए अकविता की भाषा में अश्लील लगनेवाली शब्दावली का प्रयोग दिखाई पडता है । इन्होंने बनावटी महिमा को समाप्त कर दिया । स्पष्ट है कि अकविता समाज के कृष्णपक्ष को अनावृत करनेवाली कविता है ।
जगदीश चतुर्वेदी के 'इतिहास हंता', 'डूबते इतिहास का गवाह' जैसे काव्य संग्रहों की कविताओं में अकविता का असली स्वरूप अनावृत होता है ।

हिन्दी काव्य जगत में विमल का प्रवेश

"विजप" (1967) काव्य संग्रह के प्रकाशन से गंगाप्रसाद विमल अकविता से जुड जाते हैं । इन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक भ्रष्टाचारों के प्रति विद्रोह किया है और सडी गली मान्यताओं का निषेध भी । महानगरीय सभ्यता के, वहां के सर्पगुफाओं में दम घुटकर जीनेवाली युवा पीढी के मोहभंग को भी पंक्तिबद्ध करने में वे सफल निकले हैं । इन सबके बावजूद इन्होंने नैतिकता सामाजिक मूल्य एवं मानवीय सम्बन्धों का पूर्णत: निषेध नहीं किया है । उनका निषेध रूढ एवं जड परम्परा तक सीमित रहा । अत: विमलजी सामाजिक परिवर्तन के नब्ज को पहचानते हुए, व्यक्ति सम्बन्धों को मान्यता देते हुए अकवियों एवं अकविता के मल से दूर विमल ही रहते हैं । "विजप" के पर वर्ती काव्य संकलन विमलजी के विमल व्यक्तित्व के लिए पर्याप्त मिसाले हैं ।

"विजप" के उपरान्त उनके चार कविता संकलन निकले हैं "बोधिवृक्ष" (1983), "इतना कुछ (1990), सन्नाटे से मुठभेड (1994), "मैं वहां हूं (1996) - इनमें प्रतिफलित प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण आगे किया जाएगा ।

आधुनिक मानव का अभिशप्त यथार्थ

आधुनिक मनुष्य नई परिस्थितियों तथा समस्याओं से जूझने केलिए विवश है । विज्ञान की प्रगति, यांत्रिक सभ्यता एवं औद्योगिकीकरण ने उसकी संवेदना को भी एकदम बदल दिया । वह एक संक्रमण की स्थिति का सामना कर रहा है । उसके सामने सब कुछ प्रश्न चिन्ह बनकर खड़े है । अत: वह एक विशेष प्रकार की बेचैनी का शिकार बन गया है । विज्ञान, आधुनिक शिक्षा एवं यांत्रिक सभ्यता ने मानव के सांस्कृतिक धार्मिक सामाजिक एवं पारिवारिक संबन्धों को नाजुक बना दिया । परम्परा को पूर्णत: नकारने तथा आधुनिकता को एकदम अपनाने की क्षमता उसमें नहीं है । क्योंकि वह एक दुविधाग्रस्त मानसिकता में है । उसके भीतर एक विश्वासी व्यक्ति है जो परंपरा एवं मूल्य को साधनेवाला है तो बाहर एक अविश्वासी व्यक्ति है जो हर वस्तु पर सन्देह करता है । इस प्रकार आधुनिक मनुष्य दुविधाग्रस्त स्थिति में कुछ भी न कर पाने की विवशता को झेल रहा है । यह अनिश्चितता असंगति एवं अलगाव की स्थिति को भोगने के लिए आधुनिक मानव अभिशप्त दिखाई देता है । विमलजी ने अपनी कविताओं में आधुनिक मानव की इस खास स्थिति को रूपायित करने का कार्य किया है ।

सुबह से शाम तक विभिन्न प्रिय एवं अप्रिय घटनाओं से गुज़रने के लिए आधुनिक मानव विवश है । इस युग में मनुष्य कई असहनीय घटनाओं को चुपचाप सह रहा है । बिना इन्कार किए विभिन्न प्रकार की यातनाओं को सहना उनके लिए अनिवार्य बन गया है,

"पर सूरज के आने और विदा होने तक
हर रोज़ यह असहनीय वक्त
सहना पड़ता है । चुपचाप बिना इन्कार किए ।"[1]

सुबह से शाम तक मनुष्य विभिन्न कार्यों में व्यस्त है । उन की इस व्यस्तता भरी ज़िन्दगी में किसी प्रकार का बदलाव नज़र नहीं आता । हर दिन एक जैसे कार्यों में बीत जाता है और मनुष्य ऊबता रहता है । शाम होते ही एक दिन का पर्दा गिरता है और दूसरे दिन के लिए आकाश की ओर ताकता रहता है । यहाँ कोई नयापन नहीं । फिर भी मनुष्य जीने के लिए विवश है,

"सुबह से शाम तक
एक दिन बीतता है दिनचर्या में
और दूसरे के लिए
आँखें लग जाती है
आकाश की बाहों में ।"[2]

आधुनिक सभ्यता के कारण पारिवारिक संबन्धों की घनिष्ठता नष्ट हो गयी है । इसलिए वह परिवार में भी अकेला रह जाता है । व्यक्ति अपने में सीमित हो जाता है । घर आकर वह इतना सिकुड जाता है कि कोने में पडी किसी कुर्सी या पलंग में उसका संसार समाप्त हो जाता है ।

"घर में घुसता हूँ तो
सिकुड जाता है घर
एक कुर्सी
या पलंग के एक कोने में ।"[3]

---

1. इतना कुछ - इतना कुछ - डा॰गंगाप्रसाद विमल, पृ॰59
2. दिनचर्या - विजप - गंगाप्रसाद विमल, पृ॰35
3. घर - इतना कुछ - गंगाप्रसाद विमल, पृ॰68

अनचाहे यथार्थ का भोक्ता

पारिवारिक सम्बन्धों में आई हुई दरारों के कारण आधुनिक मानव एकान्तता का अनुभव कर रहा है । अकेलेपन से जूझनेवाले आदमी को लगता है कि घर उसे निगलने के लिए खडा है । नगर "पिचर प्लांट" की तरह हर दिन उसका रक्त चूस रहा है । व्यक्ति की अस्मिता नष्ट हो गयी है । नगर जीवन की विभीषिका की ओर इशारा करते हुए विमल कहते हैं,

"आदमी को निगलते भवन
चूसते
पिचर प्लांट की तरह पूरे के पूरे नगर ।"[1]

यह जीवन दो अन्धकारों के बीच की रोशनी में खिले फूल के समान है । आलोक में तो वह उभरता और विकसता दिखाई देता है । पर वह लक्ष्य हीन होकर निरंतर त्रासदायक स्थितियों का सामना कर रहा है । यहां के मनुष्य उन्हीं त्रासदायक स्थितियों से गुज़रने के लिए विवश है,

"दो अन्धकारों के नीच
खुली रोशनी में
खिला है जीवन का फूल
दिखता है आलोक में उभरता
विकसता
सतत त्रासद में भटकता निर्मूल ।"[2]

---

1. अशमित - विजप, पृ.12
2. आदिम जिजासा - इतना कुछ, पृ.49

जीवन जैसे भी हो अपने अधूरेपन में भी पूर्णता का बोध जगानेवाला है । जीवन चाहे त्रासद हो या बेमतलब का, चाहे अपूर्ण या अंशमात्र, वह पूर्णता का बोध उत्पन्न करने में सक्षम है । वह अपने में पूर्ण है,

"जीवन चाहे जैसा है
त्रासद या बेकार
अपूर्ण या अंशमात्र
अपने अधूरेपन में
एकान्त पूर्णता का बोधक है ।"[1]

दु:खों की निरन्तरता ने आधुनिक मानव के चारों ओर चक्रव्यूह रचा है । आदमी लगातार इन्हीं दु:खों से निपटने के लिए संघर्ष करता रहता है । वह भविष्य को सुखमय बनाने के उद्देश्य से दु:खों की समानान्तर रेखाएँ खींचते हुए उन्हीं से झगड़ता रहता है । दु:खों के समानान्तर चलने के लिए आधुनिक मानव विवश है,

"दु:खों के इस सतत व्यूह से
निपटते - झगड़ते
आगे के सीमित
बालगत विस्तार को
सुखद बनाने की होड में
दु:ख का नैरन्तर्य
समानान्तर रेखाओं की तरह
रचता रहा है .... ।"[2]

---

1. आधे का पूरापन - सन्नाटे से मुठभेड - गंगाप्रसाद विमल, पृ.53
2. उजाले की प्यास - सन्नाटे से मुठभेड -गंगाप्र साद विमल, पृ.103

यह संसार सर्पगुफाओं के समान भीषण एवं अन्धकारमय है । लगता है यहाँ सूर्य किरणों को भी लटकाया गया है । सामाजिक सम्बन्धों में कोई घनिष्ठता नहीं । मनुष्य सिर्फ भीड में अकेला बन कर जी रहा है । भीडों में व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है । वह इन भीडों में भी अपने लिए एकान्त खोजता है । ऐसी भीषण दुनिया में मनुष्य को फेंक दिया गया है । यहाँ से बचना नामुमकिन है । मनुष्य इन्हीं यातनाओं को सहने के लिए विवश है,

"मुझे फेंक दिया है यहाँ, इन सर्प गुफाओं में
यहाँ सूर्य किरणों को लटका, दिया गया है ।
.... वे केवल एक दिन
मुझे फेंक दिया है यहाँ । यहाँ भीडों में एकान्त
खोजते हैं लोग ।"[1]

अनिश्चितताओं के बीचों बीच

आधुनिक मनुष्य निर्णय लेने के लिए भी असमर्थ है । क्यों कि वह एक दुविधाग्रस्त स्थिति में है । कभी कभी निर्णय असत्य एवं असफल बन जाता है । फिर भी वह उसी के प्रति आकर्षित रहता है और लगातार उससे प्यार करते रहता है । अनिर्णय की स्थितिसे जूझने के लिए मनुष्य विवश है,

"निर्णयों की दलदल से बाहर नहीं हो पाते
निर्णयों के संदर्भ झूठे हैं । खोखले फिर भी हम उन्हें
लगातार प्यार किये जाते हैं ।"[2]

---

1. यातना - विजय, पृ.9
2. अश्रुत - विजय, पृ.11

अपनी इच्छाओं की पूर्ति केलिए व्यर्थ घूमनेवाला मानव अर्थहीन कार्यों में व्यस्त रहता है । अपने कार्यों को अर्थहीन जानते हुए भी समाज के अन्य लोगों के साथ शामिल होने के लिए वह विवश है । इसलिए कि समय के साथ चलने केलिए वह मज़बूर है,

"देखता नहीं हूँ
कि मैं भी मामूली से व्यर्थ में
अर्थहीन कर्म में
शामिल हूँ
कामनाओं का बोझ उठाते
लोगों के साथ ..... ।"[1]

मोहरा बदलने से चीज़ें बदल तो जाती है । पर इस से विजय या पराजय का निर्णय नहीं हो सकता । धीरे धीरे काल ही निर्णय लेता है । कभी कभी काल को भी निर्णय का शिकार होना पड़ता है ।

"निर्णय धीरे से
काल करता है या काल को भी
निर्णय का शिकार होना पड़ेगा ।"[2]

कवि ने स्वयं के माध्यम से अकेलेपन से गुज़रनेवाले मनुष्य की विडम्बनाओं का चित्र खींचा है । आदमी अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के बीच रहने पर भी अकेलेपन का शिकार है । उसे बार बार लगता है कि एक सिकुड़े हुए दिन के समान वह रह गया है ।

---

1. अंकुश - विजय, पृ.11
2. शतरंज - मैं वहाँ हूँ, पृ.44

वह एक अनबीते पृष्ठ के समान इन्हीं यातनाओं से निरन्तर जूझता रहता है,

"कई बार लगता है
मैं ही रह गया हूँ अबीता पृष्ठ
.....
इतने परिचित हैं
और इतने संबन्ध
इतनी आँखें हैं
और इतना फ्लाद
पर बराबर लगता है
मैं ही रह गया हूँ
सिकुड़ा हुआ दिन ।"[1]

कवि को ऐसा लगता है कि हमारे समाज में नायक कहने लायक कोई नहीं है । यहाँ धीर, वीर एवं गंभीर आदमी का अभाव है । फिर भी आधुनिक मनुष्य अपने झूठे अस्तित्व को बनाये रखने के लिए दूसरों के सामने पोज़ करता रहता है । भ्रम से ही सही कोई उसे नायक मान जाय यही उसकी मनोकामना है । सब नायक बनने के लिए आतुर है । लेकिन सब के भीतर एक खलनायक बैठा है । आधुनिक मानव का चरित्र यहाँ उद्घाटित हो जाता है,

"हम खलनायक
जो वीर; धीर, गंभीर नहीं कुछ
सिर्फ पोज़ करते हैं
शायद कोई दर्शक भ्रम से नायक हमें मान लें ।"[2]

---

1. शेष - विजप, पृ.27
2. हम खलनायक - विजप, पृ.19

जीवन में अ - विजयी होने पर भी दिग्विजय का सपना पालनेवाला है आधुनिक मानव । उसकी हार भी नहीं होती और जीत भी । वह व्यर्थ में इधर-उधर खोया सा घूम रहा है । यहाँ सब लोग खलनायक ही है । दिग्विजय के सपनों को लेकर चलने वाले मनुष्य लोगों को भ्रम में डालने के लिए सिर्फ नायक का पोज़ करता है,

"हम अ - विजयी खलनायक
दिग्विजयी सपने पाल रहे,
हारे-जीते कुछ नहीं
खोये खोये खाली फिरते हम खलनायक

दिक्भ्रमित पथिकों की पुकार

ज़िन्दगी की यातनाओं से बचने के लिए मनुष्य नए नए रास्तों की तलाश करता है । पर सभी निरर्थक निकलती है । वे भटक जाते हैं । इस भटकाव को दूर करने के लिए जब हम राहगीर से रास्ता पूछते हैं तो उसका कोई समाधान भी नहीं मिलता । क्यों कि राहगीर खुद रास्ते की तलाश में है । सब के सब भटकाव में है । लक्ष्यहीन एवं दिशाहीन है,

"रास्ता किधर है
रास्ते में पूछते
है हम
राहगीर से
जो खुद
है तलाश में ।"[2]

---

1. हम खलनायक - विजय, पृ.19
2. रास्ता इतना कुछ, पृ.54

मनुष्य अपने मंजिल की तलाश में है । फिर भी वह किसी मंजिल तक पहुँच पाने में असफल निकलता है । कल के अन्त से आज की यात्रा शुरू होती है । निरन्तरता का यह सिलसिला वर्षों से कायम है । इस का अंत कभी संभव नहीं है । क्योंकि अपनी अनिश्चित ज़िन्दगी के बीच आदमी को सिर्फ इतना ही मालूम है कि उसे बहुत दूर जाना है । किधर जाना है, कितनी दूरी पर जाना है अब तक इसका कोई निश्चय नहीं हैं । ज़िन्दगी सिर्फ यात्रा है । बचपन से लेकर अब तक जारी है,

"बहुत दूर जाना है हमें
कहाँ
नहीं मालूम
पर जा ही रहे हैं बचपन से
इधर या उधर
.....
फिर भी बहुत दूर जाना है दूसरों से ।"[1]

सपने में भटकनेवाले आदमी के सिवा वहाँ और कोई नहीं दीखता । उस सपने में जहाँ गाँव देखा था वह उतना सच था जितना जागने पर "मैं" सच है । "गाँव" और "मैं" दो सत्यों की बीच आखिर "मैं" कहाँ सच है, उसका अस्तित्व कहाँ है ? क्या "मैं" का अस्तित्व सपने में है या जागने पर,

"इन दो सत्यों के बीच
सपने की भटकन सा
भटकता हूँ मैं
मैं कहाँ सच हूँ
वहाँ
कि यहाँ .... ।"[2]

---

1. यात्रा - मैं वहाँ हूँ - गंगाप्रसाद विमल, पृ.13
2. मैं वहाँ हूँ - - गंगाप्रसाद विमल, पृ.25

मनुष्य कहीं भी नहीं पहुंचते,

"चल रहा हूं वर्षों से
नहीं पहुंचता हूं
कहीं भी ।
वहीं से शुरू
हो जाती है दिन की यात्रा
जहां हुई थी खत्म ।"[1]

सुख-सुविधा की तलाश करने वाले आधुनिक मानव सतत यात्रा कर रहा है । वह अपने गन्तव्य तक पहुंचने में असमर्थ है । उसके सामने अन्धेरे ही अन्धेरे हैं । फिर भी मानव अपने भविष्य की तलाश में है । वह अपने आपको इस लक्ष्ययुक्त यात्रा का पथिक मानता है,

"मैं उजाले से
अंधेरे की
लक्ष्यपूर्ण यात्रा का ही तो
पथिक हूं ।"[2]

स्वयं को दुनिया से अलग रखने एवं अपने आपको छिपाने के प्रयास में आदमी यह भूल जाता है कि वह आगे की तरफ चल रहा है कि पीछे । वह किसी निर्णय पर पहुंचने में असफल निकलता है कि वह समय की सीढ़ियां चढ रहा है या उतर रहा है । समय के साथ बहनेवाले मनुष्य के पास यह जानने के लिए समय नहीं है कि वह कहाँ किस दिशा की ओर चल रहा है । न उसे अपने कार्यों का कोई अहसास है,

---

1. गन्तव्य - इतना कुछ, पृ.19
2. वह जिसे देखना चाहता हूं - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.52

"पहने छिपाव का पोशाक
मैं सीधे चल रहा हूँ या पीछे
उतर रहा हूँ या चढ रहा हूँ
समय की सीढियाँ
जानने का न अवकाश है
न अहसास ।"[1]

आधुनिक मानव अपने लिए नये एवं ऊँचे मकान बनाने में रत है । लेकिन विडम्बना की बात यह है कि ऊँचे मकान में रहने पर भी मनुष्य का दिल दिनों-दिन छोटा होता जा रहा है । वह अपने लिए सब कुछ समेटना चाहता है और अपने आपको सीमित दायरे में रखना चाहता है,

"वे हसकर कहते हैं मुझसे
जैसे जैसे बढ रहे हैं ऊँचे मकान
आदमी का दिल छिपकर छोटा हो रहा है
क्या वजह ?"[2]

महानगर में गुम होता व्यक्ति जीवन

औद्योगिकीकरण ने गाँव को बडे बडे शहरों में परिवर्तित किया । गाँव की सुषमा शहर में गायब है । संक्रान्ति के दिनों गाँवों में बजाए जानेवाले नगाडों की धुनें आज गायब है । शहरों में जीनेवाले मनुष्यों को मासान्त या संक्रान्ति का पता नहीं चलता । सुबह और शाम का पता नहीं । अपने आप में सीमित रहनेवाले

---

1. वह जिसे देखना चाहता हूँ - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.52
2. आँख भर - इतना कुछ, पृ.6।

मनुष्य शहरी जीवन की व्यस्तता में महीना, हफ्ता एवं दिन भूल जाता है और इसके गुज़र जाने का अहसास भी उन्हें नहीं होता,

"शोल नगाड़ों वाले
मासान्त संक्रांति की दे धुनें
जब बजाती रहती है जब तब
शहर में पता नहीं मुझे
कब होता है मासान्त ? कब सुबह ?"[1]

महानगरीय सभ्यता के अकेलेपन से जूझनेवाले कवि की कल्पना से भी गाँव की तस्वीर दूर होती जा रही है । महानगर में सुबह से शाम तक दौड़नेवाले मनुष्य के सपनों में भी गाँव गायब है । उसकी कल्पना के द्वार बन्द हो गए हैं । गाँव का रूप भी पहले जैसा नहीं रह गया है । शहर की व्यस्तता में गाँव की खूबसूरती की ओर ध्यान देने का वक्त नहीं रह गया है,

"अब नहीं आ रहा है गाँव
और मैं अपने अकेलेपन में
कसमसाकर
दौड़ता हूँ सुबह-शाम महानगर की ओर
खोजता हूँ अपने सारे समूचे गाँव को ।"[2]

अपने को तलाशनेवाला व्यक्ति

आदमी उस भांडार की तलाश में है जहाँ से वह आया है । उस भांडार से बाहर आकर वह शून्य में विलयित हो जाता है ।

---

1. स्मृति की खोह - इतना कुछ, पृ.75

वह आँख खोलकर आकाश की ओर ताकते रहते हैं । उसके सामने सिर्फ शून्य है,

"अह
कहाँ है वह भाँडार
जहाँ से आते हुए रुक जाता हूँ मैं
जहाँ से आँख खोले हुए
आकाश ताकते हुए
फिर शून्य हो जाता हूँ ।"[1]

आधुनिक मानव विराट शून्य में कैद है । इस शून्य से मुक्ति पाना असंभव है । मनुष्य अपने समाज से संबद्ध है । इसलिए वह बन्धक भी है और पराधीन भी । उन्मुक्ति के लिए सिर्फ एक ही रास्ता है । अपने अन्दर के द्वार को खोलना । वहाँ न कारा है नही सीमा । वहाँ एक सीमातीत अस्तित्व है,

"हवा में खडा है साँस के तानों का भवन
और शून्य के
तथाकथित विराट में कैद
तुम कैद हो । कैद में
पराधीन
बंधक ।"[2]

---

1. आकाश - विजप, पृ.16
2. खुलता है भीतर द्वार - इतना कुछ, पृ.83

आधुनिक समाज की विभिन्न परिस्थितियों ने मनुष्य के सामने बाधाएं उपस्थित की है । मनुष्य के चारों ओर सरहद ही सरहद है । इन्हीं सरहदों को तोड़कर बाहर जाना मुश्किल है । इन सरहदों को पार करने पर भी उसकी सुरक्षा नहीं हो पाती । इसलिए नियति समझकर सरहदों में रहना ही समीचीन है,

"सरहदों के बाहर भी
सुरक्षा नहीं है ।
नियति यही है कि आदमी
रहे सरहदों में ।"[1]

नवीन सभ्यता ने मानव की यातनाओं को अधिक तीव्र बना दिया है । समाज में मनुष्य अकेला है । कभी कांटेदार बाड के रूप में कभी व्यवस्था की दीवार के रूप में वह मनुष्य की विवशता को बढावा देती है,

"वे चाहे कांटेदार बाडे हो
या
व्यवस्था की दीवार
अकेले आदमी के लिए
विवशताएं है आर पार ।"[2]

आधुनिक परिस्थितियों के साथ साथ मनुष्य अपने अहंकार का भी शिकार है । इस अहंकार से मुक्त होना व्यक्ति केलिए असंभव है । अहंकार एक नशा है । वह मनुष्य को अपने जाल में फंसा देता है ।

---

1. आधे सच की आधी झूठ कविता - बोधिवृक्ष, पृ.80
2. वही, पृ.80

इससे निपटना और स्वयं की कैद से मुक्त होना मुश्किल बन जाता है,

"मैं उस अहंकार के पेय से पीड़ित हूँ
जिससे मुक्ति संभव नहीं
असंभव है नशे से परे होना
असंभव ही है
स्वयं को
अपनी कैद से मुक्त करना ।"[1]

मनुष्य, निरंतर इन यातनाओं से मुक्त होने के लिए लालायित है । आधुनिक मनुष्य उन घोड़ों के समान है जो यह पहचानने में असमर्थ है कि वह कहाँ रहता है शून्य में या घुड़साल में । वह हर पदध्वनि में मुक्ति की कामना करता रहता है । लेकिन मुक्ति पाना असंभव है,

"हर पदध्वनि
और हर साँस में
मुक्ति का इन्तज़ार था
वह शून्य में हो
या घुड़साल में
घोड़ों को मालूम न था ।"[2]

मानव दरअसल में उन घोड़ों के समान है जो लगाम के कसाव या हिस्कार से आगे बढ़ने के लिए विवश है । यहाँ घोड़ों की इच्छा अनिच्छा की परवाह नहीं है । इनके समान मनुष्य भी

---

1. अपने बारे में - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.46
2. घोड़ों को मालूम न था - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.47

जीवन - त्रासदी रूपी डोर के कसाव से आगे बढने के लिए विवश है । यांत्रिक सभ्यता के फलस्वरूप मनुष्य समाज के साथ आगे बढने केलिए विवश है । जीवन में सफल या असफल होनेवालों में कोई फरक नहीं । सब के सब इसी कसाव से आगे बढने के लिए विवश है,

"हिस्कार या छडी से
लगाम के कसाव से
बस बढने के लिए
विवश थे ।"[1]

आधुनिक मानव विभिन्न प्रकार की दासताओं से भी त्रस्त है । वह अपने मन के अनुकूल कुछ नहीं कर पाता, यही वास्तव में उसकी विवशता है । मनुष्य उन्हीं यातनाओं से खुद को बचाना चाहता है । वह उस शक्ति की प्रतीक्षा में है जो उसे इस दासता से मुक्त करेगा,

"कौन करेगा मुक्त
इस दासता से ?
दासता यही कि
कुछ नहीं कर सकता मैं
मनचाहा ।"[2]

इस संसार में जन्म देकर स्रष्टा ने हमें अवश्य दण्ड दिया है । यहाँ दासता ही दासता है । आधुनिक जीवन की यातनाओं को

---

1. घोडों को मालूम न था - सन्नाटे से कुठभेड, पृ.47
2. क्षमा - इतना कुछ, पृ.2।

सहने केलिए हम विवश है । यह हमारा अभिशाप है कि हम इसे सहते रहें कभी इससे मुक्ति संभव नहीं है,

> "जिसने यह जीवन दिया
> उसने मुझे सबसे पहला दण्ड दिया .....
> दण्ड दिया कि मैं
> सहता रहूं जीने की यातनाएँ ।"[1]

अब तक तो हमारे सामने शताब्दी थी समय मोह एवं काल प्रहार था । मनुष्यों के हाथ खाली थे लेकिन दिमाग भरा हुआ था । अब तक सब कुछ के चित्र एवं अर्थ थे । लेकिन अब सब कुछ एक आकार-हीन धुआं में परिणत हो गये । हमारे जीवन में सिर्फ धुंधलका लयहीन स्वर यात्राएं ही रह गयी है । आधुनिक जीवन का पडाव आधारहीन रह गया,

> "अब तक शताब्दी थी, समय मोह और काल प्रहार
> अब तक हाथ खाली थे और दिमाग भरे हुए
> अब तक सिर्फ चित्र थे, अर्थ थे, सब कुछ
> और अब एक अकारहीन धुंआ है । धुंधलका
> लयहीन स्वर यात्राएं और आधारहीन पडाव ।"[2]

जीवन्त सत्य का वरण

इन विसंगतियों के बावजूद आधुनिक मानव प्रतीक्षारत है । एक सुनहले भविष्य की प्रतीक्षा करता है । लोग रात के अन्धेरे को

---

1. क्षमा - इतना कुछ, पृ.21
2. अश्रुत - विजय, पृ.19

चीरते हुए आनेवाले भोर की प्रतीक्षा करते रहते हैं । वह दिन के दोनों छोरों पर भविष्य के जीवन्त शोर को भर उठते देखना चाहता है,

"कब हो
भोर
रात की इस प्रशान्ति में
बेचैन मन
सोचता है कब हो
जीवन्त शोर
भर उठे
दिन के ओर-छोर ।"[1]

जटिलता पूर्ण इस जीवन के अन्त में समय अपना साक्ष्य, निर्णय एवं निर्देश मृत्यु के रूप में देता है । वह हमारे पिताओं एवं पूर्वजों को अपने साथ ले गया । हमारे लिए मृत्यु से बचना भी नामुमकिन है क्यों कि वह हमारा एकमात्र सत्य है । मृत्यु और समय को रोकना असंभव है । मृत्यु अनिवार्य है खैर समय के साथ बहने के लिए हम विवश है,

"समय मृत्युओं में हमें देता है साक्ष्य, निर्णय निर्देश
वह हमारे पिताओं पितामहों को
अपने आलिंगन में लिये बैठा है, क्रूर
कैसे कहे हम, उन से और समय से ।"[2]

---

1. दिन के ओर छोर - इतना कुछ, पृ.9।
2. अकविता - विजय, पृ.2।

त्रासद मानव जीवन के ऊपर और एक त्रासदी के रूप में मृत्यु वर्तमान है । वह भय आते धुए के समान मानव के ऊपर छायी हुई है । मृत्यु से बचना असंभव है, क्योंकि वह अनिवार्य सत्य है,

"एक भयआता धुआँ है हम सबके ऊपर
हम सब के ऊपर अन्तरीक्ष के रंगों का अन्धेरा है
हम सब के ऊपर मृत्यु है । अनिर्वचनीय ।"[1]

विमलजी की कविताओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें उन्होंने आधुनिक मानव के यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने का कार्य किया है । सामाजिक, राजनीतिक, यांत्रिक एवं वैज्ञानिक परिस्थितियों ने मनुष्य को जिस त्रासद स्थिति का शिकार बना दिया था उसका सही अन्दाज विमलजी की कविताएँ प्रस्तुत करती हैं । नगर जीवन की यातना, शहर बनते गाँव की विडम्बना, आधुनिक मनुष्य की विवशता, अपने में अपने को तलाशने की त्रासदी, शाश्वत सत्य की स्वीकृति आदि से विमल की कविता काफी संपुष्ट एवं प्रासंगिक निकलती है । इन की कविता में निराशा कहीं नहीं आशा का स्वर भी है । कवि आस्थावान है । वह जीवन की विसंगति को स्वीकार करता है साथ ही साथ जीवन की गतिशीलता एवं सत्य का वरण भी इस प्रकार विमल का काव्य सामाजिक यथार्थ का, उसमें जीवन बितानेवाले आधुनिक मनुष्य के जीवन-संघर्ष का दस्तावेज़ बन जाता है ।

---

1. अश्रुत - विजय, पृ.11

सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयाम

आधुनिक शिक्षा, वैज्ञानिक आविष्कार यांत्रिक सभ्यता एवं नयी आर्थिक परिस्थितियों ने मिलकर आधुनिक जीवन को त्रासद बना दिया । शहरीकरण, औद्योगीकरण और यांत्रिकता के परिणामस्वरूप मानव संबन्धों में दरार आ गयी । सामाजिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है व्यक्ति । लेकिन तेज़ी से बदलते समाज में व्यक्ति का अवमानवीकरण होता जा रहा है । संबन्धों में घनिष्ठता समाप्त हो गयी है । परंपरा एवं संस्कृति के साथ आधुनिक विचार-धारा की टकराहट होती रहती है। सामाजिक प्रगति के लिए सतत संघर्ष के बावजूद शोषित, पीड़ित एवं निरालम्ब जनता अब भी यहाँ विद्यमान है । आधुनिक समाज की इस वास्तविकता को विमलजी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है ।

अभिशप्त नगर जीवन

औद्योगीकरण के कारण बड़ी संख्या में लोग गाँवों से नगर आकर बसने लगे । नगरों के बारे में उनके मन में बहुत सारे रंगीन सपने थे । लेकिन नगरों की यात्रा में, या वहाँ के भटकाव एवं दुराव में लोगों के सारे सपने दब जाते हैं, नहीं तो दबा कर रखने के लिए गाँव छोड़कर नगर में बसने केलिए अनेक लोग आये । नगर के वातावरण में अपने आप को ढलने में वे सफल नहीं हुए । वे बेरंग होता जा रहा था । वे अपनी इच्छा से नगर आया था ।

"वह पौधा
स्वयं उखड़कर चला आया था
खुद को
रोपनेके लिए

अपने ही हाथों
आज अपने ही हाथों खुद को
खबर दे रहा है
कि नगर की आबोहवा
बाहर के पौधों के लिए
अनुकूल नहीं ।"[1]

नगर जीवन बहुत ही विडम्बनाग्रस्त है । नगर में ज़िन्दगी ठिठका हुआ है । जन्म और मृत्यु के बीच भविष्य ठिठका हुआ है ।

"चलते नगर में
शवों और जन्मों के बीच
ठिठका है भविष्य ।"[2]

वे विवश हो जाते हैं । अपने सपनों को साकार पाने का अवसर भी नहीं मिल पाता,

"प्रतीक्षा में था मैं
जंगलों से नगरों की यात्रा में
भटकाव और दुराव के बीच
छिपाता रहा वह छोटा सा अकल्पित सा स्वप्न ।"[3]

आधुनिक समाज में अनर्थ ही अनर्थ है । शाब्दिक स्तर पर ही नहीं आचरण, व्यवहार, आदत सब में अनर्थ ही दिखाई देता है ।

---

1. बेघर - मैं वहां हूं, पृ.32
2. आगामी होना - मैं वहां हूं, पृ.53
3. भविष्य - इतना कुछ, पृ.24

क्यों कि समय और समाज के बहाव में सब कुछ बदल जाते हैं । अत: बीसवीं शताब्दी सिर्फ अनर्थ से जुडी हुई है । यहाँ सब कुछ असंगत या अर्थहीन है । अर्थपूर्ण शब्दों का कोई स्थान नहीं है । आधुनिक मनुष्य इस अर्थहीन एवं असंगत स्थिति में संगति की तलाश करता है,

"वह अर्थ कहीं नहीं है
जो होना चाहिए
क्योंकि
बीसवीं शताब्दी तो
जुडी है सिर्फ
अनर्थ से ।"[1]

नगर जीवन शापग्रस्त है । वहाँ मनुष्य यद्यपि स्वस्थ दिखाई देता है तथापि वे अभिशाप्त प्रेतात्माएँ हैं । उनके लिए जीने का मतलब जीवन और मृत्यु के फासले को तय करना मात्र है । इस अभिशाप्त यथार्थ को विमल यों स्पष्ट करते हैं,

"एक बडे नगर में, हमारे जीने और मरने के बीच
बडी दूरी है ।
....
अंधकार स्वयं लेता है आकार
भय के संदर्भ में ज्योतित होने को
इन बडे नगरों में यह सब । बस इतना ही ।"[2]

---

1. भविष्य के लोगों से - बोधिवृक्ष, पृ.24
2. दिवित्र - विजय, पृ.25

शहर की खुशहाली का सपना लेकर गाँव छोडनेवाले जल्दी ही अपने किए पर पश्चाताप करने लगते हैं । वे समझ लेते हैं कि शहर की खुशहाली सतही है, ऊपरी चकाचौंध मात्र है । सचमुच वे नरक के शान शौकत सिर्फ दिखाता है । वहाँ के जीवन की तह में यातनाएँ हैं,

"वह तो आया था
ऐश्वर्य के स्वर्ग को देखने
उसे नहीं था अहसास
न विश्वास कि नरक के ठीक ऊपर ही
नरक के ही भित्तियों पर
टिका है शहर का स्वर्ग ।"[1]

शहर के लोग निरंतर अकेलेपन एवं त्रासदायक स्थितियों से गुज़र रहे हैं । गाँव की आत्मीयता एवं अपनापन यहाँ विलुप्त सा दिखाई देते हैं । शहर की चमचमाती रोशनी इन सब का आखेट कर रही है । वे अपने ग्रामीण जीवन के सुखद क्षणों में खो जाना चाहते हैं, जहाँ आत्मीयता, मानवीयता आदि का अब भी अर्थ रखता है,

"उसे याद आता है गाँव घर का अँधेरा
कितना आत्मीय प्राप्त था
विलुप्त है जो इस चमचमाती रोशनी में
रोशनी के आखेट का
नहीं है उसे ज्ञान ।"[2]

---

1. आखेट - इतना कुछ, पृ.62
2. वही, पृ.62

महानगर के त्रासदायक परिवेश में लोग यांत्रिक ज़िन्दगी बिताने के लिए विवश है । यहां व्यक्ति की अस्मिता केलिए कोई स्थान नहीं है । व्यक्ति संबन्धों में आत्मीयता का अभाव है । लोग यहां भीड बन कर जीवन बिता रहे थे । उसकी अपनी कोई अलग पहचान नहीं । युद्धों, महामारियों एवं बाढों के शिकार बन कर अस्तित्वहीन बन जाता है । अतीत के पृष्ठों में किसी भी मामूली इनसान का नाम नहीं होगा । क्यों कि यह समाज अवमानवीकरण का समाज है । मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचानने का प्रयत्न यहां नहीं है,

"मामूली लोगों में हम
न हमारे नाम किसी शिलालेख में
न इतिहास की किताब में
एक भीड की तरह
हम आये
युद्धों, महामारियों या बाढों में ।"[1]

लक्ष्य की तलाश करते हुए हम कहीं नहीं पहूँचते । क्यों कि यहां सिर्फ सड्क ही सड्क है, बडे हो या छोटे । आदमी सुबह से शाम तक इन्हीं जनपथों एवं राजमार्गों में भटकता रहता है । फिर भी वह अपने गन्तव्य तक पहूँचने में असफल निकलता है । गन्तव्य की ओर की यात्रा कहीं भी समाप्त नहीं होती । जीवन का अर्थ गति है । हम किसी एक लक्ष्य से तृप्त भी नहीं है,

"छोटे निर्जन पथ
मिलते हैं जनपथों में

---

1. आनेवालों की निगाह में - बोधिवृक्ष, पृ.34

दौड़ते हैं राजमार्गों की ओर
आगे रास्ता नहीं
कहाँ पहुँचते हैं हम लौटकर
झक से फिर सड़क पर
गन्तव्यों के बाद
यात्राएँ खत्म नहीं होती ।"[1]

इस महानगरीय सभ्यता में आदमी को समय के साथ बन्द किया गया है । उसका सत्य, इतिहास, दर्शन एवं कलाएँ समय के सरहदों पर सीमित हैं । सीमाओं को पार करने के लिए आधुनिक मानव अशक्त है । रुके वसन्त, नदी की गति एवं धीमे जीवन के साथ चलने के लिए वह बाध्य है । क्यों कि समय और परिस्थितियों से हटकर कुछ करना आसान नहीं है । समय के बन्धन में रहकर न चाहते हुए भी, उसी के साथ बहने के लिए आधुनिक मानव विवश है,

"मैं जानता हूँ
मुझे एक समय गोले में बन्द कर दिया गया है
उसी में मेरे लिए सत्य
इतिहास दर्शन और कलाएँ सीमित है
रुके हुए वसन्त और नदी गति में
धीमे जीवन में
प्रतीक्षा की आग में झुलसते वन में
चलने के लिए बाध्य हूँ ।"[2]

---

1. कहाँ पहुँचते हैं हम - इतना कुछ, पृ.67
2. असंपृक्त - विजप, पृ.12

जाहिर है कि विमल ने आधुनिक शहरी जीवन की विडम्बनाको अपनी रचना में भलीभाँति प्रस्तुत किया है ।

आश्रयहीन आम जनता का यथार्थ

आधुनिक मानव का मन विभिन्न प्रश्नों से भरा हुआ है । वह प्रश्नाकुल है । लेकिन बाहर की अशांति एवं दुनिया के घिनौने चेहरे के सामने वह खामोश हो जाता है । पर उसके भीतर एक दरिया है जो हमेशा प्रश्नों की लहरें मारती रहती है । देश का वर्तमान और अपनी अभिशप्त स्थिति के बीच आधुनिक मनुष्य खामोश रहने के लिए अभिशप्त है,

"प्रश्नों से भरा है
अन्तर
क्यों हो तुम शांत
जब कि दुनिया
अपने घिनौनी
अशांति में
चल रही है चाहे
किसी दिशा में ।"[1]

खेत-खलिहानों में काम करते लोगों की दुर्दशा आज तक मिटी नहीं है । वे अब भी प्रतीक्षा में है एक सुनहले भविष्य की जहाँ अपने सारे स्वप्न सार्थक हो । भरे कोठार, हाथों में छनंछनाती चूड़ियाँ, चाँदी के कंगण आदि मेहनतकश औरतों के

---

1. हमिस की संध्या - सन्नाटे से मुठभेड, पृ83

सपने में ही रह जाते हैं । अभी तक इन सपनों को साकार करने में न वे लोग सफल हुए है और न ही हमारा समाज । खेतों में दिन भर काम करनेवाले लोग सबेरे की प्रतीक्षा में है । वे इसका इन्तज़ार करते रहते हैं कि समाज के इस कुहासे को चीर कर कब आलोकपूर्ण सुनहले भविष्य झिलमिल आएगा,

"काम करती औरतों के
सपनों में
भरे कोठार
हाथों में छनछनाती चूड़ियाँ
चाँदी के टंकण में बदलेगी
कब होगा सबेरा
कुहासे को चीर
आलोक झिलमिलाएगा
खेतों में काम करते लोग
इसी की इन्तज़ार में है ।"[1]

शहरी जीवन के और एक पहलू को प्रस्तुत करते हैं विमल । अभाव ग्रस्त, त्रस्त, पीड़ित एवं आश्रयहीन लोग शहरों में सब कहीं है । आज के समान पहले भी इन लोगों की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे । रेल के पटरियों में सोते, इधर-उधर बिखरते चारों ओर दीनता से देखते हुए भी ये लोग किसी की आँखों में नहीं पड़ते । क्यों कि महानगर की व्यस्तता भरी ज़िन्दगी में इन्हीं की ओर ध्यान देने के लिए किसी के पास वक्त नहीं है ।

---

1. खेतों में काम करते लोग - इतना कुछ, पृ·89

" हां नहीं देखते होंगे
आज की तरह ही । उन्हें देखते ही नहीं है
पटरियों पर सोते इधर उधर बिखरते
सब ओर दीनता से तुम्हारी ओर टक लगाए
फिर भी नहीं दीखते ये लोग
यह कविता उन्हीं को संबोधित है ।"[1]

समाज में होनेवाली असामाजिक घटनाओं को कवि हत्या कहना चाहता है । क्यों कि जब ये सब होते रहते हैं तब भी हमारी सुरक्षा के अधिकारी सोते ही रहते हैं । दायित्वहीन अफसरों की जमघट के कारण समाज का पतन हो रहा है । इस पर कवि दु:खी है । इस सामाजिक अत्याचार या हत्या के प्रति जन साधारण को सचेत करना कवि का लक्ष्य है । उनका कहना है कि सिर्फ अफसर ही नहीं समाज के सभी प्रमुख व्यक्ति इसके लिए जिम्मेदार है,

"इतिहास को फिर से लिखना
मेरे सोते हुए लोगो
तब सो ही रहे थे विश्वास पात्र
अफसर
मैं हत्याएं कहता हूं ।"[2]

वैयक्तिक स्वार्थ चिंता के कारण समाज का पतन सुनिश्चित है । यहां के सब लोग अपने अपने भविष्य की चिंताओं में व्यस्त हैं । वे अपने भविष्य के बारे में सोचते हैं । इस सिलसिले में समाज और वहां की आम जनता उपेक्षित रह जाते हैं ।

---

1. तुम्हें संबोधित है यह - इतना कुछ, पृ.32
2. भविष्य के लोगों - इतना कुछ, पृ.52

इसलिए ये लोग भी सामाजिक अत्याचार की हिमायती करनेवाले हैं । इन्हीं के कारण बहुतों का वर्तमान और भविष्य नष्ट हो गए है,

"इसलिए कि ये अपनी अपनी
चिंताओं में
अपने निर्माण में रत थे
इन्हीं के भविष्य से
कितने ही अतीत
और वर्तमान टूटे थे ।"[1]

समाज के इस दु:खद स्थिति में भी सफेद पोश आदमियों से सावधान रहने का आह्वान देता है कवि । भीख मांगते परिवार के साथ अनैतिक व्यवहार करनेवालों को, बाढ से पीड़ित लोगों को, बेरोज़गार लोगों की भूख को अनदेखा करके अपने ही स्वार्थ केलिए सतत प्रयत्नरत लोगों को पहवानना चाहिए । इनके विरुद्ध संघर्ष करना अनिवार्य है, नहीं तो उन लोगों के साथ तुम्हारा कपडा भी शोषितों पीड़ितों के खून से सना हुआ ही रह जायगा,

"क्या तुमने कभी
भीख मांगते परिवार के परिवार देखे हैं
उनकी जवान लड़कियां
कामुक आंखों को ज्यादा खूबसूरत दिखाई देती है
बाढ पीड़ितों की जत्थे
बेरोजगार लोगों की भूख

---

1. भविष्य के लोगों - इतना कुछ, पृ.52

अगर तुम्ने यह सब देखा है
तो देखो अपने सफेद उजले
कपड़े
वे खून सने हैं ।"[1]

समाज के तमाम खतरों के बावजूद जो लोग अपनी रक्षा की चिन्ता नहीं करते वे सचमुच समाज के अभावग्रस्त लोग ही है । क्यों कि उनके पास नष्ट होने के लिए कुछ शेष नहीं रह गया है । उनके पास न तो कोई अपहर्ता आता है न कोई आतंकवादी । इन्हें महंगाई से भी डरने की आवश्यकता नहीं है । इसलिए वे सुरक्षा के प्रति बेफिक्र है । सुरक्षित भी है,

"तमाम खतरों के बावजूद
जो जीवित है वे
सुरक्षित ही हैं
उन्हें अभी तक
न तो अपहर्ता पकड़ पाये
न आतंक की गोली के शिकार बने
न उन्हें सुबह का
अखबार डराता है
न महंगाई के कारण
वे सुरक्षित हैं
जिन्हें रक्षा की चिन्ता नहीं ।"[2]

---

1. खून सने कपड़े - बोधिवृक्ष, पृ.28
2. सुरक्षित - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.66

मनुष्य विभिन्न प्रकार के शोषणों से पीड़ित है । शोषण वर्ग ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया है । वे छिपकलियों की तरह उसका रक्त पी रहे हैं । आधुनिक मनुष्य इन्हीं शोषकों के घेरे में पड़कर अपने शरीर से सतत रक्त बहाये जा रहा है । इस अयाचित स्थिति से उसकी मुक्ति नामुमकिन है,

"एक मनुष्याकार लगातार अपने मांस से
रक्त बहाए जा रहा है ।
हज़ारों छिपकलियां रेंगती हुई रक्त पीती है
मुझे फेंक दिया है यहां ।"[1]

क्रांति के बहाने समाज में हिंसा को ही बढ़ावा मिला । सामाजिक परिवर्तन की क्रांति में भी नरमेध को छोड़ा नहीं । लोग शांति के लिए क्रांति लाना चाहते हैं । लेकिन क्रांति के माध्यम से जहां जहां शांति की कामना की गई है वहां नरहत्या का ताण्डव ही हुआ,

"क्रांतियों में
नहीं छोड़ा तुमने
हिंसा के
नरमेध को
हर मोर्चे पर
जहां जहां शांति की
कामना की
वहीं तुमने छोड़ा
हिंसा का तांडव ।"[2]

---

1. यातना - विजय, पृ.9
2. ओ मेरी सदी - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.74

क्रांति की आग पूरे समाज में फैली हुई है । वह अपने शिकार की तलाश में है । हर गली मोहल्ले से वह अपना शिकार चाहता है । समाज में सब कहीं हत्यायें, क्रांति की आग एवं बलात्कार हो रहा है । सामाजिक विडम्बनाओं का चित्रण बड़ी खूबी के साथ कवि करता है,

"हर गली मोहल्ले से
चाहती है अपने शिकार
देखो देखो कहां नहीं हो रही हो ।
हत्या, आग जत्तीत बलात्कार ..... ।"[1]

हमारे समाज में हत्यारे, तस्कर एवं धूसखोर सुखी है, मामूली आदमी हर तरफ से पीड़ित है । ये लोग ज़िन्दा नहीं रहते बल्कि जिन्दामुर्दों का जैसा जीवन बिता रहे हैं । जीने के लिए वे विवश हैं । आधुनिक समाज आम जनता के अनुकूल नहीं वहां असामाजिक वृत्तियों में संलग्न लोग ही सुखी रहते हैं,

"जीवित है हत्यारे भी
तस्कर धूसखोर
बाकी लोग मौत के मुंह में
वैसे भी तैयार है
क्योंकि वे पहले से
किसी भी अर्थ में
जीवित नहीं है ।"[2]

---

1. ओ मेरी सदी - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.74
2. सुरक्षा - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.66

जिसे हम अपना समझते थे, जिन से आत्मीय व्यवहार करते थे वे आज हत्यारों में शामिल हो गये । उनकी आँखों से आत्मीयता की चमक ओझल हो गयी । वे पल भर में ही हत्यारों में शामिल हो गये, हिंसक बन गए । हमारे अपने ही लोग हमारी हत्यायें करते हैं,

"पल भर में
उनकी आँखों से विलुप्त हुआ
आत्मीय व्यवहार
पल भर में
वे हत्यारों में शामिल हुए
पल भर में हिंसक ।"[1]

मानव अपने अतीत और भविष्य को मान सकता है । अतीत में जो कुछ हो चुका है इसकी धारणा मानव रखता है । भविष्य में जो होनेवाला है इसके बारे में आदमी कल्पना कर सकते हैं । लेकिन वर्तमान को पहचानना सब से बडी मुश्किल बन गई है । वर्तमान आतंक का पर्याय बन गया है । इस प्रतिकूलता में अपनी इच्छाओं को दबाकर जीने के लिए मज़बूर है आधुनिक मनुष्य,

"मान सकता है आदमी
अतीत और भविष्य
यह नहीं जान पाता
वर्तमान का इतना हिस्सा

---

1. अपने ही थे वे - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.97

क्यों बन्धक है
इच्छाओं का
आतंक और
मायावी छलका ।"[1]

क्रांति की कामना

एक दिन ऐसा आएगा कि समाज के मामूली लोग स्वयं अपना भाग्य निर्णय करेंगे । समाज ज़रूर बदलेंगे । दूसरों के शोषण से मुक्ति पाने का समय आ पहुँचा है । देवदारू को संबोधित करते हुए कवि कह रहा है कि तुम्हारी सालों की प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं होगी । क्यों कि समाज को बदलने वाली क्रांति तुम ज़रूर देखोगे,

"तो देवदारू तुम ज़रूर देखोगे
क्रांति
और वे मामूली लोग
स्वयं अपना भाग्य निर्णय करेंगे ।
तुम खड़े हो देवदारू
भविष्य की प्रतीक्षा में
इसलिए व्यर्थ नहीं लगते ।"[2]

क्रांति की यह आग बहुत ही तेज़ है । वह प्रगति के पथ की सभी बाधाओं को दूर करती है । यह काँटेदार बाधाओं को प्रगति का रास्ता बनाती है । प्रगति के पथ पर जो बेज़रूरत पौधे है

---

1. गणितज्ञों से - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.17
2. देवदारू - बोधिवृक्ष, पृ.27

उनका जलना ज़रूरी है । अग्नानी की यह आग समाज के फिर से नया बनाएगा,

"बेज़रूरत पौधों को
जलना बहुत ज़रूरी है ।
यह आग कितनी क्रांतिकारी है
रास्ते से हटाती है
कांटेदार बाधाओं को ।"[1]

आधुनिक समाज में मानवीयता का नाश होता ही रहता है । इसको बचाने के वास्ते कवि यों आह्वान देता है । जिस प्रकार बादल घिरता है उसी तीव्रता एवं तेज़ी के साथ मानवीयता के दुश्मनों के ऊपर तुम टूट पडो और मानवीयता की रक्षा केलिए रक्ष शिबिर बनाओ । मानव मन से मानवीयता नष्ट होती जा रही है । उसकी रक्षा के लिए लोगों को सावधान रहना अनिवार्य है,

"यहां जैसे बादल घिर आते हैं जल्दी से
वैसे ही तुम
दुश्मनों पर
टूट पडो । मनुष्यता के दुश्मनों पर
.....
मनुष्यता की रक्षा के लिए
यहां अपने रक्षा शिबिर । लगाओ ।"[2]

---

1. जंगल की आग - बोधिवृक्ष, पृ.53
2. वही

देश की नस नस में परिवर्तन की कामना है । देश का वर्तमान इतना भीषण बन गया है कि भविष्य भी खतरे में है । देश के वर्तमान एवं भविष्य को सुदृढ बनाने की कामना कवियों करता है,

"पहाड इन्तजार में है
कब आयेगा
मध्य हिमालय से घुड़सवार
रौंदता हुआ अतीत
और वर्तमान के
दनदनाता हुआ शंख फूंकेगा
चीड वृक्ष हिल हिलायेंगे
मुक्ति ।"[1]

खेत जोतनेवाले किसान क्रांति का ध्वज लेकर आएंगे । सामाजिक परिवर्तन के लिए वे अपना खून बहाते हुए आयेंगे । तुम उसी दिन का इन्तज़ार करो । दूर पगडंडियों पर बिगुल बजाते हुए वे ज़रूर आयेंगे । उसी की प्रतीक्षा करो,

"दूर पगडंडियों पर
बिगुल बजाते लोग
आयेंगे ।
लाल खेत जोतते किसान
अपना ध्वज
वे अपने खून से रंग रहे हैं
इन्तज़ार करो । वे ज़रूर आयेंगे ।"[2]

---

1. पहाड कहते हैं बोधिवृक्ष, पृ.13
2. लाल इबारत - बोधिवृक्ष, पृ.68

विमल के काव्य के इस अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे अदश्य समाज-सजग कलाकार है । उन्होंने आधुनिक मनुष्य के वैविध्यमय जीवन के कोने कोने को छान डालने का कार्य किया है । महानगरीय परिवेश में अपने आपको खोकर जीने केलिए अभिशप्त, अवमानवीकृत आधुनिक मनुष्य की व्यथा कथा उन्होंने प्रस्तुत की है । आधुनिक मनुष्य की असुरक्षा एवं आश्वहीनता के साथ ही साथ उसकी मुक्तिकामी चेतना को भी उजागर किया गया है । सामाजिक एवं वैयक्तिक प्रतिकूलताओं से सतत संघर्षरत आधुनिक मानव अब भी आस्थावादी है । उसके मन में अब भी अपने लिए अनुकूल एक भविष्य की कल्पना है । इसके लिए कवि क्रांति की प्रतीक्षा करता है तो कभी परिवर्तन की । इस प्रकार विमलजी आधुनिक समाज के यथार्थ को उसकी पूरी गहनता एवं सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने में सफल निकले हैं ।

राजनीतिक यथार्थ

समसामयिक सामाजिक समस्याओं के प्रति सतत सक्रिय कवि हैं गंगाप्रसाद विमल । उन्होंने अन्य समस्याओं के साथ ही साथ राजनीतिक विडम्बनाओं के प्रति भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । कभी राजनीतिज्ञों की काली करतूतों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है तो कभी राजनीति के खोखलेपन को हास्य व्यंग्यात्मक ढंग से । आज के भ्रष्ट राजनीति, वापदूस राजनीतिज्ञ एवं अयोग्य सत्ताधारियों के बीच दम घुटकर जीनेवाली शोषित जनता उनकी रचना का मुख्य विषय है ।

प्रजातंत्र : प्रजा के खिलाफ का तंत्र

आधुनिक मानव राजनैतिक विसंगतियों से त्रस्त है । वह एक ऐसी दुविधात्मक स्थिति में है कि आज के सन्दर्भ में तटस्थ रहना असंभव-सा बन गया है । राजनीति एक प्रकार का तंत्र बन गयी है, जनता को भटकाने का धोखा देने का ।

"जाना भी दुष्कर है
या अब
राजनैतिक संबन्धों से न जा पाना
दोनों कितने समान है
तन्त्र
और राजनीति ।"[1]

आधुनिक समाज के सत्ताधारियों ने अनेक व्यवस्थाएँ बना दी है । इन से लाभ उठाते हुए इन्हीं के भीतर रहकर वे आम जनता की हत्या करते रहते हैं । आम जनता इन कारनामों से अनजान है । शासकों की शान-शौकत इन निरीह, शोषित, अज्ञ जनता के रक्त से रंजित है । सत्ता हासिल करने के लिए वह कोई भी षड्यंत्र करने केलिए तैयार रहता है ।

"व्यवस्थाओं की सुरक्षित छतरियों के भीतर
नायाब षड्यन्त्र चल रहे हैं
हो रहे हैं अभ्यास हत्याओं के
देखो, गौर से देखो
हर इबारत रंगी है घात के
रंग से ।"[2]

---

1. मानसरोवर - बोधिवृक्ष - डा.गंगाप्रसाद विमल, पृ.59
2. सुरक्षा - इतना कुछ - डा. गंगाप्रसाद विमल, पृ.64

वे सत्ता हासिल करने के लिए कुछ भी करेंगे । इसके लिए वे किसी से भी समझौता कर लेंगे । हर शर्त को मंजूरी देते हुए उनसे संधी कर लेंगे । सत्ता ही उनका लक्ष्य है न कि जनता या आदर्श,

"आलोक
अपने दर्प में अंधेरे से भिडने के लिए
दूसरे अन्धेरों से संधी करने को तैयार है ।"[1]

कवि प्रतीकात्मक ढंग से समसामयिक प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर व्यंग्य छेडता है । सामाजिक प्रगति के लिए सरकार विभिन्न योजनाएँ बनाती है । लेकिन ये योजनाएँ सफलता की मंजिल तक नहीं पहुँच पाती । क्योंकि अफसरों में अधिकांश लोग शोषक एवं कामचोर है । वे चींटियों के समान बीच में ही इन्हें खा लेते हैं । यहाँ भ्रष्ट अफसरों को चींटि के रूप में प्रस्तुत करके उन पर मार्मिक व्यंग्य करते हैं ।

"सरकार आटा डालती है
प्रजातंत्र का
और चींटियाँ बढ रही है
कष्ट विष धारण किए हुए ।"[2]

---

1. अन्धेरे के बीज - सन्नाटे से मुठभेड - डॉ.गंगाप्रसाद विमल, पृ.102
2. सात छोटी कविताएँ - विजय - डॉ.गंगाप्रसाद विमल, पृ. 35

व्यवस्था जंगल है । उन जंगलों की घाटियों में लुक छिपकर बेकसूर लोगों को लूटनेवाले दस्यु है सत्ताधारी लोग । वे निरन्तर आए जनता की हत्याएँ करते रहते हैं । सरकार, पुलीस एवं उसका कानून सदा इनसे निपटने की कोशिश में है । लेकिन इन लुटेरों में विजय पाना सत्ताधारियों के लिए भी असंभव है । क्यों कि वे सत्ता की छाया में ही पलते हैं ।

"वह जो जंगली घाटियों में
लुका छिपा फिरत है । हत्याएँ करता है
बेकसूर लोगों को लूटता है
तुम्हारा कानून
पुलीस और सरकार उससे
जूझती है ।"[1]

स्पष्ट है कि प्रजातंत्र का वह पुराना अर्थ बिलकुल बदल गया है । अब उसका अर्थ प्रजा के प्रति तंत्र बन गया है ।

जन शोषक नेता

आज राजनीति सबसे अधिक व्यंग्य का विषय बन गया है । क्योंकि अयोग्य नेताओं के कारण राजनीति का कोई मूल्य या आदर्श नहीं रह गया है । फिलहाल राजनीति सुविधा भोगने का एक उपाय मात्र है । आज कल मंत्रिगण तथा बडे बडे अफसर विदेश यात्रा करते रहते हैं । बहाना है आम आदमी की सेवा । सचमुच वे अपने

---

1. दस्यु - बोधिवृक्ष - डा॰गंगाप्रसाद विमल, पृ॰ 39

तथा अपने सगे संबन्धियों की भलाई करते हैं । ये यकमुच ही दस्यु है । सफेद पोश दस्यु । इन से सावधान रहने को कवि कहता है । क्योंकि ये जनसेवक नहीं, जनशोषक है ।

"बडे अफसरों के दौरे
मंत्रियों के भंत्ते
विदेश यात्राएँ
दोस्तो यह छिपी हुई दस्युता है
इसे सफेद पोशों का कानून
कुलीनों का समाज
उपलब्धि कहता है ।"[1]

राजनीतिज्ञों का चरित्र ही भ्रष्ट हो गया है । वे सत्य के मार्ग पर नहीं, असत्य को स्वीकार करते हैं । इस चारित्रिक पतन को कवि यों स्पष्ट करता है,

"जो कुछ हो रहा है
उसमें मेरी भूमिका
सिर्फ इतनी ही है
कि मैं देर की बहाने खोजूँ
और इनकार करूँ
कि यह मेरे
कहने से नहीं ..... ।"[2]

सालों से "गरीबी हटाओ" नारे लगाने वाले राजनेता गरीबी की रेखा से डरते हैं । आज भी समाज में गरीबी कायम है ।

---

1. जो कुछ हो रहा है - इतना कुछ - डा॰गंगाप्रसाद विमल, पृ॰13
2. वही, पृ॰13

इसके लिए जो कुछ किया गया वह या तो नारों में सीमित रहा नहीं तो उसको अनदेखा कर दिया गया ।

"और घाटियों में
घुप्प अन्धेरा
इस घुप्प अन्धेरे में
मुँह ढाँप सोई है गरीबी
वहाँ से थोडे ही नीचे है
वह रेखा
जिससे पीड़ित है राजनेता ।"[1]

इस प्रकार विमलाजी यहाँ राजनीतिक नेता के बदलते चरित्र की ओर व्यंग्य भरी दृष्टि डालते हैं ।

सत्ता की नृशंसता

आधुनिक युग में सत्ता का स्वरूप और अधिक विकराल बन गया है । वह जनहित पर सोचती नहीं । वह जनता के खिलाफ है । सत्ता की इस नृशंसय की ओर कवि इशारा करता है । हर साल हमारे देश में बाढ के कारण लाखों लोग मारे जाते हैं । बाढ के हत्याकांड के बाद सरकार की तरफ से ज़रूर आश्वासन मिलता है । यह प्रक्रिया हर साल ज़ारी है । सत्ता इस से अवगत है कि हर साल बाढ आएगी ही ज़रूर । लेकिन इस निरन्तर प्रक्रिया का शाश्वत समाधान ढूँढती नहीं । मंत्री, अफसर, बाबूलोग सब इसकी प्रतीक्षा में है । क्योंकि बाढ आने का मतलब उनकी जेब भर जाने का है ।

---

1. शिखर पर - इतना कुछ - डॉ॰गंगाप्रसाद विमल, पृ॰93

बाढग्रस्त लोगों के लिए जो सहायता दी जाती है वह उन्हीं तक पहुंचती ही नहीं । लोग मरे या न मरे सत्ताधारी लोग अपने बारे में ही सोचते रहते हैं,

"हर साल
बाढ से लाखों लोग मरते थे
मैं उन्हें हत्या कहता था
क्योंकि सत्ता को मालूम था
बाढ आती है ।
देतन भोगी बाबुओं को क्या मतलब
कि कोई झाबुआ में डूबे
आन्ध्रा या बिहार में ।"[1]

समाज की प्रगति की बात सरकारी अखबार तथा अन्य समाचार पत्र कहते ही रहेंगे । लेकिन समाज में कोई परिवर्तन नहीं होता । सारा परिवर्तन, सारी प्रगति पत्र पत्रिकाओं तक सीमित रहते हैं । इस सामाजिक यथार्थ की तरफ कवि यों प्रतिक्रिया प्रकट करता है,

"सरकारी खबरें या दूसरे अखबार
कहते होंगे बहुत कुछ
किसानों की आंखें, घास लाती औरतों के पांव
पानी उलीचते हाथ
मीलों मील दलते कदम
कह देते हैं सब कुछ
हां ..... सब कुछ ।"[2]

---

1. भविष्य के लोगों - इतना कुछ - डॉ॰गंगाप्रसाद विमल, 5।
2. सूचना - इतना कुछ - डॉ॰गंगाप्रसाद विमल, पृ॰3।

यहाँ कुछ भी बदलता नहीं । सत्ताधारी लोग अपने खोखले शब्दों के माध्यम से परिवर्तन लाना चाहते हैं । या यों कहिए कि उनके शब्दों तक सारे परिवर्तन सीमित हैं । कोई वास्तविक परिवर्तन होता ही नहीं । मीनारों में बैठनेवाले शासक लोग सामाजिक सच्चाई को गंभीरता एवं दार्शनिकता के नये लिबास पहनाते हैं । सच्चाई को बडी होशियारी एवं खूबसूरती के साथ छिपा रखते हैं,

"रोज़ खबर वैसी ही है फिर भी
बदलता है वह कुछ शब्द
कुछ बदल डालता है हाकिम
कुछ सत्ताधारी ।
बिलकुल ही बदल जाती है
सच की तस्वीर
ऊपर मीनारों में जाकर
फिर उसे पहनाता है लिबास ।"[1]

व्यवस्था और आम जनता

वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था के तहत कैसे निरीह जनता जीवन बिता रही है उसकी ओर कवि इशारा करता है । लोग सब कहीं है, जयजयकार में और हाहाकार में । वे समझ नहीं पाते कि सच्चाई क्या है ? क्यों कि एक षड्यंत्र के बीचों बीच वे जी रहे हैं । वहाँ सत्य का चेहरा भी काफी विकृत हो चुका है । इस विकृत स्थिति का वरण करते हुए जीने के लिए अभिशप्त आम जनता का चित्र कवि यों प्रस्तुत करता है,

---

1. राजकाज - इतना कुछ - डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृ.57

"किस तरह शामिल है लोग
चुपचाप हताशा में या पश्चाताप में
धंधेबाज लोगों के पीछे
कतार बांधे खडे चापलूसों के देखते
शामिल है शामिल
जयजयकार में भी । हाहाकार में भी ।"[1]

आम आदमी राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना है । समय के साथ बदलनेवाले शासन के अनुरूप बदलने केलिए वह विवश है । कभी इस शासन के साथ रहना कभी उस शासन के साथ रहना या कभी इन-उन के लिए लडना अपनी नियति मानकर वह चलता है । बदलने वाले शासकों के अनुरूप अपने आप को ढालने के लिए वह विवश है । सत्ताधारियों की इच्छा के अनुसार अपने को ढालने और उन्हीं के नारों में अपनी अस्मिता को पहचानने के लिए अभिशप्त आधुनिक मनुष्य को विमल जी यों प्रस्तुत करते हैं,

"मामूली आदमी इसे
भाग्य कहता था
नियति है उसके लिए
कभी इस शासन में
कभी उस शासन में रहना
इन-उन के लिए लडना
अपने आप को ढालना
और जैसा वे चाहते थे
उन्हीं नारों में
अपनी अस्मिता पहचानना ।"[2]

---

1. लोग - इतना कुछ - डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृ.49
2. नियति - बोधिवृक्ष - डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृ.15

सत्ता और शांति व्यवस्था

आधुनिक शांति व्यवस्था पर कवि व्यंग्य करता है । "शांतिप्रिय राजनेता समाज में शांति लाना चाहता है । इसके लिए हर संभव प्रयास करने केलिए तैयार है । शांति लाने के लिए गोलियाँ तैयार कर रखी थीं । लोगों को डराने केलिए लाठियों का प्रयोग करता है । चारों ओर अश्रु-गैस फैला दी जाती है । लोगों को डराकर या भगाकर शांति लाना चाहते हैं । गोली, लाठी एवं अश्रु-गैस शासकों के कोशग्रन्थों में शांति की नयी परिभाषा बन गए हैं । वे सचमुच जनता की वास्तविक समस्या का हल करना नहीं चाहते बल्कि वे जनता को दबाकर रखना चाहते हैं । आधुनिक युग की शांति व्यवस्था की ढोंग पर कवि परिहास करता है,

"गोलियाँ तय थी
डराने के लिए सिर्फ
लाठियों का इस्तेमाल किया गया
आँधी में अश्रु गैस का असर
थोडी देर रहा

सदियों से हम शांति के पक्षधर है । आधुनिक भारत में भी सब से अधिक खर्च सुरक्षा के नाम पर किया जाता है । आखिर यह शांति मंत्र क्या है ? यह बोलते आदमी को चुप कराने का साजिश मात्र है । हर निर्माण का सीधा संबन्ध हिंसा से है । चाहे यह निर्माण सुरक्षा की बाड के हो या प्रतिरक्षा के लिए तनी बन्दूक के हो । ये सब धरती को कुचलेंगे । इसलिए "शांति शांति का नारा व्यर्थ है ।

।.

"सदियों से
बोलते आदमी को
चुप कराने की साजिश है शांति ।
हर निर्माण
हिंसा से जुडा है
चाहे वह बाड हो सुरक्षा की
या प्रतिरक्षा के लिए
तनी बन्दूक ।"[1]

सब शांत हो गया
बाद में होंगे बयान
फिलहाल शांति ।"[2]

मुखौटाधारी नेता

कवि के मत में आज के नेता सचमुच अयोग्य है । वे नहीं जानते है कि वे क्या कर रहे हैं । बडी-बडी बातें करते है मतलब समझे बिना । बडी-बडी पालिसी पर गंभीर बातें करते हैं । लेकिन पता नहीं उसका क्या लक्ष्य है । इस प्रकार हर तरफ से असफल एवं अयोग्य लोगों ने मिलकर आधुनिक युग को बर्बाद कर डाला है । इस वास्तविकता की ओर कवि यों प्रतिक्रिया करता है ।

"बडी बातों में पालिसी फ्रेमर अफसर राजनीतिज्ञ
बडी बातों में कुर्सियों पर टिके

---

1. शांति के विरुद्ध एक कविता - मैं वहाँ हूँ, पृ.54
2. शांति और व्यवस्था के नियम - सन्नाटे से मुठभेड -
- डॉ. गंगाप्रसाद विमल, पृ.60

अभव्य के प्रति आश्वस्त, मौकों की तलाश म
जीवन में एक दंशन में: मामूली परीक्षा में प्रतीक्षित ।

शासकों पर व्यंग्य करते हुए कवि कह रहा है कि इन के लिए लाखों लोग युद्ध करते हैं और ईमानदारी के साथ मर मिटते हैं । लेकिन उस समय ये लोग शतरंज खेलते रहते हैं या नृत्य देखते रहते हैं या किसी बहस में व्यस्त रहते हैं । वे इन निरीह जनता पर निश्चिन्त हैं । कभी भी जंग के मैदान में उपस्थित नहीं होते । जंग के अंत में शहीद हुए वीर जवानों के लिए अश्रु बहाने वे आते हैं । यही आज के राजनीतिज्ञों एवं सत्ताधारियों की ईमानदारी है । इस खोखलेपन की ओर कवि यों इशारा करता है,

"और ईमानदारी से मारे गये
लाखों लोग
प्रायश्चित्त अशोक ने किया
वह राजा था
शतरंज खेल रहा था या नृत्य देखने में रत
नवरत्नों के बीच
बहस व्यस्त
रणनीति के आखिरी दस्तावेज़ों पर
हस्ताक्षेप कर रहा था
या शायद सोया हुआ ही हो ।"[2]

आज के नेता स्वयं अपने से डरते हैं । क्यों कि वे जानते हैं कि उनका जो रूप बाहर प्रकट है वह उनका असली रूप नहीं । असली रूप उसके भीतर ही भीतर छिपाकर रखा हुआ है । उससे वह स्वयं

---

1. लोग घूम रहे हैं - विजप - डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल, पृ॰19
2. हिंसा - बोधिवृक्ष - डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल, पृ॰55

डरता है । वह जानता है कि वह रूप खतरनाक है । फिर भी वह इसलिए सन्तुष्ट है कि मुखौटा बनने में वह बिलकुल सफल है। इस प्रकार आधुनिक नेता मुखौटाधारी है । इनका असली चेहरा डरावना एवं असामाजिक है । इसकी ओर कवि यों प्रतिक्रिया करता है,

"भौचक दे अपने ही चेहरे को
इतना नकली देख
हँसते हैं विमुग्ध
मुखौटों की कला पर ।"[1]

स्पष्ट है कि विमलजी की कविता राजनैतिक खोखलेपन के प्रति सक्रिय विद्रोह करनेवाली कविता है । वर्तमान सन्दर्भ में राजनीति का, नैना का, आदर्शों का कैसा अवमूल्यन हो चुका है, उसकी ओर कवि अपना दु:ख प्रकट करता है । उनकी पंक्तियों में मात्र दु:ख ही नहीं, बल्कि उन असामाजिक असंगतियों के प्रति सख्त विद्रोह भी है । इसलिए निस्सन्देह हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि विमल जी की कविता समसामयिक राजनीतिक यथार्थ का सही दस्तावेज़ है ।

प्रकृति की पहचान

कवि सहज ही प्रकृति-प्रेमी होता है । पर्वत, पेड, पक्षी, नदी, झरने जैसे सभी प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति उसके मन में विशेष लगाव है । हर युग में कवि विभिन्न ढंग से प्रकृति के साथ अपना रिश्ता जोडता है । द्विवेदीयुग, छायावाद, प्रगतिवाद एवं

---

1. राजकाज - इतना कुछ - डॉ.गंगाप्रसाद विमल, पृ.55
2. वृक्ष - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.50

प्रयोगवाद इसके लिए पर्याप्त प्रमाण है । प्रकृति के प्रति छायावाद युगीन भावुकता अब दिखाई नहीं देती । आधुनिक कवि प्रकृति को युगीन संदर्भ में युगजीवन के यथार्थ से जोड़कर देखने के पक्ष में है । इसलिए प्रकृति का नितांत भिन्न एवं नव्यतम रूप आधुनिक कवियों की रचना में हम देख सकते हैं । कवि प्रकृति के माध्यम से अपने अन्तरतम के अनुभवों को उद्घाटित करता है ।

प्रकृति की विराटता की स्वीकृति

आधुनिकता की विसंगति से त्रस्त कवि कहता है कि प्रकृति ही अच्छी है क्यों कि उसमें सब कुछ है जो मनुष्य को देकर उसकी थकान को दूर करती है,

"तुम्हारे पास सब कुछ है
जो मेरे पास नहीं
तुम वह भी हमें देते हो
और थकते नहीं हो ।"[1]

यहाँ कवि प्रकृति की कभी न समाप्त होनेवाली विराट सम्पत्ति की ओर इशारा करता है ।

ऋतुराज का वर्णन

महानगरीय विसंगतियों से जूझनेवाला कवि हिमालय की घाटियों की तरलता खोजना चाहता है । उन्होंने अपनी कविताओं में वसन्त की सुन्दरता को इस ढंग से उतारने का प्रयास किया है,

---

1. वृक्ष - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.50

हवा और फूलों में खिलखिलाने वाले वसन्त के लम्बे दिनों को कवि ने बडी सादगी के साथ चित्रित किया है । सुगन्धित हवा एवं रंगीन तस्वीरों से सज्जित वसन्त के दिन आसमान के पर्दों से बिना शोर किये झांकते हुए कवि को नज़र आता है । इसके साथ उन्होंने पर्वत घाटियों के रंगीन वसन्त का बिम्ब भी बडी ही सुन्दरता के साथ कविता में उतारा है ।

"वसन्त के दिनों
आसमान के पर्दों से
चुपचाप झांकता है एक मौसम
लम्बे डग भरते हुए दिन
हवा में और फूलों में खिल खिलाते हैं ।"[1]

प्रकृति का मानवीकरण

बर्फीली सुवासित घाटी में नव्य विकसित रंग बिरंगे फूलों को देखकर कवि को लगता है कि किसी नन्हें बच्चे ने द्वार द्वार पर फूलों को बिखेरकर सूर्य का प्रणाम कर रहा है । कहीं दूर जन्म लेनेवाली एक अज्ञात किलक ने अपना परिचय देने के वास्ते अनुगूंज करते हुए द्वारों पर बिखरे पडे फूलों में रंग भरने लगीं ।

"घाटियों के फूलों को
द्वार द्वार बिखर कर
उन नन्हें हाथों ने कैसे किया होगा
उगते सूर्य को प्रणाम ।

---

1. दोपहर की ओर - सन्नाटे से मुठभेड, पृ·52

किस अज्ञात देश में
जन्म लेती हुई किलक
गूँजकर
बिखर गयी होगी फूलों में
द्वारों पर परिचय देती हुई
रंगों में प्रकाशित ।"[1]

श्वेताभ बर्फ से आच्छादित घाटी की हरीतिमा की सुन्दरता का चित्रण कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है । बच्चों की किलकारियों से जिस प्रकार मानव मन प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार हवा की किलकारियों में घाटी जाग उठती है । कवि ने यहाँ हवा की गूँज की तुलना बच्चों की किलकारियों से की है।क्योंकि कवि हवा की गूँज में बच्चों की किलकारी सुनता है,

"दूर दूर जहाँ बर्फ ने हरियाली ढँक ली
वहाँ एक हवा
शिशु किलकारियों में
घाटी को जगाती है ।"[2]

प्रकृति की संजीवनी शक्ति

आधुनिकयुग बदलाव का युग है । बदलाव के इस दौर में मनुष्य विभिन्न प्रकार की यातनाओं से गुज़र रहा है । ऐसे लोगों की पीडा को दूर करने के लिए प्रकृति की विभिन्न सम्पत्तियाँ पर्याप्त है । कभी कुहरे में भीगी सुबह के रूप में तो कभी अनन्त नीलाकाश के

---

1. अज्ञात - विजय, पृ.15
2. दिनचर्या - विजय, पृ.34

रूप में मनुष्य को मोहित करती है । कभी पेडों में अंकुर की प्रतीक्षा करनेवाले पलाश के रूप में प्रकृति मानव को अपनी ओर आकर्षित करती है । विडम्बनाग्रस्त जिन्दगी को सहनेवाले मनुष्य को प्रकृति अपने इन उपादानों के माध्यम से सुख पहुँचाती है ।

"कहीं कुहरे भीगी सुबहें
कहीं अनन्त ! नीलाकाश ।
झरते हुए पेडों में
अंकुर के लिए प्रतीक्षित पलाश
कोई फूलों में खिलता हुआ मुख
स्मृतियों में डूबा हुआ वर्तमान
सारे बदलाव में
अनेक लोगों के लिए
जमाकर देता है कोई ढेरों सुख ।"[1]

यांत्रिक जीवन और प्रकृति

आधुनिक मानव की व्यस्तता भरी ज़िन्दगी में दिन की व्याप्ति सूर्य के निकलने से लेकर डूबने तक सीमित है । प्रकृति की खूबसूरती के बीच में भी मनुष्य को महानगर के यांत्रिक एवं दोहराने वाली ज़िन्दगी याद आने लगती है । इसलिए सूर्य के निकलने और अस्त होने में भी नयेपन की जगह एक प्रकार की निरन्तरता ही दिखाई देती है । सूर्य इस पर्वत से निकलकर डूबने के लिए उस पर्वत की ओर जाता है । उदय एवं सूर्यास्त के बीच खडे रहनेवाले पर्वतों की सीमा यहाँ निश्चित हो जाती है,

---

1. अनाम - विजय, पृ.33

"निकलता है सूरज
उस पर्वत से
डूबता है इस पर्वत की ओर
दिन के निवासी
पर्वतों के लिए
दिन का
यही है ओर छोर ।"[1]

गाँव से छूटकर महानगर की भीड में दमघुटकर रहनेवाले मानव के मन में बीच बीच में गाँव का सुन्दर चित्र जाग उठता है । साँझ के पहले ही अँधेरा छा जानेवाली घाटियाँ, संध्या के समय थके हुए वन से लौटनेवाले पशु एवं चरवाहे गाँव का सतत दृश्य है । समय, सन्ध्या में परिणत होते ही गाँव के परिवेश में होनेवाली घटनाओं को बडी सूक्ष्मता के साथ कवि ने यहाँ उतारा है,

"ढलानों पर कूदता है समय
घाटियों में
शाम से पहले
झपकता है अँधेरा
लौटते वन से थके
पशु और चरवाहे
सनातन से ।"[2]

नगर जीवन से जूझनेवाले मनुष्य प्राकृतिक तत्वों के प्रति आकृष्ट है । क्यों कि उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ।

---

1. दिनन् का ओर छोर - इतना कुछ, पृ.91
2. ढलानों पर - इतना कुछ, पृ.102

इस अपरिवर्तनीय नगर जीवन की ऊबाहट से बचने केलिए मनुष्य प्रकृति की क्रोड में आश्रय ढूँढता है,

"ऐसी ही सर्व हो जायेंगे
बरस
बहती रहेगी हवा
फूल खिलते रहेंगे
आकाश
अँधेरे में बढता ही रहेगा
सूर्य की छोटी सी सरहद के पार
बढता ही रहेगा अंधकार
मैं याद करूंगा यही ।"[1]

प्रकृति में लियमान कवि मन

कवि वर्षा को बडी ही सुन्दरता के साथ चित्रित किया है । मुँह छिपाते हुए सुबह आया । शाम अपने मुँह पर पर्दा टांगकर आयी । रात के ताप को दूर करते हुए धरती की खुली हुई हथेलियों पर तर्पा की बूँदें चमकने लगी । वर्षा क्रुद्ध एवं चुपचाप है । वह किसी से कुछ कहे बिना लगातार बरस रही है । वर्षा-बूँदों की छनछनाहट को कवि ने बडी सादगी से प्रस्तुत किया है,

"मुह ढांपे सुबहें
पर्दे टांगी शामें
खुली हुई हथेलियों
बूंदे चमक जाना

---

1. हवा क्या कहे - इतना कुछ, पृ.20

लगता है ढह गयी तापित रातें
गुपचुप चुपचाप पडी
छन छन छन बाहों में
क्रोधित वर्षा का लगातार
बिना रुके बिना कहे
फल सा बरस जाना ।"[1]

प्राकृतिक सुषमा के साथ यहाँ उन प्राकृतिक तत्वों को भी वाणी मिली है, जो प्रकृति को खूबसूरत बनाती है । आँधी वन में जाकर शांत हो जाती है । बादल पसीज कर धरती को भिगो देता है । सूरज की किरणों ने भीगी हुई धरती को धोकर चमकाती है । धरती की सुन्दरता सन्नाटे की चुप्पी को तोड़ता है । पत्तों के चटख खटक सन्नाटे को मुखर बनाती है । प्रकृति को देखने में कवि की सूक्ष्मता एवं बारीकी यहाँ स्पष्ट दिखाई देती है,

"वन में शांत हो जाता है
अंधड
बादल
पसीजकर
देते हैं जल
जलथी धरती को धोकर
चमकाती है धूप
सुन्दरता
तोड़ती है सन्नाटे की चुप्पी
पत्तियों की चटख खट खट ।"[2]

---

1. नगर वर्षा - विजय, पृ.3।
2. वन में - इतना कुछ, पृ.16

प्रकृति के प्रति अत्याचार

मनुष्य अपने समाज में ही नहीं स्वार्थ पूर्ती के लिए दूसरों पर भी अत्याचार करने लगा है । वृक्षों पर होनेवाले अत्याचारों की ओर इस कविता में संकेत मिलता है । वृक्ष अपाहिज हैं । वे चल नहीं सकते । इसलिए अपनी सुरक्षा के वास्ते वह कहीं भाग नहीं सकते । इनके ऊपर अत्याचार करने केलिए लोग आतुर हैं । वे इन्हें काट डालते हैं । वृक्ष पक्षियों का आवास है । इसलिए वृक्ष के साथ साथ उन्हें भी बेघर बना देते हैं । इन्हें नष्ट कर लोग सदा सुख देनेवाली प्रकृति के यौवन को ही विनष्ट करते हैं । रेगिस्तान की सीमा की ओर ताकने वाली प्रकृति एवं प्राकृतिक सुषमा की स्मृति की ओर कवि इशारा करता है,

"वे चल नहीं सकते
अपाहिज
उन्हें काटते हैं लोग
उन्हें काटते हैं लोग
तो काट देते हैं
पक्षियों के आवास
प्रकृति का सदाबहार
यौवन
काट देते हैं लोग
स्मृति
और सरहद रेगिस्तान की ।"[1]

---

1. काग पेडों के पाँव होते - इतना कुछ

ऋतुओं में बदलती प्रकृति

पहाड, पेड एवं बहनेवाली नदी में कवि को निर्विकल्प समाधि याद आती है । पहाड को देखकर कवि को लगता है कि वह समाधि में है । पहाडों में खडे पेडों को देखकर लगता है कि वे प्रार्थना निरत है । कवि को लगता है कि पहाड अपने पुण्य को नदी के रूप में प्रवाहित करता है,

"निर्विकल्प समाधी में
स्थित है पहाड
प्रार्थना के लिए
झुके पेड
पडी पहाडियाँ
चुपचाप अनवरत
द्रवित पुण्य
पुण्य को
प्रवाह देती है नदियाँ ।"[1]

उगते सूरज की आभा में प्रकृति की सभी चीज़ें जाग्रत होती है । हरे-भरे पेड मौसम के साथ नंगे हो गये । बीते हरेपन को लौटने के लिए वह फिर से जाग उठा । इन सबके बावजूद चट्टान सोती रही । उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ । लगता है, निश्छल रहना उसकी आदत है,

"दिन उगा । आलोक ने दिखाई जाग्रति
चट्टान फिर भी सोती रही

---

1. प्रार्थना - इतना कुछ, पृ.98

उसकी प्रकृति थी या
शाश्वत निवास
पेड बने एक दिन हो गये नंगे
मौसम में । लौटने वह बीता हरापन ।"[1]

मौसम के बदलाव को बारीकी से देखते हुए कवि कह रहा था कि कुछ देर पहले मौसम बहुत ही शान्त एवं चुप था । वह पेडों की तरफ ताकता हुआ प्रशान्त था । अपनी छायाओं में दुबकनेवाले एवं अपने बदलाव को इशारा करते हुए दौडनेवाले बूटों को निरन्तर देखता रहा,

"मैं ने उसे देखा था
पिछवाडे खडे,
तब वह चुप था और शांत
पेडों की तरफ ताकता हुआ प्रशान्त ।
वह निरन्तर इस चुप में खडा रहा
देखता रहा कि कैसे एक बूढा
छायाओं में दुबकता है
और कैसे एक बूढा
उसकी तरफ इशारा करके दौड गया था ।"[2]

कवि ने यहाँ बडी ही सूक्ष्मता के साथ पेडों का चित्र खींचा है । कभी पेड को देखकर ऐसा लगता था कि वह प्रार्थनारत होकर चुपचाप खडा है । कभी वह बहुत क्रोधित होकर हिलने लगता है । कभी इसके बीच से हवा चुपचाप गुज़रती है । कभी कभी सीटी मारकर सन्नाटे को डराता है । पेड अपनी हरियाली से दूसरों को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करती है,

---

1. आँख भर - इतना कुछ, पृ.60
2. मौसम - विजय, पृ.13

"कभी कभी चुप होते हैं पेड
जैसे ध्यान मग्न हो
कभी हिलते हैं गुस्सैल से
कभी चुपचाप उनके बीच
गुज़रती है हवा
कभी सन्नाटा
सीटी मारकर दहलाता है ।"[1]

हिमालय की घाटियों में पले और बढ़े कवि वहाँ से सुदूर महानगर में ज़िन्दगी बिताने पर भी प्रकृति के प्रति उतावला है । उन्होंने प्रकृति चित्रण में सजगता, सहजता एवं सूक्ष्मता दिखाई है । कभी-कभी प्राकृतिक वस्तुओं में भी कवि महानगरीय ऊबाहट महसूस करता है । पर विमलजी के प्रकृति-वर्णन में अतिशय कल्पना या भावावेश की तीव्रता नहीं है । प्रकृति का संयमित वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है । प्रकृति के मौसमों में परिवर्तित सुन्दर रूपों का सविस्तार चित्र प्रस्तुत करने में कवि सफल निकला है । इस प्रकार देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विमल की कविताओं में प्रकृति प्रमुख विषय है । समसामयिक जीवन की विडम्बनाओं को प्रस्तुत करने में प्रकृति एक सशक्त माध्यम बनकर उनकी कविताओं को अधिक सहज एवं सरल बनाती है ।

जाहिर है कि विमलजी की कविता व्यक्ति समाज एवं प्रकृति के यथार्थ की कविता है । इसमें एक ओर व्यक्ति का त्रासद यथार्थ मुखरित है तो दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ के बहुआयामी सन्दर्भ । इसके अलावा प्रकृति के बहाने कवि ने खुद को अभिव्यक्त

---

1. खिड़की से हरियाली - सन्नाटे से मुठभेड़, पृ.87

किया है । अत: उनका सम्पूर्ण काव्य संसार व्यक्ति, समाज एवं प्रकृति का एक अनोखा सम्मिलन ठहरता है । इसमें से कवि विमल को या व्यक्ति विमल को अलगाना मुश्किल है । संपूर्ण काव्य सन्दर्भों में विमल के किसी न किसी प्रकार का सान्निध्य अवश्य महसूस होगा ।

तीसरा अध्याय

जीवन की समग्रता का संप्रेषण : उपन्यास

तीसरा अध्याय

जीवन की समग्रता का सम्प्रेषण : उपन्यास

हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा

उपन्यास विधा औद्योगिक सभ्यता की उपज है । औद्योगिक क्रांति ने सामन्ती सभ्यता के सारे जीवन मूल्यों को बदल डाला । औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न मध्यवर्ग के उत्थान के साथ उपन्यास का सीधा सम्बन्ध है, उपन्यासों का आविर्भाव मध्यवर्गीय आकांक्षाओं और समस्याओं को लेकर हुआ ।"[1] हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग उसके कोशगत अर्थ एवं पारंपरित अर्थ से बिलकुल भिन्न होकर "कथा साहित्य की विशिष्ट विधा के लिए प्रयुक्त हुई है जिसमें मनुष्य का सम्पूर्ण विवेचन किया जाता है ।"[2]

उपन्यास शब्द को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा हुआ है । लेकिन आधुनिक उपन्यासों को पुरानी परिभाषाओं द्वारा मूल्यांकित नहीं किया जा सकता । क्यों कि वर्तमान समाज की विविध परिस्थितियों ने ही इस सशक्त साहित्यिक विधा को जन्म दिया है, जिससे "वह मानव जीवन की विषमताओं

---

1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृ.32।
2. हिन्दी लघु उपन्यास - घनश्याम "मधुप", पृ.14

तथा उसके विभिन्न ज्ञान-विज्ञान को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो सका है ।"[1]

हिन्दी गद्य साहित्य के विकास के साथ साथ उपन्यास का भी उद्भव हुआ । लेकिन वहाँ देवकी नन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, हरिकृष्ण जौहर आदि लेखकों के जासूसी, तिलस्मी - ऐयारी उपन्यासों से जन समाज को तृप्त होना पडा । जीवन के यथार्थ से इन उपन्यासों का कोई सम्बन्ध नहीं था । प्रेमचन्द के "सेवासदन" से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में विकास के लक्षण दिखाई देने लगे । क्यों कि ऐसी एक सामाजिक परिस्थिति में प्रेमचन्द का आगमन हुआ था ।

इस युग में महात्मा गांधी स्वतंत्रता के लिए निरन्तर संघर्ष कर रहे थे । हथियार थे सत्य, अहिंसा और असहयोग । "जालियनवाला काण्ड" एवं "भगतसिंह के मृत्यु दण्ड से जनता का मनोबल कम नहीं हुआ । "साइमन कमीशन" का बहिष्कार एवं नमक-कानून - भंग जैसे आन्दोलनों से जनता के मनोदौर्य की पुष्टि ही हुई ।

नवीन शिक्षा पद्धति तथा कुछ सुधारवादी संस्थाओं के प्रयत्न के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज में नवजागरण का वातावरण छा गया है । पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से युवा पीढी परंपरागत रीति-रिवाज़ों को तोडकर स्वतंत्र नागरिकों के समान जीवन यापन करने के लिए लालायित हो उठी । तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों एवं परिवर्तनों का यथा तथ्य चित्र प्रस्तुत करने की शक्ति असल में गद्य साहित्य में ही थी । इसलिए उपन्यास विधा का ही विकास अधिक हुआ । क्यों कि

---

1. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - डा॰त्रिभुवन सिंह, पृ॰3

"वह मनुष्य जीवन के विविध आयामों को पूरी संश्लिष्टता के साथ यथार्थ रूप से उद्घाटित करता हुआ उसकी जिजीविषा और जीवट को अक्षुण्ण रखने की लालसा रखते हुए हैं ।"[1]

प्रेमचन्द अवश्य इन परिस्थितियों से प्रभावित इससे उनकी अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि रूपायित हो उठी । उन्होंने अपने चारों ओर फैले जीवन यथार्थ को देखा और परखा । इसके विभिन्न पहलुओं को उन्होंने अपने उपन्यास का विषय बनाया । पराधीनता किसानों का शोषण, शिक्षा अन्धविश्वास, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा समस्या जैसी अनेकानेक सामाजिक समस्याओं को उन्होंने पूरी सच्चाई के साथ चित्रित किया है । इसलिए उनके उपन्यास राष्ट्रीय एवं समाज सुधार की भावना से ओत प्रोत हैं ।

प्रेमचन्द हिन्दी कथा साहित्य को मनोरंजन के स्तर से बाहर निकालकर सामाजिक सच्चाई के साथ जोडने का कार्य किया, "उपन्यास कोरे मनोरंजन के दायरे से निकलकर पहली बार समाज से जुडे । अत: प्रेमचन्द का आगमन एक ऐतिहासिक घटना के रूप में लेना चाहिए ।"[2]

प्रेमचन्द अपने प्रारंभिक उपन्यासों में आदर्शवादी ही दीख पडते हैं । पर अपने अन्तिम उपन्यास "गोदान" में आदर्शवादिता की अपेक्षा यथार्थवादिता की प्रौढता दिखाई देती है । यहाँ उन्होंने ग्रामीण कृषक जीवन की ज्वलंत समस्याओं को सही अर्थ में पहचानने का प्रयास किया है । इसलिए ऐसा मानना गलत न होगा कि "आधुनिकता की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास ने पहला मोड शायद

---

1. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान - डा॰ दंगल झाल्टे, भूमिका
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृ॰399

गोदान में लिया है ।"[1] इनमें जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय बच्चन शर्मा "उग्र" चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि मुख्य है ।

प्रेमचन्द युग में ही हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा की ओर अग्रसर करनेवाला उपन्यासकार है जैनेन्द्र । उन्होंने उपन्यास के सौन्दर्यशास्त्र को ही बदल दिया । प्रेमचन्दयुगीन सामाजिकता के स्थान पर उन्होंने व्यक्ति सत्ता को प्रतिष्ठित किया । जैनेन्द्र का प्रयत्न व्यक्ति को बदलना नहीं बल्कि उसको विश्लेषित करना है । यहाँ व्यक्ति समाज से न होकर अपने आप से लड़ता है । इसलिए जैनेन्द्र के उपन्यास व्यक्ति की जटिल मानसिकताओं के उपन्यास हैं । "परंपरित उपन्यासों में व्यक्ति या समूह समाज से लड़ता है तो जैनेन्द्र के उपन्यास के व्यक्ति अपने से लड़ते हैं । उनमें स्थूल सामाजिक, नैतिक संघर्ष के स्थान पर आत्मस्थ नैतिक संघर्ष और जटिल मानसिकता मिलती है ।"[2] इलाचन्द्र जोशी भी इसी धारा में आनेवाला लेखक है उनके उपन्यासों में भी व्यक्ति मन की गहराई को नापने का प्रयास हुआ है । कथानक का नयापन समस्याओं की विविधता और सूक्ष्म विश्लेषण की तीव्रता आदि से उनके उपन्यास अलग अस्मिता रखते हैं ।

इतिहास के पन्नों पर आधुनिक समस्याओं का अन्वेषण करने और समाधान खोजने की प्रवृत्ति का विकास भी प्रेमचन्दोत्तर युग में हुआ है । ऐतिहासिक उपन्यासों की धारा को आगे बढ़ानेवाले उपन्यासकारों में प्रमुख है वृन्दावनलाल वर्मा । ऐतिहासिक उपन्यासों का बीज दरअसल किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में देख सकते हैं । संक्षेप में कहे तो प्रेमचन्द के बाद सही माने में हिन्दी उपन्यास का विकास ही नहीं बल्कि पल्लवन भी हुआ है ।

---

1. समकालीन साहित्य - इन्द्रनाथ मदान, पृ.69
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृ.406

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास कई मोडों से गुज़रते हुए दिखाई पडते हैं । मुख्यरूप से इन्हें तीन दशकों में बाँटा जा सकता है 1950 तक के उपन्यास, सन् साठ तक के उपन्यास और साठोत्तर उपन्यास । सन् पच्चास तक के उपन्यास का मतलब दो विश्वयुद्ध, स्वतंत्रता प्राप्ति और भारत विभाजन तक के उपन्यास की ओर है । इसकी वास्तविक परिस्थिति का विस्तृत विश्लेषण आवश्यक है ।

दो विश्वयुद्धों ने विश्वमानवता को बहुत बदल दिया । मनुष्यता का विध्वंस हुआ । पुराने जीवन मूल्य के स्थान पर नवीन मूल्य स्थापित नहीं कर पाया । 1947 में भारत ने दासता के जंजीर तोड्कर सदा के लिए मुक्ति पाई । स्वाधीनता भारतीय जन मानस का सपना थी । लेकिन स्वाधीनोत्तर परिवेश उनके सपनों को सार्थक करने योग्य नहीं थे । स्वाधीनता प्राप्ति के साथ हुए विभाजन, हत्याकाण्ड, लूटमार आदि ने भारतीय जनमानस को तहस नहस कर डाला । इस समय व्यक्ति एवं समाज दोनों संक्रमण की स्थिति से गुज़र रहे थे । संयुक्त परिवार का विघटन, जातिवर्ण की मर्यादाओं की टूटन पुराने नैतिक मूल्यों पर सन्देह, युवा पीढ़ी का आक्रोश नवीन आर्थिक परिवेश, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों पर शंका आदि ने भारतीय समाज को एक संक्रमण की स्थिति में पहुँचा दिया ।

राजनीतिक क्षेत्र भी मूल्यहीनता के चक्कर में पड गया । जीवन का प्रत्येक क्षेत्र राजनीति से जुड गया । भ्रष्टाचार, स्वार्थता, सत्तालोलुपता और अनैतिकता का साम्राज्य सब कहीं फैल गया । बढ़ती हुई आबादी, महँगाई, बेरोजगारी, असमानता, दरिद्रता आदि के परिणाम स्वरूप समाज में कुण्ठा दिशाहीनता, भग्नाशा, उद्वेग, संत्रास तथा संताप फैल गया । मानवजीवन जटिल हो गया । इन परिस्थितियों ने हिन्दी उपन्यास को नया विषय दिया, उन्हें पनपाया । "हिन्दी उपन्यास ने मानव समाज के विविध परिवर्तनों के

साथ मानव जीवन के सतत बदलते प्रवाह के अनुकूल अपने आप को ढालने का प्रयास किया है ।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में उनकी ही परम्परा को आगे बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है । उनकी अधिकांश रचनाएं सामाजिक सच्चाई पर आधारित है । मार्क्सवादी विचारधारा से ओतप्रोत प्रगतिवादी लेखक है यशपाल । प्रेमचन्द ने जिस यथार्थोन्मुखता को प्रश्रय दिया था उसको आगे बढ़ाने का कार्य यशपाल ने किया । "वे मूलत: प्रेमचन्द परम्परा के ही उपन्यासकार है । प्रेमचन्द परम्परा का हो उसमें गुणात्मक विकास है ।"[2]

इस समय के साहित्य में फ्राइड एवं मार्क्स की विचारधाराओं का प्रभाव भी अवश्य हुआ है । मार्क्सवादी विचारधारा के लेखकों ने जहाँ समाज को उसकी यथार्थता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया वहाँ फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित लेखकों ने व्यक्ति की गुम होती हुई पहचान को पकड पाने का । जैनेन्द्र ने व्यक्ति के अन्तर्विरोधवाले जिस औपन्यासिक दृष्टि को प्रश्रय दिया था उसे आगे बढ़ाने का कार्य अज्ञेय ने की है । उनके "शेखर एक जीवनी उपन्यास उनकी प्रयोगधर्मिता का परिचायक है । "इसलिए आलोचकों का कहना है, "अज्ञेय कृत "शेखर एक जीवनी" के प्रकाशन के साथ हिन्दी उपन्यास की दिशा में एक नया मोड आया ।"[3]

शेखर अपने व्यक्तित्व की खोज करता है । नकार से शुरू करके फिर नकार में लौट आता है । इसी नकार में उसकी

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ॰कान्ति शर्मा, पृ॰23
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृ॰506
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं॰डॉ॰नगेन्द्र, पृ॰672

पहचान है । जड परम्परा के निषेध और जीवन्तता के ग्रहण में उसकी अस्मिता की पहचान है । प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से नदी के द्वीप भी गणनीय है । यह आधुनिकता से युक्त है ।

प्रेमचन्द की ही परम्परा को आगे बढानेवाला उपन्यासकार है भावती चरण वर्मा । उन्होंने इतिहास के माध्यम से वर्तमान जीवन - यथार्थ को अंकित करने का कार्य किया है । उसी प्रकार आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी यशपाल राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि ने भी हिन्दी उपन्यास को विकसित करने तथा दिशा निर्देश करने का कार्य किया है । सन् पचास के बाद के उपन्यास अपने आप में विशिष्ट हैं । एक ओर इन उपन्यासों में बदलते जीवन यथार्थों पर बल दिया गया है, तो दूसरी ओर उपेक्षित अंचलों के सांस्कृतिक तथा समसामयिक यथार्थ पर । इन उपन्यासों में एक प्रकार की मुक्ति की तलाश हम पा सकते हैं । यह तलाश वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी । लेखक ने अपने जीवन से जुडे हुए परिवेश एवं अनुभव जगत के वैविध्य को ही अभिव्यक्त किया है । इसलिए हम कह सकते हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् का साहित्य विशेष महत्व का है । एक ओर इसने जिए हुए सत्य पर बल दिया तो दूसरी ओर उपेक्षित अंचलों की ओर उसकी दृष्टि गई । "उपेक्षित अंचलों की ओर साहित्य का दृष्टिपात अनुभव की दृष्टि से तो महत्व-पूर्ण था ही अपने देश के असली स्वरूप को पहचानने के खयाल से भी बहुत उल्लेखय रहा ।"[1]

फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास सही अर्थों में आंचलिक है । उनके मैला आंचल और "परती परिकथा" विशेष उल्लेखनीय है । इसमें

---

1. स्वातंत्र्या परवर्ती उपन्यास - रामदरश मिश्र
आजकल - अगस्त 1972 स्वतंत्रता रजत जयंती विशेषांक

अंचल विशेष के अन्धविश्वास, भोलापन, माटी की महक, लोक संस्कृति आदि को समग्रता के साथ चित्रित किया गया है । उदयशंकर भट्ट का "सागर लहरें और मनुष्य" नागार्जुन का "बलचलमा" भैरव प्रसाद गुप्त का "सत्ती मैया का चौरा", रांगेयराघव का "कब तक पुकारू" जैसे उपन्यास इस धारा के अंतर्गत आ जाते हैं । अज्ञेय, धर्मवीर भारती देवराज आदि उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास की धारा को आगे बढाया । मन्मथनाथ गुप्त, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृत राय, लक्ष्मी नारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि ने सामाजिक चेतना से युक्त रचनादृष्टि को अपनाकर हिन्दी उपन्यास साहित्य को विकास की ओर ले जाने का महती कार्य किया है ।

सन् साठ के बाद के उपन्यासों पर चर्चा करने से पहले तत्कालीन परिस्थितियों पर चर्चा करना अनिवार्य है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां भारतीय जनमानस को चकनाचूर कर डालनेवाली थी । देश के वर्तमान एवं भविष्य को बदलने के लिए विभिन्न योजनायें बनाई गई । लेकिन यह योजना पराजित होती रही । कांग्रेस शासन से अतृप्ति ही अतृप्ति छा गई । भारत-चीन युद्ध और उसकी पराजय के कारण जन मानस में मोहभंग छा गया । इस प्रकार सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में भारतीय जनता की जिन्दगी को अत्यन्त विसंगत बना दिया । जीवन मूल्यों में अकाएक परिवर्तन होने लगा । युवक पढने केलिए पढने लगे । रोजगार की स्थिति निरीली हो गयी है । "वे अन्तत: बेकारी की भीड में दाखिल हो जाते हैं । जहां सिर्फ धक्कम धक्का है उद्योग और संघर्ष की रूखी राह में रुचि नहीं रह गयी है ।"[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास के पद चिन्ह - डॉ. मनमोहन सहगल पृ.18

प्राचीन मूल्य मर्यादा तथा नैतिकता आदि अप्रासंगिक हो गई । आस्था की जगह अनास्था ने ग्रहणकिया । इस प्रकार मोह-भंग आर्थिक राजनीतिक विसंगतियां सार्वजनिक जीवन की विडम्बनाएं आदि के कारण व्यक्ति भीतर से खण्डित तथा आशाहीन बन गया । इन सबका सीधा प्रभाव मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग पर ही पडा । "स्वतंत्र भारत के मध्यवर्ग विशेषत: निम्न मध्यवर्ग सब से अधिक विडम्बनाओं का शिकार हुआ है । वह प्रदर्शन और आत्मप्रवचन का जीवन जी रहा है । उसमें तनाव है, घुटन है नाना प्रकार की कुण्ठायें हैं और उसकी सारी ज़िन्दगी संघर्षों में बीतती है ।[1] साठोत्तर उपन्यास देश और काल की चेतना को समग्रता में चित्रित करनेवाला उपन्यास है । वह पाठकीय संवेदना को झकझोरने के साथ अपने सहभागी होने का बोध भी देता है । इस समय के उपन्यासों में समय और समाज की समस्याओं, प्रश्नाकुलताओं, चुनौतियों, अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा आधुनिक समाज की जटिलता एवं वक्राओं का भी चित्रण न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है । मनोविज्ञान, मार्क्सवाद, समाजशास्त्र, इतिहास अर्थशास्त्र

जैसे ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों को आत्मसात करते हुए ही लेखक सृजन के क्षेत्र में प्रवृत्त होते हैं । इसलिए वर्तमान जीवन की जटिलताओं तथा समाज की विद्रूपताओं को चित्रित करना लेखकीय अस्मिता का सवाल बन गया है । इसलिए अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास, घुटन, विद्रोह, चुनाव का स्वातंत्र्य, अस्मिता की तलाश, आधुनिकता-बोध, दाम्पत्य जीवन की टूटन, मध्यवर्गीय मानसिकता जैसी समसामयिक समस्याएं इस समय के उपन्यासों का प्रमुख विषय बन गयी हैं ।

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्य - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - डा.शालिनी स्वरूप गुप्त, पृ.495

उपर्युक्त समस्याओं एवं प्रवृत्तियों के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करनेवाले उपन्यास है मोहन राकेश के "अन्धेरे बन्द कमरे" (1961) नरेश मेहता का वह पथ बन्धु था" (1962) निर्मलवर्मा का "वे दिन" (1964) राजकमल चौधरी का "मछली मरी हुई" (1966) महेन्द्र भल्ला का "एक पति के नोट्स (1966) उषा प्रियंवदा का "रुकोगी नहीं राधिका" (1967) शिवप्रसाद सिंह का "अलग अलग वैतरणी" (1967) रमेश बक्षी का "जलता हुआ लावा" (1968), गंगाप्रसाद विमल का "अपने से अलग" (1969), श्रीकान्त वर्मा का "दूसरी बार", गिरिराज किशोर का "यात्राएं", मणिमधुकर का "सफेद मेमने", ममता कलिया का "बेघर", मन्नू भण्डारी का "आप का बंटी" (1971) आदि । इन उपन्यासों में सामयिक जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है । इस दौर के अधिकांश रचनाकार व्यक्ति के माध्यम से समय और सामाजिक स्थितियों को प्रकाश में लाए हैं ।

हिन्दी उपन्यास और गंगाप्रसाद विमल

सन् साठ के बाद का उपन्यासकार है गंगाप्रसाद विमल । उनके चार उपन्यास हैं । अपने से अलग (1969), कहीं कुछ और (1971), मरीचिका (1973), और मृगान्तक (1978) । इन उपन्यासों में साठोत्तर उपन्यास की लगभग सारी प्रवृत्तियां पायी जाती हैं । आर्थिक कठिनाई, पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन, युवा मानस की पीडा, नशा खोरी मध्यवर्गीय वेतना अकेलापन, अजनबीपन, राजनैतिक मूल्यहीनता आदि का चित्रण न्यूनाधिक रूप में पाया जाता है ।

अपने से अलग

"अपने से अलग" (1969) विमलजी का पहला उपन्यास है । यह उपन्यास आर्थिक कठिनाई से जूझनेवाले एक परिवार पर केन्द्रित है ।

इसका "पिता" तो एक अच्छा व्यवसायी था । पर उसे किसी दूसरी महिला के साथ सम्बन्ध है । माँ को इसकी जानकारी है । पर वह बच्चों तक इसका एहसास पहुंचने नहीं देती । उसे ज़िन्दगी में कई बार असफलताओं का सामना करना पड़ा है । वह खुद जानती है कि इन सभी समस्याओं का कारण वह महिला ही है । माँ और पिता के बीच की खाई बढ़ती गयी । पर इस टूटन को छिपाने के लिए माँ अपने आप को हमेशा व्यस्त रखती है । इन लोगों को पिता के आने की प्रतीक्षा है । अन्तिम घड़ी तक माँ सोचती रही कि एक बार उस महिला से अवश्य मिल जाए तो सारी समस्याएँ सुलझ जायेंगी ।

"मैं" नामक पात्र सारी कथा प्रस्तुत करता है । "मैं" के दो बड़ी बहनें तथा एक छोटी बहन एवं छोटा भाई है । बड़ी बहनों की शादी हो गई । छोटी बहन एवं भाई होस्टल में है । नशाखोरी एवं नारी संपर्क में उलझा हुआ यह युवक शहरी सभ्यता के दुष्परिणामों से पीड़ित आधुनिक युवा मानस का प्रतिनिधित्व करता है । छोटा भाई होस्टल में रहकर पिताजी के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है । जो बातें माँ छिपाकर रखना चाहती थी उन्हीं बातों को लेकर वह उन्हें पत्र लिखता है । शराब के नशे एवं लड़कियों के जंजाल में रहकर वह अपने दुखों से मुक्ति पाना चाहता है । जब "मैं" ने छोटे भाई की तलाश में होस्टल पहुँचा तो वहाँ उसका अस्त व्यस्त कमरा दिखाई पड़ा । देर रात तक वह घर नहीं लौटे । छोटे ने उन से कहा कि, "सुनो पापा ने किसी दूसरे शहर में एक परिवार बसा लिया है । वे वहाँ उसी तरह रहते हैं जैसे हमारे साथ रहते रहे हैं ।"[1]

---

1. अपने से अलग

बडी बहन के अपने बच्चों के साथ घर आने पर परिवार की यांत्रिकता में थोडा सा परिवर्तन ज़रूर आता है । लेकिन ज़िन्दगी में जो धीमापन आया था वह कम नहीं हुआ । सपना एवं मरी हुई चिडिया का गिरना आदि संकेतों के माध्यम से पारिवारिक टूटन की गहराई को दर्शाया गया है ।

पिता के दूसरे सम्बन्ध के बारे में माँ जान चुकी थी । परिवार की स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती गयी । फिर भी इन परिस्थितियों की जानकारी वह अपने बच्चों तक जाने नहीं देती । वह खुद-ब-खुद उन परिस्थितियों का सामना कर रही थी । इन परिस्थितियों के कारण परिवार के सदस्यों के बीच अजनबीपन बढता गया । एक ही परिवार के होने पर भी वे एक दूसरे से अजनबी बनकर रहते हैं । "अपने से अलग" के लगभग सभी पात्र इस अभिशाप को ढोनेवाले हैं ।

कहीं कुछ और

"कहीं कुछ और" विमल का दूसरा उपन्यास है । इसमें मुख्य रूप से पारिवारिक समस्याओं को ही चित्रित किया गया है । असुरक्षा बोध से उत्पन्न विभिन्न पारिवारिक स्थितियों का चित्रण इसमें हुआ है ।

यह एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसका हर सदस्य प्रतीक्षा में है । पिता शहर गये हुए हैं । वहाँ से चिट्ठी के साथ पैसे भी आएगा । बड़ा भाई यूनिवर्सिटी में पढ रहा है । आजकल पिता की चिट्ठी न मिलने के कारण उसे वहाँ से घर लौटना पड़ता है ।

बडे बहन पति का घर छोड्कर अकेली आ गई है। उसने एक लड्की को जन्म दिया । बाद में पता चलता है कि उसके पति को किसी नेपाली महिला के साथ सम्बन्ध है । मैं, छोटा भाई, बहन आशी, और माँ आदि इन बिगड्ती परिस्थितियों के शिकार हैं । पहले घर आनेवाले मेहमानों का स्वागत अत्मीयता के साथ किया करता था पर आज कल मेहमान बोझ लगने लगा है । उदार हृदयवाली माँ अब एकान्त प्रिय बन गयी है । अब भी उस घर के लोग चिट्ठी की प्रतीक्षा में है । लेकिन अभी तक चिट्ठी नहीं आई । वे अपने आपको दिलासा देने केलिए बहाना ढूँढ रहे हैं । बरसात के कारण सड्कें टूट गयी होगी । इसलिए शायद डाक आयी नहीं होगी ।

उस घर के लोगों ने पहली बार खाने की जगह पानीदार दाल पिया । माँ खूब रोयी । माँ कल के बारे में सोचकर बहुत चिन्तित हैं । "मैं" ने कहा इस प्रकार का सोचना व्यर्थ है । इससे मुक्त होने केलिए कोई न कोई तरीका अवश्य ढूँढना चाहिए । "मैं" तो माँ को समझाने की कोशिश करता है पर माँ इससे सहमत नहीं है ।

गाँव के कुछ लोग उनके घर आए । बडे पर चोरी का इलजाम लगाया । उसने साफ इनकार किया । फिर भी उसके मन में शंका बनी रहती है कि शायद वे लोग गाँव के दूसरे लोगों से यही बात दुहराएँगे । भोजन की जगह दाल ले लिया गया । घर में पडे ढेर सारे दूध के डिब्बों के सहारे बूलू ने चालाकी से दूधवाले से छुटकारा पाया । ऐसी परिस्थिति में भी माँ बच्चों को कोई भी सक्रिय कदम उठाने नहीं देती । शहर से लौटने के बाद वे लोग सचमुच आर्थिक तंगी से गुज़र रहे हैं । लेकिन माँ की यही दुविधा है कि घर की आर्थिक विपन्नता का पता लोगों को न लगे । अगर लग

जाय तो उनके सामने नंगा हो जाने के समान है । यह मध्यवर्गीय चेतना सम्पूर्ण उपन्यास में छाई हुई है जो उसे कुछ करने नहीं देती, जो उसे रोने नहीं देती, जो उसे भूख मिटाने नहीं देती । यह चेतना उसे एक ग्रन्थी के रूप में कुछ भी करने से रोककर रख देती है । पिता के साथ के रिस्ते में आये हुए अलगाव को छिपाने के लिए भी ये लोग तरीके ढूँढते हैं । मन को तसल्ली देने के लिए यही सोचते हैं कि कहीं पापा बीमार तो नहीं ? पापा की बीमारी असल में इनकी एक कल्पना मात्र है । फिर भी सब लोग पापा की बीमारी के बारे में सोचने का क्रम बना रखते हैं । गाँववालों से बचने के लिए भी यही खबर फैला दी । ये गाँववालों से दूर रहना अधिक पसन्द करते हैं । क्यों कि अपनी कमज़ोरियों का, कमियों का, पारिवारिक समस्याओं का पता किसी को न लगे । अपने चारों तरफ की परि-स्थितियाँ उन्हें बिलकुल अपरिचित लगती है । पहले से अधिक अपरिचित लगने लगे हैं । आज की परिस्थितियों के बीचों बीच रहकर "मैं" शहर छोड़कर गाँव आए दिनों की याद में डूब जाता है । नौकरी से रिटयर हुए पिताजी, विदा करने के लिए आए लोग, पिताजी के नाम पर चलनेवाले केस आदि की स्मृतियों में वह डूब जाता है । गाँव के घर आने पर पहले दिन ढेर सारे लोग देखने आए थे । फिर पापा का दूसरी नौकरी की तलाश में जाना, दीदी का अकेला आना कुछ ही दिनों में बड़े भाई का पढाई छोड़कर आना, सब के सब उनकी स्मृतियों में उभर आते हैं । "मैं" इन स्मृतियों में अपने को दिखाना चाहता है ।

इस प्रकार एक मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से वर्तमान समाज की मध्यवर्गीय मानसिकता का सहज चित्र "कहीं कुछ और" में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । मध्यवर्ग परिवर्तित परिस्थिति के अनुकूल अपने को बदलना नहीं चाहता । वह अपनी रूढ मानसिकताको टटोलते हुए झूठे अहं को सहलाते हुए अपने को दूसरों से दूर रखना या

छिपाकर रखना ही चाहते हैं । यह खास मानसिकता अपनी सहजता के साथ इस उपन्यास में रूपायित हुई ।

मरीचिका

इस उपन्यास का मुख्य पात्र "मैं" कम्यूनिस्ट विचारधारा से ओत प्रोत मध्यवर्गीय बुद्धिजीवि है । उन्हें अपने जीवन में बहुत सारी समस्याओं से गुज़रना पड़ता है । एक दिन अपने पुराने मित्र हरिप्रकाश से मुलाकात होती है । पहले हरिप्रकाश बहुत ही निम्न स्तर का जीवन बिताने वाला था । अब वह धनवान बन गया । अपनी सम्पन्नता का राज़ बनाते हुए कहता है कि ये सब गुरूदेव संत भजनसिंह की कृपा है । जिन पर उनकी कृपा हो जाती है वह मालामाल हो जाता है । "मैं" के अनुभव उसे इस पर विश्वास करने के लिए विवश बना देता है । "मैं" ने अपने बीते हुए कल का कोना कोना छान डाला । "मैं" ने इसकी याद करने की कोशिश की कि उसने कब सन्त भजनसिंह का नाम सुना है ? अतीत के खण्डहरों में भटकते हुए उसने सिर्फ कफ्फू पागल का ही नाम सुना है । सब लोग उसे पागल कहते थे । मगर अपनी सूरत-शक्ल या हरकतों से वह पागल नहीं लगता था । कफ्फू का भाग दौड, गालियाँ, किस्से सभी की चर्चा इतनी होती थी कि ऐसा कोई जगह ही नहीं जहाँ दो आदमियों के बीच कफ्फू का जिक्र न किया हो ।

समाज में व्याप्त सभी प्रकार के अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला सिर्फ कफ्फू ही था । इसलिए अधिकांश लोग कफ्फू से डरते थे और कफ्फू को पागल कहते थे । कफ्फू को पागल बने रहना अच्छा लगता था । क्यों कि उसे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं होती थी । पागल होने के बाद किसी भी किस्म की बनावटी

जिम्मेदारियाँ बाकी नहीं है । सन्त भजनसिंह की वास्तविकता की तलाश में "मैं" शशा सेठ के पास भी पहुँचता है । शशा सेठ के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था के दबाव एवं उससे अजनबी बनने वाले लोगों को दिखाया है । "मैं" को "फास्टक्लरस" की डिग्री लिए बेकार रहना पडा । उसके सारे दोस्त, जो पढाई में बहुत पीछे थे, नौकरियों में चिपक जाते हैं । बेरोजगारी के आर्थिक दबाव से "मैं" में एक किस्म की बेशर्मी पनपनी है । इसलिए तरह तरह के बहाने बनाया करते थे । उसकी स्थिति एक गुलाम से भी बदत्तर थी । उसमें अपने वर्तमान का सामना करने की, उससे लडने झगडने की ताकत नहीं थी । इस विवशता के कारण वह दिन में भी कमरे से बाहर निकलना छोड देता है और रात में छिपकर बाहर निकलता है ।

एक दिन पार्क में "मैं" की भेंट किसी भिखारिन से होती है । "मैं" के पास छिपाने के लिए कुछ भी नहीं था, न बेकारी, न भूख, न अनिश्चितता और न ही असुरक्षा की भावना । "मैं" तो अभावों के बीच अजनबी था । वह भिखारिन जिससे पार्क में भेंट होती है, सामाजिक दुर्व्यवहारों और स्वार्थी प्रवृत्तियों से त्रस्त है । अपने पास सब कुछ होते हुए भी, वैभव के बीच में भी वह अजनबी है । उसने अपना गला घोटने उद्यत रिश्तेदारों से बचने केलिए भिखारिन का रूप धारण कर लिया था । उसके बाद "मैं" मशीन की तरह काम करनेवाले सुरेन्द्र भाटिया से मिलते हैं । वह भी सन्त भजनसिंह का गुणगान करता है । और स्वीकार करता है कि उसकी भलाई के पीछे सन्त भजनसिंह की मेहरबानी है । सन्त भजनसिंह के अस्तित्व की तलाश से "मैं" को रोकने का प्रयास हरिप्रकाश कई बार करता है । लेकिन "मैं" अपने निर्णय पर अटल रहा । उनका विचार यह है कि अगर जीवन में कुछ परिवर्तन लाना है तो कुछ करना ही चाहिए । लेकिन भजनसिंह के जयजयकार में उसका तर्क गल जाता है । खोज के अंत में जहाँ "मैं" ने पहूँचा वहाँ संत की घटाटोप में अनेक सन्त दिखाई

दिया । यह अस्तित्ववादी मंतव्यों का प्रतीकमात्र है । तकलीफों से मुक्ति पाने और भौतिक सुख सुविधाओं को जुडाने की इच्छा "मैं" के मन में भी है । वह संत भजनसिंह के आशीष की प्रतीक्षा रखता है ।

जब "मैं" होटल लौट आया तो वहाँ हरिप्रकाश का पत्र पडा था । उसमें उसने स्वीकार किया है कि सन्त भजनसिंह नामक कोई संत नहीं है । "मैं" को उस मरीचिका का आभास होता है जिसमें फंसाकर "मैं" भटक रहा था । ऐसी अनेकों मरीचिकाओं में आधुनिक मनुष्य फंसा हुआ है । सत्य को देखने का साहस उसमें नहीं है । यहाँ "मैं" सम्पूर्ण मनुष्य जाति का प्रतिनिधि है । और उसका भटकना आधुनिक जीवन में मनुष्य की भ्रमजालिक भटकाव का सूचक है । लेखक इस घिनौने गन्दी झूठ का पर्दाफाश करते हुए "मैं" को सक्रिय रूप से कुछ करने की सलाह देते हैं । हरिप्रकाश यह चाहता है कि संत भजनसिंह जैसी झूठ के पोल खोलने के लिए "मैं" को माओ के झण्डे के नीचे लाल सलाम करना चाहिए । हरिप्रकाश इन सबसे दूर विदेश में अपनी सुख सुविधा की तलाश में हैं । वह चाहता है कोई और हमारे समाज में व्याप्त विभीषिकाओं से मुक्ति दिला दे । यह भी एक झूठी तसल्ली है, निष्क्रिय विवश इन्तज़ार है । एक दूसरे स्तर पर मरीचिका की विभीषिका को उभारता है ।

मृगान्तक

एक शोधार्थी के वृत्तान्त को उपन्यास के रूप में ढालने का प्रयास ही "मृगान्तक" है । बोधि विद्या के चक्कर में अनेक लोग भटके हुए हैं । उनमें एक है अंग्रेज़ी आदमी "मैकडाफ साहब"। उन्होंने बोधि विद्या की पाण्डुलिपि मिलने की संभावनावाली जगह का जिक्र किया है । लेकिन अंत में लाश मिलने की सूचना मात्र है । यहाँ से बोधिविद्या की तलाश शुरू होती है ।

बोक्कु विद्या एक ऐसी विद्या है जिससे लोग बाघ का रूप धारण कर दूसरों को डरा सकते हैं, अपने शत्रुओं को धम्का सकते हैं । यह एक प्रकार से अमरत्व की साधना है । बोक्कु बनकर मुखौटे पहनकर जान पहचान के लोगों के बीच रहकर भी किसी भी प्रकार के काले करतूत कर सकते हैं । यहाँ भी काले करतूतों के लिए, स्वार्थ लाभ के लिए धर्म का सहारा लिया है, अन्धविश्वास को अपनाया है ।

"मैं" प्रारंभ से लेकर अन्त तक बोक्कु विद्या के चक्कर में भटकता रहता है । कई मुश्किलों को झेलकर अन्त में वह बोक्कु विद्या की पाण्डुलिपि पाने में समर्थ होते हैं । बोक्कु विद्या जिस गाँव में सुरक्षित था, अब वहाँ गाँव कहने केलिए कुछ नहीं, सिर्फ खण्डहर मात्र है । देवी प्रकोप से भयभीत होकर सब लोग भाग गये हैं । उनकी डरावनी यात्रा के वर्णन के साथ साथ वहाँ के लोगों की दर्दनाक स्थिति का भी जिक्र किया गया है ।

जलेउ में मैं की मुलाकात सर्वदानंद से होता है । वह एक साधु है जो एक विशिष्ट साधना मे लगा हुआ है । उसकी साधना-पूर्ति के लिए किसी निर्धन कन्या को लायी गयी है । उस लड़की से कई बातों की सूचना मिलती है । अंत में पता चलता है कि सर्वदा ही बोक्कु बन जाता है । एक बार बोक्कु बन जाने के बाद मनुष्य बनने के लिए किसी लड़की का रक्तपान करना ज़रूरी है ।

साधना की सफलता के लिए खरीदकर लाई गई लड़की है रत्नी देई । पिता की मृत्यु के बाद उसके घर की हालत बिलकुल बिगड़ गयी थी । बड़ी बहन की शादी किसी वृद्ध के साथ हुई । वह अब सुखी है । रत्नीदेई असल में आना नहीं चाहती थी । क्यों कि वह आत्मानंद से प्यार करती थी । धार्मिक पूजा-पाठ केलिए ना कहने से वह डरती थी । इसी विश्वास या अन्धविश्वास ने

उसे यहाँ आने केलिए मज़बूर किया था । वह जलेड में अपने प्रिय आत्मानंद को बुलाती है । अंत में आत्मानंद बोक्कु का शिकार बन जाने पर उसी की सेवा में लगी रहती है । आत्मानंद की अनुपस्थिति में उसकी भी मृत्यु निश्चित हो जाती है । तंत्र साधना केलिए वह भी शिकार होनेवाली है जानकर उस की विफलता के लिए स्वयं को समर्पित करती है । वह अपने कन्यकात्व को विनष्ट करके अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करती है ।

नाकछेदा की माँ से मैं को कई बातों की जानकारी प्राप्त होती है । नाकछेदा बनजाने के पीछे जो कहानी है वह बडी ही दर्दनाक है । लोग अपने बच्चों को जिन्दा रखने के लिए ही नाक-कान छेदा बन जाते हैं । पोती के हठ पर नाना बोक्कु बन जाता है और वह बकरी का रक्तपान कर फिर मनुष्य बनना चाहता है । लेकिन बोक्कु बनने के बाद वह बकरी की और अपने ही पोती का भी खून चूस लेता है । मनुष्य जब पशु बन जाता है, मनुष्यत्व जब पशुता में बदल जाता है तब उसके सामने न अपना कुछ है न पराया । अपने पराये का बोध मिटाकर सभी पर हमला करना ही आखिर पशुता है । बोक्कु विद्या में आखिर वही होता है । पशुता और मनुष्यता के बीच जो सीमारेखा है उसको मिटाना ही इसका तात्पर्य है ।

प्रगति-पथ पर अग्रसर हमारे समाज में भी पशुता बढती जा रही है । यहाँ सब स्वतंत्र हैं । अपने अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी करने को सब तैयार हो जाते हैं । धर्मान्धता, गरीबी आदि के सामने तंत्र साधना का मुखौटा पहना दिया है । सुख लोलुपता में घर परिवार नष्ट हो जाते हैं । उसका कोई फिक्र नहीं । इस उपन्यास में इन सामाजिक सच्चाईयों को प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य है । जाहिर है कि विमल के उपन्यास समसामयिक यथार्थ का सही दस्तावेज़ हैं । इन उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण अनिवार्य है ।

मध्यवर्गीय मानसिकता

अंग्रेज़ी शासन के साथ भारत में मध्यवर्ग का उदय हुआ । विद्याभिलाषी, पेशेवार लोगों को उसके अन्तर्गत रखा जा सकता है । यह वर्ग आभिजात्य वर्ग एवं श्रमिकवर्ग के बीच का है । वेतन भोगी बुद्धिजीवि कर्मचारीवर्ग इसके अन्तर्गत आते हैं । यह वर्ग उच्च एवं निम्न वर्ग से कई दृष्टियों से भिन्न है । कौटुम्बिक तथा सामाजिक मर्यादा, वेश-भूषा, रहन-सहन, जीविका, शिक्षा, आय एवं सम्पत्ति के आधार पर यह वर्ग दोनों वर्गों से पृथक दिखाई पड़ता है । भारत में आधुनिक मध्यवर्ग के उद्भव और विकास में अंग्रेज़ी शासन एवं अंग्रेज़ी शिक्षा का बड़ा योगदान है । इस वर्ग का आधार मुख्य रूप से आर्थिक है । मध्यम वर्ग में एक ओर उच्चवर्ग की समकक्षता पाने की लालसा है तो दूसरी ओर आर्थिक विपन्नता के कारण निम्न वर्ग से समझौता करने की विमुखता है ।

नवीन शिक्षा, आर्थिक परिस्थितियां, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्यायें आदि का शिकार यह मध्यवर्ग ही है । धार्मिक रूढिवादिता का विरोध मध्यवर्ग ने सबसे अधिक किया है । भारतीय मध्यवर्ग को अपेक्षाकृत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इसके कई कारण है । एक ओर भारतीय मध्यवर्ग भारतीय परंपरा, संस्कृति, सभ्यता, धार्मिक विश्वास आदि पर विश्वास रखता है । दूसरी ओर अंग्रेज़ी शिक्षा एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण नवीन जीवन रीति अपनाने के लिए भी वे लालायित है । परम्परा से मुक्त न हो पाने की विवशता, पाश्चात्य रीतिरिवाज़ एवं आधुनिक सुख-सुविधाओं के प्रति मोह ने भारतीय मध्यवर्ग को तनावग्रस्त बना दिया । "परिणाम स्वरूप मध्यवर्ग की विकसित नई पीढ़ी में पुराने रीति-रिवाज़ों के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई और विद्रोही प्रवृत्ति का जन्म हुआ।"[1]

---

1. इण्डियन हेरिटेज - हुमायूं कबीर, पृ.125

मध्यवर्ग की सबसे प्रमुख समस्या आर्थिक है । उनकी आर्थिक क्षमता अपनी ज़रूरतों की पूर्ती केलिए सक्षम नहीं होती । "सम्पूर्ण विश्व के मध्यवर्ग के लोग अशांत आलोचक और व्यक्तिवादी हैं । ऐसी स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डावांडोल है । वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाये रखना आवश्यक है, जो प्राय: उनके साधनों की पहूंच के बाहर होता है । लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहा है । मध्यवर्ग सन्तुष्ट नहीं रहता और वह प्राय: उद्दण्ड आत्मप्रदर्शनकारी और मुंहफर होता है ।"[1]

मध्यवर्गीय जनता की आर्थिक पराधीनता एवं उससे उत्पन्न समस्यायें समकालीन हिन्दी उपन्यासों का मुख्य विषय बन गया है । प्रेमचन्द युग से लेकर अब तक के उपन्यासों में आर्थिक वैषम्य की विभिन्न पहलुओं को उजागर करने का प्रयास हुआ है । प्रारंभिक उपन्यासों में रोजी-रोटी की समस्या, निम्न स्तर के लोगों की ज़रूरतों की पूर्ती में आनेवाली आर्थिक कठिनाई आदि का चित्रण होता रहा । स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाई एवं प्रेमचन्दयुगीन आर्थिक परिस्थितियों में भिन्नता है । मध्यवर्ग में एक ओर रोजी-रोटी की समस्या है तो दूसरी ओर उच्च वर्ग के समान भौतिक सुख सुविधाओं को जुटाने की । उनकी महत्वाकांक्षा और आर्थिक कठिनाई ने उनके जीवन को संघर्षमय बना दिया है । इसलिए उनके भोगे हुए यथार्थ का ही चित्रण समकालीन उपन्यासों में पाया जाता है । ये उपन्यासकार दृष्टा मात्र नहीं भोक्ता भी हैं । इनका संबन्ध मध्यवर्ग से ही है । अत: इन्होंने मध्यवर्ग के बहुस्तरीय समस्याओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है ।

---

1. राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.11

गंगा प्रसाद विमल ऐसा उपन्यासकार है जिन्होंने मध्य-वर्ग की मानसिकता को बखूबी पहचान लिया है । उन्होंने उनकी आर्थिक कठिनाई एवं बेरोजगारी की समस्या को निकट से देखा पहचाना है । उनके चारों उपन्यासों में मध्यमवर्गीय आर्थिक समस्या का चित्र पाया जाता है । "अपने से अलग" एवं "कहीं कुछ और में आर्थिक वैषम्य का सीधा खुलासा है ।

आर्थिक समस्या

"अपने से अलग" उपन्यास में मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिक समस्या का ही चित्रण मिलता है । नौकरी की तलाश में "मैं" के उस शहर जाने से मां खुश थी जहां अपने घर के विघटन के कारक महिला रहती है । "मैं" का भी उस शहर में जाना एक बहाना मात्र था । क्यों कि "मैं" उस महिला से मिलना चाहता है । मां भी उससे मिलकर आज की समस्याओं का समाधान ढूंढना चाहती थी । पिता और मां के बीच के सम्बन्धों में आये उतार का कारण वह महिला है । जब कभी भविष्य के बारे में मां बातें शुरू करती है तब वह उस अन्धेरे का भी जिक्र किया करती है जिसका अनुभव उसे अतीत में हुआ था, "अतीत की बराबरी में जब-जब वे हमें भविष्य के बारे में बताती थी तब उन्हें भविष्य काले अन्धेरे के रूप में खडा नज़र आता । न समाप्त होनेवाला अन्धेरा । अन्धेरा जो एक दिन हमें ले डूबेगा और उस अंधेरे के अनुभव उन्हें मिले थे अतीत में ही । अतीत से परिवार की पीडा-गाथाएं शुरू हो जाती है ।"[1]

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.22

बुरे दिनों का एहसास माँ को पिता के व्यवहार से नहीं बल्कि उनके चेहरे से मिल जाता था । उन्हें पुराना शहर बदलना पडा । क्यों कि पिता को नया कारोबार करना पडा । कारोबार की शुरूआत छोटे शहर से हुई थी, वहाँ लोग थोडे पैसों से परिवार चला सकते थे । किसी एक स्तर पर ज़िन्दगी बिताने के बाद उससे भी निचले स्तर पर जीना बहुत ही मुश्किल एवं दु:खद है । सुख-सुविधाओं से दूर हटकर जीना और निम्न स्तर की परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढलना बहुत ही कठिन है । अत: आदमी को तनाव की स्थिति से गुज़रना पडता है । माँ का कहना है, "तुम लोग नहीं जानोगे कि एक खास किस्म की सम्पन्नता के बाद जब नीचे आना पड़ता है तब कैसा कैसा लगता है ? और खास तौर से तब जब आदमी नीचे सरकते जाने की उस सच्चाई को स्वीकार ही न करे ..... भला स्वीकार करने से भी क्या होता है ?"[1]

पिता के कारोबार की हालत ठीक नहीं थी । छोटे छोटे बच्चे थे । इन आर्थिक तंगी में उन्हें पढ़ाना भी था । पाँच-पाँच बच्चे थे । "छोटे छोटे बच्चे कुछ दिनों तक स्कूल नहीं भेजे जा सके थे क्यों कि घर की हालत ठीक नहीं थी ।"[2] पिता बहुत ही मेहनत किस्म के आदमी थे, "पिता कैसे इस घर इस परिवार के लिए उस अंधेरे रास्ते से अकेले लडे हैं ।"[3] इस सवाल का जवाब अब भी नहीं मिल रहा है कि जिस अन्धेरे रास्ते पर वे पहले खडे थे ठीक वैसी ही वहीं अब भी क्यों है ? परिवार के साथ पिताजी के सम्बन्ध टूटने के बाद भी माँ किसी न किसी प्रकार गृहस्थी चलाती थी ।

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.30
2. वही, पृ.23
3. वही, पृ.3।

इन लोगों की हालत के न सुधरने के कई कारण हैं । आर्थिक तंगी के अवसर पर माँ अपने अनुकूल कोई नौकरी करना तो चाहती थी मगर उसके संस्कार ने उसे बाहर जाकर काम करने से रोक दिया । उसका स्वाभिमान ने सभी प्रकार की कठिनाइयों से समझौता करते हुए जूझने ही दिया । इन परिस्थितियों से सक्रिय प्रतिक्रिया प्रकट करने के बजाय अपने आप को दबाने का कार्य ही हुआ, "माँ ने यह बताया था कि उन दिनों वे अपने लायक कोई काम सोजती थी । वे चाहती थी कि कुछ काम किया जाए लेकिन काम न मिलने या अपने संस्कार के कारण उन्होंने कोई काम, बाहर का काम नहीं किया था ।"[1] दूसरा कारण है तत्कालीन यथार्थ से समझौता न करके अपने अतीत वैभव की भावनाओं में रहना मध्यवर्ग की खास विशेषता है । यहाँ पिता अपने यथार्थ से समझौता करने के लिए तैयार नहीं था, "और जब उन्हें उस आखिरी परिणाम को भी भुगतना पडा तब भी पिता ने किसी तरह का समझौता नहीं किया । वे किसी भी तरह के समझौते के बहुत बडे विरोधी थे ।"[2] इस आर्थिक तंगी ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया ।

विमलजी के दूसरे उपन्यास "कहीं कुछ और" में आर्थिक विपन्नता के और एक पहलू को अनावृत किया गया हैं । पिताजी के जल्दी रिटयर होने के बाद परिवार के सब शहर छोडकर गाँव के घर में रहते हैं । पिता तो दूसरी नौकरी की तलाश में दूसरा शहर गये हुए हैं । ये लोग पिता के उस पत्र के इन्तज़ार में हैं । जिसके साथ पैसा भी मिलने की संभावना है । बडी बहन भी पति का घर छोडकर आयी हुई है । बडे भाई जो यूनिवेर्सिटी में पढ़ते थे, चिट्ठी न मिलने के कारण घर पढ़ाव गये हैं । दिन-ब-दिन घर की आर्थिक स्थिति बिगडती गई । फिर भी उस दिन की प्रतीक्षा में सब लोग

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.3।
2. वही, पृ.27

बैठे हुए है, जिस दिन पिताजी का पत्र आयेगा और आर्थिक संकट दूर हो जायेगा । यहाँ आर्थिक कठिनाई तथा उसकी गहरी पीडा का चित्रण बडी ही सहजता के साथ हुआ है । उदार हृदयवाली कुलीन परिवार की वह माँ आज कल लोगों से कम मिलने लगी है, "ऐसा वक्त आ गया है जब कोई आनेवाला भी बोझ लगता है ।"[1] इनका यह व्यवहार उसे शर्मण्डी पेश कर देता है । खाने के स्थान पर पानीदार दाल से काम चलाना पड गया है, "वह पहली शाम थी जब हम लोगों ने खाने की जगह पानीदार दाल से ही काम चलाया था, माँ रो सकती है पर वह खुद को कोस रही है "हमीं लोगों को सब कुछ देखना था । न जाने किस पाप की सजा हमें मिल रही है ।"[2]

माँ की चिन्ता यही है कि कल क्या होगा, हम क्या करेंगे 'मैं'ने इस स्थिति से बचने के लिए कोई तरीका ढूंढने का सुझाव दिया तो वह किसी को स्वीकार्य नहीं हुआ । क्यों कि उसका संस्कार उन्हें कुछ करने नहीं देता उनका कहना, "तुम्हारा मतलब क्या है ? तुम साफ साफ क्यों नहीं कहते कि हम हाथ - पसारे । लोगों के सामने अपने आपको उघाड्कर खडा कर दे । तुम चाहते हो कि तुम्हारी माँ लोगों के सामने .... ।"[3] आर्थिक कठिनाई से बचने की बगैर ये लोग इस पर अधिक ध्यान देते हैं कि उनकी हालत के बारे में कोई दूसरी न जान लें ।

जब उसे दूध बन्द करना पडा तब उन्होंने बडी ही चालाकी के साथ कह दिया कि दूध के बहुत सारे डिब्बे घर में पडे हैं । वे बरसात में खराब हो जायेंगे । घर की हालत इतनी बिगड गयी थी

---

1. कहीं कुछ और - गंगा प्रसाद विमल, पृ.17
2. वही, पृ.19
3. वही, पृ.20

कि आवश्यकताओं की लम्बी लिस्ट हाथ में रखकर आखिरी पैसे से सब से अनिवार्य ही खरीदता है । "माँ" ने "मैं" के हाथ में पाँच रूपया रखते हुए कहा "ये ही मेरे पास आखिरी पैसे हैं । शायद आज तुम्हें अपने पापा के भेजे पैसे मिलें वरना ये ही आखिरी पैसे हैं" [1] तुम पाँच रूपये से सिर्फ चने ले आना । बाकी चीज़े घर में जितनी है उनसे ही गुज़ारा चलाना पड़ेगा ।" [2] घर का भविष्य अन्धेरे में इतना डूब गया कि इससे बच निकलता अब कठिन लग रहा हैं । इतने पर भी माँ यह झूठी आशा लिए बैठी है कि पिता का पैसेवाला पत्र ज़रूर आयेगा । माँ अब भी बहुत सावधान है कि घर के बाहर हो या अन्दर सच्ची स्थिति की महक तक किसी को न लगे । इसलिए कहती है, "कहीं से उधार मन लेना । और देखो, इस बारे में बाहर के आदमी को तो बताओ ही नहीं । घर में काछी बूलू को तो बिलकुल नहीं ।" [3] माँ को एक ओर बच्चों को खिलाना है तो दूसरी ओर विवाहिता लड़की और उसके बच्चे पर ध्यान रखना भी । इन सब के बावजूद उसे कहीं से पैसा उधार ले लेने का सख्त विरोध है । क्यों कि पैसा लेने से पूरे परिवार का बदनाम हो जाएगा, "नहीं कभी नहीं । हम खत्म हो जायेंगे पर ऐसा नहीं करेंगे । तुम समझते क्यों नहीं कि इससे हमारे पूरे परिवार की बदनामी होगी । हम लोग कहीं के नहीं रहेंगे ।" [4]

खाना खाने के बदले कुछ न कुछ खाकर काम चलता था । कभी पूरनमासी का व्रत लेता था तो कभी कुछ और । बड़ा लड़का

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल, पृ.103
2. वही, पृ.103
3. वही, पृ.104
4. वही, पृ.105

इससे बचने के लिए कुछ न कुछ इन्तजाम करना आवश्यक समझता है, "कब तक चलेगा ऐसा, "कल तक कुछ न कुछ इन्तज़ाम अवश्य होना चाहिए ।"[1] पर उस स्थिति से छुटकारा पाने केलिए कोई कोशिश वह कर भी नहीं पाता । माँ कहती है उसे अब हिम्मत नहीं है । क्यों कि वह नहीं चाहती कि लोग उसके परिवार पर हाथ उठा सकें । उसकी राय है, "मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहती जो मेरा मन, मेरी आत्मा नहीं मानती । किसी के आगे, और खास तौर से नीचे लोगों के आगे हाथ पसारने से, और खुद को नंगा करने से अच्छा है कि आदमी मर जाये ।"[2] बड़े लड़के के अनुसार भूख से मरने और न आनेवाले पत्र का इन्तज़ार करने से अच्छा है सोने का कोई गहना बेच देना । इस पर माँ का कहना है "सोने के किसी चीज़ को बेचने का मतलब जानते हो, क्या होता है । अपने आप को यतीम ज़ाहिर करना होता है ।"[3] वे लोग न तो अपनी आर्थिक कठिनाई से जूझ सकते हैं और ना ही उसे स्वीकार कर सकते हैं । प्रतिक्रिया करने की इच्छा होती है मगर कोई सक्रिय कदम उठा नहीं पाते । सिर्फ इन्तज़ार कर सकते हैं । अन्धकार में डूबने की "जब हम सब लेटे हुए थे । तब धीरे से शाम अन्धेरे के कदम कदम कमरे में खिसक रही थी । दरवाज़े के पास से आकारहीन अँधेरा झप झप आ रहा था और कब वह आकर हम सब को पूरी तरह डुबो देगा, इसी का इन्तज़ार है ।"[4]

आर्थिक समस्या का दूसरा ही रूप हमें विमलजी के "मृगान्तक" में पाया जाता है । पिताजी के गुज़र जाने के बाद

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल, पृ.129
2. वही, पृ.144
3. वही, पृ.145
4. वही, पृ.241

आर्थिक कठिनाई के कारण बेची जानेवाली लड़की का जिक्र किया है । उनका कहना है "हम लोग गरीब लोग है । मेरे पिता अचानक एक दिन भगवान को प्यारे हो गए । बड़ी मुश्किल के दिन काटे हैं हम लोगों ने । बड़ी बहन को संकलाना के माफीदार ले गए । वह बहन खूब सुखी है । मैं उसके घर भी गई थी । बस दुर्भाग्य तो मेरे हिस्से में लिखा था ।"[1] इस लड़की को पंडित जी एकाध महीने के लिए मांग लाये थे ।

"मरीचिका" में धनमोह के अलग ही चित्र खींचा है । "मैं" के बचपन के दोस्त हरिप्रकाश एकदम सम्पन्न बन गया । पहले वह इतना - गरीब था कि पहनने के लिए चिथड़े तक नहीं थे । लेकिन आजकल उसके पोशाक देखकर सम्पन्न मालूम पड़ता है । "मैं" उससे पूछा "तुम इतने सम्पन्न पहले तो नहीं थे । कहीं से तुम्हें अचानक धन मिल गया क्या ? उसका उत्तर है "सम्पन्न ..... अभी सम्पन्न कहाँ । बस गुरुदेव की कृपा चाहिए सब कुछ ठीक हो जाएगा ।" ..... "हाँ सन्त भजन सिंह की कृपा से हमारे शहर के लाखों लोगों का बेड़ा पार हुआ है ।"[2] "मैं" मार्क्सवादी विचारधारा से ओत-प्रोत थे । मगर हरिप्रकाश की सम्पन्नता को देखकर "मैं" को भी संत भजनसिंह से मिलने की इच्छा हुई । क्योंकि अध्ययन के उपरान्त जब "मैं" नौकरी ढूँढता फिरता था । तब आर्थिक विपन्नता और उससे उत्पन्न अपमान को उसने भोगा है । इसलिए सम्पन्न बनने की इच्छा उससे छिपाये नहीं रख सका ।

यहाँ शिक्षित युवकों की आर्थिक कठिनाई का ही स्वर बुलन्द है । यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के बाद नौकरी की तलाश

---

1. मृगान्तक - गंगा प्रसाद विमल, पृ.87
2. मरीचिका- गंगा प्रसाद विमल, पृ.20

करनेवालों में "मैं" अकेले ही था । धीरे धीरे सारे दोस्त नौकरियों से छिपक गये थे । बेशर्म लोगों से अपनी बेकारी की रोना रोने से कोई फायदा नहीं । "सहानुभूति एक ऐसी चीज़ थी जो सिर्फ तब तक आदमी दे सकता है जब तक उसकी गाँठ से कुछ न जा रहा हो । जब आदमी को सहानुभूति दान से ज्यादा जान पड़ती है, वह उसे एक विचित्र नफरत में बदल देता है । मेरे साथ यही हुआ । मेरे साथ लोगों के हिकारत भरी आँखें है । नफरत है .... ।"[1] "मैं" पहले तो नौकरी करनेवाले लोगों से चिढ़ते थे । बेकारी के शुरू शुरू में मुझे उन लोगों से इर्ष्या होती थी जिनके पास नौकरियाँ थी..... लेकिन मेरा वहम धीरे धीरे खत्म हो गया । मुझे लगा वे सिर्फ इसलिए अलग है मुझसे कि उनके पास खाने की रोटी है । ..... डरना ..... । अतृप्त और अनिश्चित । मैं को काफी अपमान सहना पडा, यातनायें सहनी पडी । कितनी ही रातें मैं ने भूख की बिताई होगी । भूख बहुत बडी कमज़ोरी होती है । मैं उस कमज़ोरी की गिरफ्त में इस तरह फँसा रहा कि एक दोपहर में अपनी नियमित नींद से वह उठ पडा । भूख की बेचैनी थी । लेट लेटकर रात होने का इन्तज़ार करूँ यह भी नहीं हो सका मुझ से ।"[2]

संक्षेप में कह सकते हैं कि विमलजी के इन चारों उपन्यासों में भारतीय मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याओं को ही उभारा है । आर्थिक कठिनाई के कारण भिन्न है । किसी एक व्यक्ति के वेतन पर निर्भर परिवारों में समस्या तब खडी होती है जब वह स्त्रोत सूख जाता है । मध्यवर्ग की झूठी मान्यता उसे सिर्फ कठिनाईयों को झेलने के लिए विवश बनाती है । इसके प्रति कोई सक्रिय कदम उठाना वे नही चाहते । क्यों कि बाहर कोई नौकरी करना, कुछ न कुछ बेचना उनके लिए अपने आप को मिटाने के समान है । आर्थिक कठिनाईयों में पडे निम्न मध्यवर्ग का शोषण ही मृगान्तक में चित्रित है ।

---

1. मरीचिका - गंगाप्र साद विमल, पृ.65
2. वही, पृ.68

शिक्षित लोगों की बेकारी युवा पीढी की आर्थिक समस्या का कारण है । समकालीन युवा मानस का यथातथ्य चित्रण इसमें हुआ है । मोयाकि दिमलजी के चारों उपन्यास आर्थिक विषमताग्रस्त मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करनेवाले हैं ।

पारिवारिक विघटन

प्रत्येक समाज समय के बदलाव के अनुसार पुराने जड संस्कारों को छोडकर नवीन को स्वीकारने के लिए तैयार हो उठता है, "प्रत्येक युग में मूल्यों का एक दिग्भ्रम होता है । कला के कुछ स्वीकृत अभिसमय एवं कतिपय नैतिक धार्मिक या सामाजिक पूर्वग्रह होते हैं, जो उस युग की अभिरूचि को संघटित करते हैं ।"[1] समाज और व्यक्ति के परस्पर सम्बन्ध का आधार एक प्रकार का संतुलन है । वैसे ही पारिवारिक सम्बन्धों का आधार भी यह संतुलन है । जब यह संतुलन बिगड जाता है तब समाज में मूल्यों का विघटन अनिवार्य बनता है । हर प्रकार का परिवर्तन मूल्य विघटन का मूल कारण है । इसके अनुसार विवाह, परिवार, धर्म जैसी संस्थाओं तथा रूढियों के बीच में संघर्ष होता है । यह संघर्ष उनके दृष्टिकोण में आए परिवर्तन का परिणाम है । वे यह तय नहीं कर पाते कि किसको अधिक महत्व देना है रूढि को या संस्था को ? या अपनी नयी मानसिकता को ? यहाँ से मूल्य विघटन शुरू हो जाती है । इन परिस्थितियों ने भारतीय सामाजिक जीवन को झकझोर डाला ।

स्वतंत्रता के बाद मानवीय सम्बन्धों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गयी । परम्परागत आदर्शों और मान्यताओं की

---

1. रचना और आलोचना - देवीशंकर अवस्थी, पृ.35

प्रासंगिकता नष्ट होने लगी । इसने सम्बन्ध हीनता या अनैतिक सम्बन्धों को बढ़ावा दिया । स्वाधीन भारत की नवीन समस्याओं को चित्रित करना समकालीन उपन्यास का कार्य रहा है, "स्वतंत्रता के बाद राजनीति जनसाधारण के जीवन का अंग बन गयी । नगरीकरण और औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरों और महानगरों में पूंजीपतियों द्वारा किये जानेवाला शोषण उपन्यासकारों से अनदेखा नहीं रहा । परिवार, मुहल्ले और गाँवों के स्तर पर उभरती हुई सम्बन्ध हीनता और हृदय हीनता भी उपन्यास के कथ्य का अंग बनी है ।"[1] विमलजी ने भी अपने उपन्यासों में पारिवारिक टूटन को मुखरित करने का प्रयास किया । उनका पहला उपन्यास "अपने से अलग" असल में पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन का ही उपन्यास है । माँ-बाप के सम्बन्धों में उत्पन्न दरार किन किन समस्याओं को उत्पन्न करती है इसका स्पष्ट चित्र इस उपन्यास में प्राप्त है ।

पिताजी व्यवसायी थे । इसी सिलसिले में वे दूसरे शहर में रहते थे । अब परिवार के साथ पिता का सम्बन्ध नाम मात्र का ही था । उसके आने पर पारिवारिक जीवन में बदलाव ज़रूर आ जाता था । 'मैं' का कहना है, "हम सिर्फ यह जानते थे कि हमारे एक पिता है वे कभी कभी घर आते हैं । परन्तु जब जब वे घर आते थे घर का रूप रंग बदल जाता था ।"[2] पिता के आने पर खाली कमरे में आवाज़ ज़रूर आ जाती थी । पारिवारिक क्रिया कलापों में जीवन्तता आ जाती थी । मगर सभी के व्यवहार बनावटी एवं बाहरी लगते थे । "उन दिनों माँ कुछ ज्यादा गंभीर और ज्यादा आत्मकेन्द्रित हो गयी थी । ..... मुझे यह लगा कि वे लोग मेरे पिता नहीं है । वे कोई अपरिचित है ।"[3] पिता तो बहुत

---

1. समकालीन हिन्दी उपन्यास : कथ्य विश्लेषण - डा.प्रेमकुमार
2. अपने से अलग, पृ.16
3. वही, पृ.17

बातें करते थे । उनकी बातों का न तो माँ से सम्बन्ध है न परिवार से । "मैं" उनकी बातों से जल्दी ही उकता जाता था । उसे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं था, "उस ऊबाहट से बचने के लिए मैं मन ही मन सौ तक गिरती रहता या फिर पिछली तारीख याद करके उसी तारीख की तमाम घटनाएं याद करता । "एक दिन "मैं" अपने छोटे भाई से मिलने उसके होस्टल गया । उस दिन रात को उसने नशे में आकर कहा "सुनो पापा ने किसी दूसरे शहर में एक परिवार बसा लिया है । वे वहां उसी तरह रहते हैं जैसे हमारे साथ रहते रहे हैं ।"[2]

इस प्रकार पिता के दूसरा परिवार बसाने के कारण पारिवारिक सम्बन्धों में दरार पड गयी । इसी की वजह से सब लोग परेशान है । परिवार का संतुलन नष्ट हो गया है । छोटे भाई और छोटी बहन जो होस्टल में है नशे का शिकार हो गये हैं । माँ सब कुछ जानते हुए भी चुप्पी साधती है । पर जब उन्हें बेटे के पत्र से सारी बातों का पता चलता है तब वह पूरी तरह टूट जाती है । उसके मन में एक झूठी आशा थी कि उस महिला से बातें करने से सब ठीक हो जायेगा जिसके कारण ये सब हुए है । बाहरी तौर पर वे अलग अलग दीखने पर भी उनके बीच सम्बन्ध था । "माँ का वह सम्बन्ध पूरी तरह नहीं टूटा था । चाहे वह संरक्षक का सम्बन्ध हो या वैसा ही कोई । बाहर से अलग अलग दिखाई देता था । किन्तु वह सिर्फ भ्रम होता है । माँ पहली बार ही उसकी एकसूत्रता के आतंक से काँपी हो .... ।"[3] इस डर ने उन्हें काफी बदल दिया । वह यह मान चुकी थी कि खास कारण से उनके जीवन में परिवर्तन

---

1. 'अपने से अलग, पृ.19
2. वही, पृ.58
3. वही, पृ.79

आया है । अभी तक वह एक रहस्य मात्र था । जब वह रहस्य खुल गया तो माँ की झूठी तसल्ली भी नष्ट हो गयी । "माँ सब ऐसी गंभीरता में आ गई है जहाँ से कोई भी वापस नहीं आ सकता था । उनके चेहरे पर एक अजीब सी थकान, आँखों में विवशता और मुरझायापन था ।"[1] माँ बीमार पड गयी थी । डाक्टर के मतानुसार यह कम्पन शायद पक्षाघात का आरंभिक कम्पन होगा । उसने कहा "आप को अपने पिता को बुला लेना चाहिए । कभी कभी कुछ हो सकता है ।" कुछ ही दिन बाद माँ चल बसी । उसी समय किसी ने आकर कहा "मैं अपने पिता, अपने सब भाई बहनों को खबर कर दूँ । मैं नहीं जानता मेरे पिता कहाँ है । हम भाई बहनों से कोई नहीं जानता ।"[2] "मैं" को किसी को खबर करने की आवश्यकता महज़ूस नहीं हुई । जब वह ज़िन्दा थी तब तसल्ली देनेवाला कोई नहीं था । फिर अब एक गलत सामाजिक कर्तव्य निभाने के लिए "मैं" था । और सब लोगों की ज़रूरत नहीं है । माँ के बाद छोटी बहन पिता की प्रतीक्षा में थी । क्यों कि वह अपनी सुरक्षा के लिए पिताजी की उपस्थिति चाहती थी । प्रस्तुत उपन्यास में पिता के अनैतिक व्यवहार से उत्पन्न पारिवारिक समस्याओं को चित्रित किया गया है । पारिवाहिक संतुलन के टूट जाने से सम्पूर्ण परिवार में असुरक्षा की भावना छा जाती है । बच्चों में भी आत्मीयता का भाव नहीं रह जाता । वे अनैतिक कार्यों में लग जाते हैं ।

"कहीं कुछ और" उपन्यास में पारिवारिक विघटन का कुछ और ही रूप प्रस्तुत है । सभी लोग पिता के उस पत्र के इन्तज़ार में है जिसके साथ पैसा भी आनेवाला है । आर्थिक कठिनाई के कारण बडा लड़का पढाई छोड़कर लौट आता है । घर की हालत

---

1. अपने से अलग, पृ.11
2. वही, पृ.188

दिन-ब-दिन बिगड़ती रही । बड़ी लड़की जो विवाहिता है घर आई हुई है । खाने की जगह पानीदार दाल ने ले लिया । आड़ू के फल से भी भूख मिटाने लगी । इतने होने पर भी परिवार के लोग उस पत्र के इन्तज़ार में रहते हैं । उस दिन का भी जिस दिन "आकार हीन अँधेरा झप-झप आकर सब को पूरी तरह डुबो देगा।"[1] परिवार की वर्तमान स्थिति का कारण पिता है । उसे किसी दूसरी महिला के साथ संबन्ध हैं । इसकी खबर उन लोगों को पापा की पुरानी चिट्ठियों से मिली । रिटयर होने के बाद ये लोग शहर छोड़कर गाँव पहुंचे ।

एक दिन पिता अपने पेन्शन की कागजात ठीक करने अपने लिए कोई दूसरा काम खोजने के लिए घर से दूर निकल पड़े । पापा के खिलाफ रिश्वत से सम्बन्धित केस था । माँ के गहने पिता के वास्ते बेच चुके थे । पापा को समय से पहले रिटयर कर दिया गया था । माँ कभी बातें खुलकर नहीं करती थी, बीच बीच में काट देती थी । माँ के मन में पापा के प्रति चिन्ता बनी रही कि उनका सम्बन्ध टूट न जायें । इस के लिए ऐसी खबर फैला दी कि पापा बीमार है, "मैं एक बात से डरता था और वह यह कि कहीं माँ के मन में यह बात न बैठ जाये कि सचमुच पापा हम लोगों से अलग हो गये हैं । इसलिए जब मैं ने माँ को यह सब बताया भी था तो मैं ने उन्हें एक घबराहट यह भी दे डाली थी कि कहीं ऐसा न हो पापा बीमार है ।"[2] पिता के बारे में सब कुछ जानते हुए भी माँ तथा अन्य लोगों के मन में यह झूठी आस्था बनी रही कि एक दिन सब ठीक हो जाएंगी । पिता के द्वारा भेजे जानेवाले पैसे सब कुछ ठीक कर देंगे । पारिवारिक विघटन का दूसरा रूप हमें दीदी के प्रसंग से प्राप्त होता है ।

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल,
2. वही

दीदी इसलिए घर वापस आयी कि उसके पति को किसी दूसरी महिला के साथ सम्बन्ध है । इसलिए वह वापस जाना नहीं चाहती ।

पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन के चित्र उनके तीसरे उपन्यास "मृगान्तक" में भी पाये जाते हैं । रिखली देई को बोक्सु साधना की सफलता के लिए लाया था । पिता के मरने के बाद रिखली देई के परिवार को आर्थिक कठिनाइयों से बचने के लिए लड़की को बेचना पडा । उसकी शादी तो आत्मानंद के साथ होनेवाली थी ।" लेकिन ..... सम्बन्ध टूटा नहीं बापूजी । पिता की मौत और गरीबी ने सब कुछ खत्म कर दिया । आपको मालूम होगा । इस हमारे इलाके में लड़कियाँ बेची जाती है । न जाने किस मज़बूरी से माँ ने ..... पंडितजी मुझे खरीदकर लाए है । फिर यह देवी का मामला है । मैं भी तो डरती हूँ । अब तो मैं एक चीज़ भर हूँ । जैसी बलि की चीज़ें होती है ।" पंडितजी न खरीदी होती तो रिखली देई आत्मानंद के साथ भाग जाती । उनका कहना है कि तंत्र साधना के बाद सर्वदानंद उससे विवाह कर लेंगे । इस इलाके में एक से अधिक शादियों को कोई बुरा नहीं मानता । सर्वदानंद की शादी पहले हो चुकी थी । वह देहरादून में रहती है । एक दिन उसने आकर सर्वदानंद को खूब खरी-खोटी सुनाई । साधना कभी पूर्ण न होने का शाप भी दे गयी । आर्थिक कठिनाई के कारण हो या अन्धविश्वास के, यहाँ भी अनैतिक व्यवहार, सम्बन्ध हीनता और मूल्य विघटन होते ही रहते हैं ।

'मरीचिका' में दूसरे ढंग से संबन्धहीनता को व्यक्त करने का प्रयास हुआ है । नवीन सम्बन्धों की तलाश आधुनिकता की देन है ।

---

1. मृगान्तक, पृ.92

लेकिन भारतीय संस्कृति खुले आम इन सम्बन्धों को मान्यता नहीं दे पाती । इसलिए कफ्फू पागल से सभी प्रकार की अनैतिकता एवं भ्रष्टाचारिता पर टिप्पणी दिलाई है । एक बार कैद में रहकर सरकारी हुक्म बजानेवाले पुलीस अफसरों की बीबियों के बारे में बताया। उनकी झूठी पवित्रता का पर्दाफाश कराया । "कफ्फू ने वहाँ खडे सब लोगों के नाम बता दिया । "सुनो सुनो" वह बोला, "तुम में से दस लोगों की बीबियाँ वेश्याएँ है, तुम यहाँ सरकारी हुक्म बजा रहे हो और वहाँ तुम्हारी बीबियाँ अपने यारों के साथ खुले आम नंगी सोई हुई है । हिम्मत हो तो अपने-अपने घर जाकर देखो ।"[1]

मैं भूख और निराशा से पीड़ित होकर पार्क में बैठे हुए थे । किसी ने "मैं" के पास आकर पूछताछ की । "मैं" बुखार से परेशान था । उसने उसको कम्पल दिया, और अपना घर ले गयी । वह एक धनी मानी विधवा औरत थी । वह अपना शहर छोड़कर इस शहर में आई हुई है । क्यों कि उसे लोग भूल जाए । करीबी रिश्तेदारों में बहुतों ने उसे मारने का प्रयास किया । क्यों कि उसे उसके पैसे की लालच थी । इसलिए उसने इस शहर में घर खरीद लिया था । अब उसे रोशनी से डर था । इसलिए रात को ही घर से बाहर निकलती थी, "अपनी सम्पन्नता को छिपाने की कला में निपुण वह महिला सालों अकेले रहने के कारण पागल न हो जाए । इसलिए भी रात को बाहर निकलती थी, दूसरी दुनिया के लोगों से मिलती थी ।"[2]

संक्षेप में विमलजी के उपन्यास पारिवारिक विघटन की त्रासदी का सही दस्तावेज प्रस्तुत करनेवाले हैं । इस में आर्थिक विपन्नता-ग्रस्त मध्यवर्गीय मानसिकता को उभारने का प्रयास हुआ है तो साथ ही

---

1. मरीचिका - गंगाप्रसाद विमल, पृ.49
2. वही, पृ.78

उनके अहं का पोल खोलने का कार्य भी किया गया है । स्पष्ट है स्वाधीनता परवर्ती सामाजिक परिस्थिति में जीने के लिए संघर्षरत मध्यवर्ग की जीवनगाथा ही विमलजी के उपन्यासों का मर्म रहा है ।

जिजीविषा की अनुगूंज

आधुनिक सन्दर्भ में मध्यवर्ग सामाजिक अस्थिरताओं, राजनीतिक भ्रष्टचारिताओं एवं आर्थिक विषमताओं के बीच उलझा हुआ है । इस लिए व्यक्ति का संघर्ष बढता जा रहा है । ऐसी परिस्थिति में एक ओर मध्यवर्ग रूढियों एवं संस्कारों में जकडा हुआ है तो दूसरी ओर प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा एवं सामाजिक क्रॉतियों में आस्थावान है । इन में जीने की लालसा है पर अपनी ही बनी-बनायी रूढियों पर । कभी कभी इन्हें अपने को ही धोखा देकर झूठी सम्पन्नता एवं झूठी मान्यताओं का प्रदर्शन करना पडता है । आर्थिक विपन्नताओं में सम्पन्नता के अनैतिक व्यवहारों में नैतिकता का ढोंग उन्हें करना पडता है । ये मान्यतायें सिर्फ मध्यवर्ग की हैं और उन्हें वे अपने सिर पर लादे हुए हैं । इन झूठी मान्यताओं के कारण चाहे इनके पैर लडखडाए लेकिन अपने सिर से बोझ उतार फेंकने का उनमें साहस नहीं है । वे कभी निराश है कभी हताश । फिर भी वे अपने में कभी न मिटनेवाली प्रतीक्षा के दीप जलाए हुए हैं । वे उस दिन की प्रतीक्षा में है जिस दिन उनकी सारी समस्याएं मिट जाएगी, एक सुनहला भविष्य ज़रूर उभर आएगा और उनकी सम्पूर्ण विवशतायें दूर हो जाएंगी ।

मध्यवर्ग के इस आस्थावादी दृष्टकोण को व्यक्त करने का प्रयास समकालीन उपन्यासों में हुआ है । क्यों कि निम्न मध्यवर्ग की विडम्बनाओं का, उसके प्रदर्शन का चित्रण करना उपन्यासकार का

दायित्व बनता है, "निम्न मध्यवर्ग कदाचित सबसे अधिक विडम्बनाओं का शिकार है । अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए उसे प्रदर्शन करने की अनिवार्य बाध्यता स्वीकारनी पड़ती है और अपने आन्तरिक खोखलेपन को अत्यन्त कृत्रिम ढंग से अस्वीकारना होता है । दूसरे शब्दों में निम्न मध्यवर्गीय लोगों की ज़िन्दगियां दिखावे की ज़िन्दगियाँ है, जिनका न कोई अर्थ है न कोई अस्तित्व । मूल्य-मर्यादा की शून्यता ने पहले उनके जीवन को पशुवत बना दिया था, उसी ने उन्हें और भी अस्तित्वहीन कर दिया, लेकिन उनकी मूल्य-मर्यादा की प्यास पूर्ववत बनी रही ।"[1]

मध्यवर्ग कुल-मर्यादा को निभाने के लिए अनेक प्रदर्शन करता है । विडम्बनाओं से जूझने के बावजूद उनमें सुनहने कल की प्रतीक्षा है । इस आस्थावादिता ने ही झूठी लालसा को पालने के लिए उन्हें विवश कर दिया था । वह उन्हें ज़िन्दगी में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है । ऐसी परिस्थिति का ही चित्रण विमलजी के उपन्यासों में पाया जाता है । पिता के अनैतिक संबन्ध उनके पारिवारिक सम्बन्धों में विघटन पैदा करता है । माता के द्वारा पिता के अनैतिक सम्बन्धों को छिपाकर रखने का भरपूर प्रयास होता है । अन्त तक बच्चों से यह बात वह छिपाकर रखती है । पर अन्दर ही अन्दर स्वयं वह संघर्ष का अनुभव तो करती है । आनेवाले दिनों में सब सुधर जायेंगे यही विश्वास उन्हें ज़िन्दा रहने की प्रेरणा देता है । पिता के चले जाने पर परिवार में आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है । "हम लोगों को, भाई बहनों को शायद पता भी नहीं था कि कोई कठिन समय उस वक्त गुज़रा है, जब हम लोग बहुत छोटे थे ।"[2]

---

1. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ - लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, पृ. 110
2. अपने से अलग - गंगा प्रसाद विमल, पृ. 30

पिता के कारोबार की हालत ने आर्थिक पराधीनता को बढावा दिया तो माँ चाहती थी कि वह खुद कोई काम करे, "वे चाहती थी कि कुछ काम किया जाए - लेकिन काम न मिलने या अपने संस्कार के कारण उन्होंने कोई काम नहीं किया था ।"[1] उनकी इच्छा थी कि अपने घर की हालत का पता दूसरों को न लगे । वह अपने संस्कार से, झूठी मान्यता से मुक्त नहीं हो पाती । इसलिए बच्चों की पढाई की चिन्ता रहते हुए भी बाहर जाकर काम न कर पाती है । छोटे भाई के पत्र, जिसमें टूटी फूटी असंगत बातें थी, मिलने पर माँ क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गयी । उसके बाद "मैं" से कहा कि "तुम नहीं जान सकते ..... तुम नहीं जान सकते .... ।" उन्होंने एक ही अधूरा वाक्य दो बार कहा । वह दो बार का गहरा अधूरापन था ।"[2] अपने पारिवारिक संस्कार की रक्षा के लिए पिता का रहस्य बाहर के लोगों से ही नहीं अपने बच्चों से भी वह छिपाकर रखना चाहती है । उसके न चाहने पर भी बच्चे को इसका पता जब चलता है तो वह बहुत परेशान हो उठती है । पिता के प्रति बच्चों के मन में गलत धारणा न बने इसलिए वह कहती है, "छोटे की बातों ने मुझे हैरान में डाल दिया है । वह अपने दिमाग में कैसी बातें बना लेता है ? है - है न ।"[3]

पिता और माँ के बीच का तनाव दिन ब दिन बढ़ता जा रहा था । पिता के घर आने पर सभी अनौपचारिकता खत्म हो जाती थी । बाहर से सब कुछ ठीक लगने के बावजूद अन्दर ही अन्दर "कुछ" टूट रहा था । "इस टूटन को छिपाने के लिए माँ खुद को व्यस्त रखती थी । पर साथ ही माँ हमें भी पिता के नाम से उलझाये रखती थी । वह अनेक अवसरों पर हमें पिता के बारे में बातें बताती

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.32
2. वही, पृ.38
3. वही, पृ.39

कभी कभी तो मुझे ऐसा लगता जैसे माँ जान-बूझकर हमें पिता के बारे में बता रही हो ताकि हम उन्हें भूल न जाएं ।"[1] माँ यही चाहती है कि बच्चों के मन में पिता के प्रति आदर होना चाहिए । उनके मन से अनादर की भावना निकल जायें । इसलिए माँ अतीत की बातों से पिता की भूमिका को, उनकी यादों को ताजा रखने का प्रयास करती है । पिता के अलग रहने पर भी अपनी ज़िन्दगी में उसको भी शामिल कराकर उनके प्रति अपनत्व का भाव बनाये रखने की कोशिश करती है, "धीरे धीरे बुरे दिन भी आ गये । उन बुरे दिनों की खबर माँ को पिता के व्यवहार से नहीं, उनके चेहरे को देखकर मिल जाती थी, लेकिन वह कितनी बडी बात थी कि पिता ने कभी उसके बारे में कुछ नहीं कहा ।"[2]

माँ का कहना है खास किस्म की सम्पन्नता के बाद निचले स्तर पर जीना बडी मुश्किल है । इससे समझौता करना बडा कठिन कार्य है । अब इस घर को डुबानेवाली समस्या भी यही है । "माँ बताती है, उन दिनों वे खुद भी सोचा करती थी कि एक खास सामाजिक अर्थ में बडा होना कितना अन्यायपूर्ण है । साधारण ज़िन्दगी में असाधारण होने का सुख कितना महँगा पडता है ।"[3] सुबह फर्श पर मरी हुई चिडिया को देखा । उसकी पेट फटी हुई थी । यह देखकर माँ बहुत परेशान हो गयी क्यों कि माँ इस घटना को अपने परिवार की दुर्घटना से जोडकर देखना चाहती है । माँ के मन में भविष्य के बारे में जो डरावनी चिन्ता थी उसी से चिडिया की मृत्यु जुड जाती है, "मैं पूरी तरह जानती हूँ जब कभी ऐसा होता है तो

---

1. अपने से अलग - गंगा प्रसाद विमल, पृ.21
2. वही, पृ.25
3. वही, पृ.24

किसी भयानक घटना की शुरूआत की सूचना होती है । वह क्या है जो होनेवाला है ..... ?"[1] वह भविष्य के बारे में बहुत चिन्तित है । वह इतनी खबरा गयी कि उसकी तबीयत भी खराब हो गयी है । बच्चों की "शवयात्रा" खेल और चिड़ियों का मरना आदि से उन्हें अपनी मृत्यु की बात ही सूझी । "वे मरना नहीं चाहती थी । "वे उस महिला से मिलने की उत्कट इच्छा अपने मन में पाले हुए हैं ।"[2] क्योंकि उनका विश्वास था कि उस महिला से मिलने के बाद सब ठीक हो जायेगा । आर्थिक कठिनाई से बचने के लिए घर की ऊपरी हिस्सा किराये पर देने का सुझाव रखा गया तो माँ को यह स्वीकार्य नहीं हुआ । उनका कहना कि यह हम लोगों के सामाजिक स्तर के लिए ठीक नहीं । "अपना मकान किराएं पर उठाया जाए ।"[3] वह आशा रखती है कि "कुछ नहीं होगा, यह मकान भी बनेगा और मकान के चारों तरफ की खाली जगह में अब फूलों की क्यारियों की जगह फलदार पेड और सब्जियां उगेगी ।"[4]

"मैं" और बहन जान बूझकर पिता के सम्बन्ध में कुछ भी न कहने की कोशिश करते रहे । क्यों कि माँ ज्यादा परेशान न हो जाये । लेकिन उनका अस्तित्व हमारे लिए कभी नहीं मिटता । "माँ का वह संबन्ध भी पूरी तरह नहीं टूटा था । चाहे वह संरक्षक का संबन्ध हो या वैसा ही कोई । बाहर से वह अलग अलग दिखाई देता था । किन्तु वह सिर्फ भ्रम होता है ।"[5] जब माँ की मृत्यु हुई

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.70
2. वही, पृ.71
3. वही, पृ.76
4. वही, पृ.76
5. वही, पृ.76

तब सब लोगों ने पिता को बुला लेने को कहा । लेकिन "मैं नहीं जानता मेरे पिता कहाँ हैं । हम भाई बहनों से कोई नहीं जानता ।"[1] फिर भी सब लोग पिता की प्रतीक्षा में थी । सब से अधिक छोटी बहन, "माँ के बाद शायद वह अपनी सुरक्षा के लिए पिता की उपस्थिति चाहती है ।"[2] माँ के समान ही "मैं" की बहन प्रतीक्षा में है । "वह प्रतीक्षा भाव, जो मुझमें कभी अपनी पूरी तीव्रता के साथ जीवित रहता था, अब मन्द पड गया है ।"[3] बहन प्रतीक्षा करते करते भ्रम में पड गयी । माँ के कमरे में जो कुर्सी पडी है जिसे वह अपने कमरे से बाहर करने नहीं देती, क्यों कि उसी पर पिता बैठा करते थे । लेकिन वह उसका बहम था, मिथ्या मात्र था ।

जिस प्रकार माँ वर्षों से झूठी प्रतीक्षा को लेकर जीवित रही उसी प्रकार बहन प्रतीक्षा के माध्यम से अपनी सुरक्षा का अहसास दिलाना चाहती है । माँ के उन दिनों के हँसते एवं स्वस्थ चेहरे पर आज एक अजीब सी थकान, विवशता और मुरझायापन थी । उसमें न उत्साह था, न किसी तरह की कोई तीव्रता । अतीत की जिस अन्धकार से उसे डर था आखिर उसी ने सम्पूर्ण परिवार को तोड डाला, "अतीत को अन्धकार में फेंककर जैसे यह भी एक लम्बी गुफ़ा है । यह लम्बी गुफ़ा ऐसी है जिसमें अतीत के अन्धेरे की भटकन गुम हो गई है । अतीत के अन्धकार की गुफ़ा से निकलते हुए लगा था जैसे कुछ दूर पर ही उजाला है ..... लेकिन वह कुछ दूर अन्तहीन हो गया है ।"[4] मध्यवर्ग की प्रतीक्षा इसी प्रकार अन्तहीन है ।

---

1. अपने से अलग - गंगाप्रसाद विमल, पृ.79
2. वही, पृ.188
3. वही, पृ.189
4. वही, पृ.34

मनुष्य सिर्फ मृगान्त के भ्रम में भटक जाता है । "अपने से अलग" में मध्यवर्ग की इस झूठी आस्थावादी मानसिकता का ही चित्रण हुआ है ।

"कहीं कुछ और" उपन्यास भी मध्यवर्ग की झूठी आशावादिता का ही है । इसमें उस परिवार की कहानी है जो बहुत दिनों से पिता के उस पत्र का इन्तज़ार कर रहा था जिसके साथ पैसे भी आनेवाला था । इसके लिए भारी बरसात में भी लोग डाक घर जाते हैं । पत्र न पाने पर अपनी प्रतीक्षा को दूसरे दिन के लिए बढ़ाता है, "उस दिन मुझे पोस्ट आफिस जाना था और वहाँ से अपनी वह चिट्ठी लानी थी जिस की हमें लम्बे अरसे से प्रतीक्षा थी । वह चिट्ठी जिसे हमारे पिता हमें भेजनेवाले थे, जिसकी राह सारा परिवार देख रहा था । दर असल वह चिट्ठी मामूली नहीं थी । और हमें सिर्फ कागज़ पर लिखी कुछ अक्षरों का इन्तज़ार ही नहीं, उन पैसों का इन्तज़ार था जो हमें न सिर्फ उन दिनों बल्कि आने वाले दिनों तक हमारे परिवार को भूख और अपमान से बचा सकते थे ।"[1] पिता का घर से दूर रहना, पत्र व पैसे का न आना, आदि आर्थिक समस्याओं को जन्म देते हैं । इस आर्थिक समस्या से बचने केलिए कोई अच्छी तरीका भी ढूँढ नहीं पा सकता । क्यों कि मध्यवर्गीय झूठी मान्यता ने उन्हें रोक रखा है । इसलिए वे पिता के पत्र का इन्तज़ार मात्र कर पाए हैं । इस प्रतीक्षा ने उन लोगों को असमय बूढ़ा बना दिया था । इसलिए बहुत ही उदार हृदयवाली कुलीन परिवार की माँ शान्त तथा अकेली रहने लगी है । उनके संस्कार ने उन्हें एकान्त प्रिय अदृश्य बना दिया था, "उनकी वह चुप्पी भी अजीब किस्म की होती है । ऐसा लगता है जैसे कोई बड़ा भारी पत्थर उनके गले में अटका हो और न जाने वे कितनी दूर पहुँच गयी हो ।"[2]

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल, पृ.3
2. वही, पृ.9

पिता के पत्र की प्रतीक्षा जब विफल हो जाती है तब उस प्रतीक्षा को बनाये रखने के लिए कोई न कोई बहाना ढूंढ लेते हैं । शायद बारिश के कारण सड़कें टूट गयी होगी, "मैं ने कहा था न, बारिश की वजह से सड़कें टूट गयी होगी, तभी तो डाक नहीं आ रही है ।"[1] सब लोग जानते हैं कि यह कोई सही कारण नहीं है । फिर भी ऐसी झूठी तसल्ली तो देनी ही पड़ती है । इस हालत केलिए जब माँ अपने भाग्य को कोसती है तो "मैं" उसे सान्त्वना देने केलिए कहता है कि इस हालत से मुक्ति पाने की कई तरीके हैं । माँ यह सुनकर अधिक दु:खी हो जाती है । दीदी भी यही कहती है, "कल क्या हो जायेगा तुम जानते ही हो, हम ऐसे ही पड़े रहेंगे ।"[2] क्योंकि माँ का संस्कार और हमारे कुल की मर्यादा उधार माँगने कभी नहीं देते । "हम हाथ पसारे । लोगों के सामने अपने आप को उघाड़कर खड़ा कर दें । तुम चाहते हो कि तुम्हारी माँ लोगों के सामने .... ।"[3]

दरअसल ये सब माँ की वहम मात्र हैं । माँ अपने आप को बहुत संभालती थी मगर जब रो पड़ती है तो बड़े सान्त्वना देते हुए कहते हैं "पहले तो किसी को कुछ पता नहीं तुम्हारे रोने से तो सब को पता चल जायेगा ।"[4] इन लोगों का विचार यह है कि उन्हें कितने भी कष्ट सहने पड़े कोई बात नहीं पर बाहर के लोगों को इसका पता तक न चले ।

पैसे की कमी के कारण दूध खरीदना भी बन्द कर दिया गया । पर यह बात सीधे कहने की हिम्मत नहीं । इसके लिए भी ये बहाना ढूंढते हैं, "बड़ी चालाकी से बूलू ने ही दूध बन्द किया था ।

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल, पृ.12
2. वही, पृ.20
3. वही, पृ.20
4. वही, पृ.25

उसने दूधवाले को कहा था कि हमारे पास दूध के बहुत सारे डिब्बे पडे हैं, वे बरसात में खराब हो जायेंगे । इसलिए अब बरसात के बाद ही दूध लेंगे ।"[1] अपने खालीपन को दूसरों से छिपाकर रखना मात्र इन लोगों का लक्ष्य है । उनका विचार है सालों पहले उनकी जो सम्पन्नता थी उससे गिर न जाये । उस सम्पन्नता के समाप्त होने के बावजूद उसी में अटका रहना चाहती है । वे कभी भी मांगनेवाले, छोटी छोटी बातों पर लडनेवाले और गाली देनेवाले गंवार बनना नहीं चाहते । पिता के पत्र आने तक के लिए इन्तज़ाम हो जाना चाहिए । लेकिन वे सब अन्दर ही अन्दर किया जाना चाहिए, बाहर नहीं । क्यों कि पिता के पत्र के आने पर सारी स्थिति ज़रूर बदल जायेगी । वह दिन भी दूर नहीं है । इसी प्रतीक्षा में ही वे ज़िन्दा हैं । जब प्रतीक्षा के दिन लम्बे होते जायेंगे तब पिता के साथ के विश्वास भी कम । पिता उस घर से अलग हो गये हैं कि सच्चाई को वे स्वीकार न करना चाहते हैं । इसलिए वे लोग जानबूझकर पिता की बीमारी की बात फैला देते हैं । बीमारी की खबराहट में, "मां" मन ही मन दुर्गा और तमाम देवताओं की मनौतियां मानने लगेगी ।"[2]

पापा की बीमारी की बात को, जो झूठ भी हो सब ने अपने मन में बिठा दिया । लोगों को भी पापा की बीमारी की खबर देने का प्रयास किया । अभाव एवं विडम्बनाओं से मुक्त ज़िन्दगी से जूझने केलिए बहाने बहुत सहायक होते हैं । ज्योतिष एवं मंत्र-तंत्र का विश्वास एक हद तक जीने की शक्ति देता है । क्यों कि उन्हें निराशा एवं हताशा में प्रतीक्षा जगाने की शक्ति है । परम्परा से आनेवाला विश्वास एवं संस्कार प्रतीक्षा को शक्ति प्रदान करते हैं । इसीलिए जूलू कहता है, "मुझे किसी ने बताया था कि अगर कुछ मंत्र पढ़े तो

---

1. कहीं कुछ और - गंगा प्रसाद विमल, पृ.25
2. वही, पृ.31

सब तकलीफें दूर हो जाती है ।"[1] गाँव वालों से मिलना जुलना माँ को कभी अच्छा नहीं लगता था । पैसे के अभाव के कारण बडे ने एम॰एससी॰ की पढ़ाई बीच में छोड दी । यह बात माँ से छिपाकर रखी क्यों कि वह दु:खी न हो जाय । ऐसी हालत में भी माँ अपने छोटे बच्चों को गाँव के स्कूल नहीं भेजना चाहती । उनका कहना है, "ऐसे स्कूलों में वे अपने बच्चों को नहीं पढायेंगे ।"[2] सभी बातों की सफाई देना, अपने आपको निर्दोषी स्थापित करना या झूठी परिस्थिति बनाना मध्यवर्ग की विशिष्टता है । जब खाने के लिए कुछ नहीं है तब भी माँ यही सफाई देती है, "आजकल गाँव में कोई सब्जी भी नहीं ।"[3]

माँ को बडे इम्तिहान से गुजरना पड़ता है । एक ओर बच्चों के भोजन की व्यवस्था करनी है तो दूसरी ओर विवाहिता लड़की और उसकी बच्ची की जिम्मेदारी निभानी है । फिर भी उधार माँगने केलिए माँ सहमत नहीं होती । वह कहती है, "हम खत्म हो जायेंगे पर ऐसा नहीं करेंगे । तुम समझते क्यों नहीं कि इससे हमारे पूरे परिवार की बदनामी होगी । हम लोग कहीं के नहीं रहेंगे । और थोडे दिनों का ही तो यह इन्तज़ार है ।"[4] जब दोनों लड़के नौकरी करने की बात करते हैं तब माँ पूछती है, "तुम्हें कौन सी परेशानी है ..... अभी तुम्हारे पापा और मैं जीवित हूँ । तुम्हें इस बारे में कुछ भी नहीं सोचना चाहिए । तुम कोई काम नहीं करोगे ।"[5] अन्त में माँ उन्हें रोकने के लिए इतना ही

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्र साद विमल, पृ॰57
2. वही, पृ॰94
3. वही, पृ॰99
4. वही, पृ॰105
5. वही, पृ॰107

कह देती है कि अनजाने रोग से पीड़ित छोटी बहन और परेशान बड़ी बहन एवं उसकी बच्ची को छोड़कर जाने की बात तुम लोग कैसे सोच सकते हो । मध्यवर्ग की यही संस्कार उन्हें अपनी स्थिति को सुधारने नहीं देता बल्कि आदमी को बेहद निष्क्रिय किन्तु अपने ही अर्थ में गरिमादान बना देता है ।

जब भूख से बचने के लिए सोने की गहनें बेचने का सुझाव दिया तो माँ ने कहा "सोने की किसी चीज़ को बेचने का मतलब जानते हो, क्या होता है - अपने आप को यतीम ज़ाहिर करना होता है ।"[1] उन लोगों को पूरी तरह से मालुम है कि यह प्रतीक्षा कभी समाप्त नहीं होनेवाली है फिर भी वे किसी दिन की प्रतीक्षा में हैं । माँ कहती है "मैं भी अब बहुत बाद में पता कर पायी हूँ । अब जब प्रतीक्षा सिर्फ उस दिन की है, जहाँ आकारहीन अंधेरा झप-झप आकर सबको पूरी तरह डुबो देगा । फिर भी वे कुछ नहीं कर पायेंगे । अपनी आशाओं एवं भूख तक को दबाकर जीना पड़ता है, क्योंकि मनुष्य इतना निष्क्रिय बन गया है कि "जो कुछ घटता है वह स्वीकार करना पड़ता है, यही मज़बूरी है ।"[3] माँ के द्वारा बिछाये गये जाल से ये लोग बच नहीं पा रहे हैं । मध्यवर्गीय झूठी मान्यता एवं गौरव का प्रभाव इन लोगों पर भी पड़ता है । निर्धन होने पर क्या अमीर अमीर नहीं रहते । "हर चीज़ को, हर पुरानी चीज़ को संभालकर रखना संस्कार के असल का सूत्र है । पुरानी चीज़ों की उपयोगिता चाहे खत्म हो गयी हो, उन्हें रखने की परंपरा के पीछे मन्तव्य है । यही कि यह जाहिर करने के लिए कि कभी हम खूब रईस लोग थे ।"[4] संक्षेप में "कहीं कुछ और" में मध्यवर्ग की झूठी

---

1. कहीं कुछ और - गंगाप्रसाद विमल, पृ.14।
2. वही, पृ.236
3. वही, पृ.191
4. वही, पृ.132

आस्था का स्वर बुलन्द है जो मानव को अंत प्रतीक्षा में झूठे विश्वास में केवल निष्क्रिय बना रखता है ।

अस्तित्व की तलाश

विमलजी के "मरीचिका" उपन्यास में मध्यवर्गीय अस्तित्ववादी चेतना को नये ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास है । मध्यवर्ग परम्परा से झूठे अन्धविश्वासों को पाले हुए हैं । अपने निहित स्वार्थ केलिए इस प्रकार के दिखावे को ज़ारी रखना आवश्यक समझते हैं । अपनी भौतिक लालसा को पूरा करने केलिए वह सुख सुविधाओं की खोज करता फिरता है । "मैं" की भेंट अचानक अपने पुराने दोस्त हरिप्रकाश से होती है । हरिप्रकाश की वेश-भूषा आदि देखकर "मैं" को वह धनवान लगा । वह अपनी सम्पन्नता की राह बताते हुए कहता है कि गुरुदेव सन्त भजनसिंह की कृपा से उसे वह सब प्राप्त हुआ है । आगे पूरे उपन्यास में सन्त भजनसिंह के अस्तित्व का ही अन्वेषण है । "जिस कहानी की मैं बात कर रहा हूँ बहुत मुमकिन है वह कोई कहानी ही न हो । सिर्फ मेरा वहम हो । ठीक वैसा ही वहम जैसा हम खुद के होने का पाले हुए हैं । वह एक ऐसी चीज़ है जिसे हम में से किसी ने भी नहीं देखा है लेकिन हम उसे मानते हैं वह है । कैसी अजीब बात है, जो चीज़ है ही नहीं - हो ही नहीं सकती वह एक परिपक्व विश्वास की शक्ल लिए हमारे बीच घूमती है । ..... उसे तोडने का मतलब है शताब्दियों से चले आ रहे जन समूह का विश्वास तोडना ।"[1]

हरिप्रकाश की सम्पन्नता एवं उनसे सम्बन्धित अन्य कहानियों पर भी "मैं" विश्वास करता है । क्यों कि बहुत ही

---

1. मरीचिका - पृ.88

आर्थिक कठिनाइयों एवं विडम्बनाओं से "मैं" को गुजरना पड रहा था । उससे बचने और एकाएक सम्पन्न बनने की लालसा ने उसे सन्त भजनसिंह की ओर आकर्षित किया । इसलिए वह इस जाल में फँस जाता है और अपनी दिमाग पर ज़ोर देते हुए स्मृतियों को टटोलने लगता है । तब अतीत के खण्डहरों में कफ्फू पागल को छोड्कर और किसी की याद "मैं" को नहीं आती ।

सन्त भजनसिंह की "वास्तविकता" की तलाश में "मैं" शशा सेठ के पास जाता है । फिर सन्त भजनसिंह का गुणगान करनेवाले सुरेन्द्र भाटिया से मिलता है । "मैं" उनकी बातें सुनकर बहुत सन्तुष्ट हो जाता है । "मैं" सोचता है, "कितना अच्छा हो शहर के सभी सताये हुए लोगों को सन्त का आशिश मिले । कितना अच्छा हो उन लोगों को भी जीवन की यह सम्पन्नता मिले जो मज़दूरी करते हैं, गरीबी में पिस रहे हैं ।"[1] "मैं" शहर जाकर सन्तजी से मिलने का ही निर्णय लेते हैं । हरिप्रकाश "मैं" को रोकने का प्रयास तो करता है मगर "मैं" अपने निर्णय पर अटल रहता है । "मैं" ने कूली से पूछा कि क्या तुमने सन्त भजनसिंह का नाम सुना है, तो उसने कहा हमने तो साहब, "दर्शनों के लिए बहुत बाबुओं को रूपया भी दिया था । पर ऐसा मालूम पडता है साब यह धोखा है । साला कोई सन्त सुन्त नहीं है ।"[2] "मैं" ने बहुत से लोगों से मिले, "पुराने लोगों से मिलकर मुझे ऊब हुई । उनकी बातों में वही पुरानपन वही लटके थे, वैसे ही मुहावरे । मुह से भी शब्द उसी तरह के निकलते थे । लगता था हम सौ साल पहले के किसी लेखक की चीज़े पढ रहे हो । एक पुरानी जान-पहचान के तरीके की चीज़ें थे वे लोग ।"[3]

---

1. मरीचिका, पृ.38
2. वही, पृ.117
3. वही, पृ.125

भौतिक सुख की लालसा ने उसकी खोज को आगे बढाया था । अन्त में "मैं" उसी जगह पहुंचा जिसके बारे में लोगों ने बताया था । वह कमरा चादर का था । एक कोने पर पलंग पडा था । बिजली की मंद मंद बल्ब की रोशनी में "मैं" ने देखा, वहां भी एक लम्बा आदमी लेटा हुआ था । वह इस तरह शान्त था जैसे वह कभी न उठेगा । कभी न उठेगा - यह सोचकर मुझे डर लगा ..... । "मैं को खयाल आया कि कहीं वह लकडी का आदमी तो नहीं । फिर भी "मैं" खुश था कि जीते जागते लोगों के न सही, स्थितप्रज्ञ सन्तों के दर्शन किए ।"[1] "मैं" कमरे से बाहर निकल आया । "मैं" को डर लग रहा था, "जितनी जल्दी हो सके "मैं" उस किले से बाहर निकलने की कोशिश में था । वह एक कैद थी । जहां न जाने कितने भजनसिंह गिरफ्तार थे ।"[2] न जाने कितने मनुष्य सन्त भजन सिंह रूपी गप्पों में कैद हैं । "वहां एक नहीं अनेकों सन्त थे । मैं बहुत झंझट में फंसा था । ..... लोग एक सन्त की बात करते थे लेकिन मैं तो कितने ही सन्तों को देख चुका था । ओह ! मेरा क्या होगा । मैं अजीब पेशोपश में पड गया ..... क्या होगा मेरा ..... कहीं इतने ज्यादा सन्तों की मेहरबानी मुझ पर हुई तो मेरा क्या होगा ।"[3]

ऐसी हालत में भी "मैं" ने सन्त जी की खोज को ज़ारी रखना चाहा । क्यों कि "मैं" उन लोगों में शामिल हो जाना चाहता है "मैं" ज़रूर उन लोगों में शामिल हो जाऊंगा जिनके पास दुनियादी तकलीफें नहीं है, बस मुझे उसके आशिष की प्रतीक्षा थी ।"[4] निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि "मरीचिका" में भौतिक सुख-भोग की तलाश में

---

1. मरीचिका, पृ.131
2. वही, पृ.131
3. वही, पृ.132
4. वही, पृ.134

भटकनेवाले आधुनिक मध्यवर्ग का चित्रण है । इन तलाशों का कोई अर्थ ही नहीं है । सिर्फ एक मरीचिका है । अपनी आशा एवं आकांक्षा की पूर्ति केलिए कुछ गप्पों पर विश्वास रखने के लिए लोग तैयार हो जाते हैं । इन गप्पों का पोल खोलना एवं ऐसे अन्धविश्वासों की अर्थहीनता को दिखाना इसका लक्ष्य है ।

विमलजी के चौथे उपन्यास "मृगान्तक" में भी अमरत्व की तलाश ही हम देखते हैं । यहाँ बोक्कु साधना के माध्यम से अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए भटकनेवाले लोगों की कहानी है । "मैं" उसका प्रतिनिधि मात्र है । मूल्यहीनता एवं स्वार्थपरता ने मानव को पशु बना दिया "बोक्कु विद्या भी एक ऐसी विद्या है जिसको जानकर सहज ही में आदमी बोक्कु यानी बाघ का रूप धारण कर सकता है ।"[1] इससे मनुष्य को अपना रूप बदल सकता है, अपने मित्रों को डरा सकता है । अपनी उम्र में एक वर्ष बढा सकता है । अमरत्व की इस मोह ने बहुत से लोगों को फटकाया था, "विज्ञान ने प्राचीन ज्ञान को संदेह की वस्तु बना डाला है । अब बोक्कु के सत्यासत्य की परीक्षा बहुत ज़रूरी है ।"[2] मैं इसके सत्यासत्य की खोज में निकला हुआ है । साधुओं एवं तांत्रिकों ने लम्बे अर्से तक इन से सम्बन्धित सूचनाएँ छिपाकर रखीं, "साधुओं और तांत्रिकों के व्यवहार से, उनके प्रति जो श्रद्धा का भाव मन में था, वह सदा के लिए नष्ट हो गया । उनकी उच्चता, गरिमा और उनके चमत्कार का भी कोई सामना नहीं हुआ था ।"[3] लामा और कीर्तीभाई की सूचना एवं आशिश से "मैं" को जलेउ तक पहुँचने का रास्ता मिल गया । भोजनालय में जिस व्यक्ति से मुलाकात हुई उससे जलेउ से सम्बन्धित बहुत सी खबरे मिलीं । उनका कहना है, "मैं ऐसी

---

1. मृगान्तक, पृ.10
2. वही, पृ.11
3. वही, पृ.16

जगह का रहनेवाला हूँ साहब जिस जगह पर देवी शाप पडा था । "मैं" जलेड का रहनेवाला हूँ । ..... खण्डहर और जंगल के होते हुए भी एक वक्त था जब वहाँ बराबर लोग जाते रहते थे पर अब तो वहाँ मीलों तक कोई नहीं जाता ।"[1]

अन्त में "मैं" बोक्षु साधना के मूलाधार तक पहुँच गया । वह है सर्वदानन्द तांत्रिक । मणिराम ने बताया "सर्वदानंद को मैं जानता हूँ । इस इलाके में मान्यता है कि वह पहुँचा हुआ तांत्रिक है । संयोग ही समझिए मुझे सर्वदानंद कभी यहीं मिल जाता है, कभी दरादून, कभी ऋषीकेश, यह तांत्रिक भी बहती नदी की तरह है ।"[2] "मैं" ने सर्वदानंद से मिलकर खूब बातचीत की । सर्वदानंद ने कहा यहाँ की बातें न समाप्त होनेवाली वेद की कथा के समान है । उनमें उन सूत्रों को खोलने की शक्ति है जिनसे नयी नयी अर्थ छवियाँ निकाल सकती हैं, "निकट सी पुण्य भूमी है असंख्य यहाँ आये और आकर कृतार्थ हुए । किन्तु अब यहाँ क्या रखा है । लोग आते रहे और यहाँ की चीज़ें ले जा रहे हैं ।"[3] सर्वदानंद की सेविका रिखली देई से "मैं" को कई बातों की जानकारी मिली । यह जानकारी जलेड एवं वहाँ की तांत्रिक साधना के दूसरे पहलू को उजागर करनेवाली थी । बोक्षु विद्या एवं तंत्रसाधना के जाल में पड कर जलेड की अध्यात्मिकता पर आगे बढनेवाले "मैं" को रखली देई ने वहाँ की मूल्यहीनता दिखाया । तंत्र साधना के नाम पर होनेवाले काले करतूतों का पोल खोलने का कार्य रखली देई ने किया । सर्वदानंद की साधना के बारे में रखली देई की राय है, "उसकी साधना तो विचित्र है । मेरे

---

1. मृगान्तक, पृ.32
2. वही, पृ.45
3. वही, पृ.44

जैसे लोगों को ..... ।"[1] मैं तो अब तक नहीं जानता कि मेरा क्या होगा कि पंडितजी किस रूप में मुझे तन्त्रोपचार में दीक्षित करेंगे । ..... बस जो लोगों से सुना वह बेहद घृणास्पद है ।"[2]

अन्धविश्वासों में जकडे हुए लोगों का शोषण ही यहाँ चित्रित है । पंडितजी इसलिए उस लड़की को खरीद सका कि वह गरीब है और वे लोग देवी-पूजा-पाठ आदि से डरते हैं । रखली देई असल में आना नहीं चाहती थी । क्यों कि वह आत्मानंद से प्यार करती थी । धार्मिक पूजा पाठ के लिए ना कहने से वह डरती थी । भारतीय जनता के मन में रूढ मूल विश्वासों से या आस्था से मुक्ति पाना आसान नहीं है । इसलिए वह गरीब लड़की साधना में एक चीज़ मात्र बनने के लिए तैयार होती है । वह अपने प्यार को भी ठुकरा कर सन्तजी के साथ आता है । फिर "मैं" को अनन्दू से पता चलता है कि जलेड में अब जो बोक्कु है वह सर्वदानंद ही है । अनन्दू और बोक्कु के बीच मुठभेड होता है । अनन्दू खायल हो जाता है । फिर "मैं" नाकछेदा की मा से मिलने जाता है । उससे उसके नाना के बोक्कु बनने की कहानी सुनी । उसकी बडी मौसी की ज़िद पर नाना बोक्कु बन गया । बोक्कु ने बकरी का कण्ठ दबाकर रक्त चूस लिया और उसके बाद उसने लड़की का भी खून चूस लिया । फिर नाकच्छेदा की मा ने कहा, "सारी दुनिया बोक्कु है मेरे बेटे बोक्कु । ..... इन सब लोगों को देख - ये क्या चाहते हैं मुझसे । बस मैं एक निरीह बकरी की तरह हूँ ।"[3] "मैं" इन सारी बातों से एकदम ऊब गया । "मैं" को अपनी खोज निरर्थक लगने लगा ।

---

1. मृगान्तक, पृ.90
2. वही, पृ.88
3. वही, पृ.135

"मैं" का कहना है "मुझे अपनी खोज जलेड में आना, इतनी दिक्कतें सहना सब बेकार लग रहा था । शायद "मैं" डयरी में लिखूगा कि अपने अतीत को कभी नहीं खोजना चाहिए । इससे बीभत्स और क्या हो सकता है कि हम किसी के खून के प्यासे हो जाएं । ..... अपने अतीत गौरव के बहाने आदमी हत्यारा हो जाता है ।"[1] मैं ने अपने आपको समझाने का प्रयास करते हुए लिखा, "ज़िन्दगी को जितना खोजोगे, उतना ही विरूप पाओगे उतने ही मुश्किलें देखोगे ।"[2]

निष्कर्ष

इस प्रकार विमलजी के सभी उपन्यासों में तत्कालीन मध्यवर्गीय जीवन दृष्टि का ही चित्रण हुआ है । "अपने से अलग" "कहीं कुछ और" में सुनहले भविष्य की प्रतीक्षा लेकर वर्तमान की विभीषिकाओं से जूझने का चित्रण है । पर उनके कल की प्रतीक्षा मात्र रह जाती है । उनके वर्तमान की विडम्बनाएं दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही हैं । कोई सक्रिय कदम उठाने के लिए वे तैयार नहीं हैं । पर इन्तज़ार करते हैं । यह एक प्रकार की आस्था है । इसमें जिजीविषा है । "मरीचिका" और "मृगान्तक" में इसी आस्थावादी दृष्टिकोण का दूसरा रूप है । यहाँ यह दृष्टिकोण खोज के स्तर पर है । भौतिक सुख की लालसा ने उन्हें अन्वेषी बना दिया है । यहाँ सुख-भोग के साधन जुटाने का सक्रिय प्रयास नहीं है । बल्कि जल्द से जल्द धनी बनने की इच्छा है । सन्त भजनसिंह की तलाश और बोधु विद्या की खोज इसका ही परिणाम है ।

---

1. मृगान्तक, पृ.149
2. वही, पृ.149

शिक्षा संपन्न युवा पीढी की विभिन्न समस्याओं को इन उपन्यासों में वाणी मिली है । कभी बेरोज़गारी इनकी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं को चकनाचूर कर देती है, तो कभी आर्थिक समस्या उनके मार्ग पर लगाम लगा देती है । वह अपने ही समाज में अजनबी बन जाता है । परम्परा एवं नवीनता की टकराहट उनके मन में संघर्ष पैदा करती है । पारिवारिक सम्बन्धों की दरार ने युवा पीढी को कुमार्ग पर चलने के लिए विवश कर दिया । इस प्रकार युवा पीढी की विभिन्न समस्याओं को भी इस में चित्रित किया गया है । इसके अलावा "मृगान्तक" में सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्य हीनता की ओर भी संकेत है ।

संक्षेप में विमलजी के सभी उपन्यास समसामयिक सामाजिक समस्याओ ' को उजागर करने में संक्षम है । आधुनिक मानव की विडम्बनाओ ' को उसकी गहराई के साथ पकड पाने में विमलजी सफल निकले हैं । "अपने से अलग" और "कहीं कुछ और" में पारिवारिक विघटन, आर्थिक समस्या, निष्क्रिय प्रतीक्षा में रत युवा पीढी आदि का चित्रण है । युवा पीढी को एक ओर संस्कारगत रूढ़ियों से जूझना पडा है तो दूसरी ओर बेकारी नशाखोरी आदि से ।

"मरीचिका" एवं "मृगान्तक" बाहरी तौर पर कुछ भिन्न दिखाई पडने पर भी, समकालीन समस्याओं को चित्रित करने में सफल ही निकले हैं । सन्त भवनसिंह, आधुनिक संदर्भ में बहुत प्रासंगिक है । सन्त एवं उनका आश्रय आजकल काले कातूतों के लिए पर्दामात्र रह गया है । झूठी आस्था एवं अन्धविश्वासों को फैलाकर जनता को अपनी जाल में फँसाना ही आज के तथाकथित संतों का काम है । इसका पोल

खोलना भी लेखक का उद्देश्य है । उनके अनुसार निष्क्रिय रह कर सम्पन्न बन जाने की इच्छा केवल भ्रांति मात्र है । इसी प्रकार आशीष की तलाश में भटकना भी व्यर्थ है । ऐसे सन्तों का भी कोई अस्तित्व नहीं है । सक्रियता के बिना जीवन को सफल बनाना असंभव है । इस युग सत्य की ओर उनके उपन्यास इंशारा करते हैं ।

चौथा अध्याय

खण्ड खण्ड सत्य का साक्षात्कार : कहानी

चौथा अध्याय

खण्ड खण्ड सत्य का साक्षात्कार : कहानी

हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान

दीगर साहित्यिक विधाओं की तरह हिन्दी कहानी की शुरूआत भी उन्नसवीं शताब्दी में हुई । प्रारंभिक कहानियां तिलस्मी, ऐयारी एवं परियों की कथाओं से सम्बद्ध थीं । इसलिए प्रारंभिक कहानियां अधिक दायदीय थी ।

युगस्रष्टा कहानीकार प्रेमचन्द ने ही हिन्दी कहानी को उसकी दायदीयता से मुक्त करके जन सामान्य के जीवन से जोडने का कार्य किया था । वैसे हिन्दी कहानी "काल्पनिक सत्य से सामाजिक सत्य की ओर मुड गयी । जीवन की नई नई समस्याओं से वह समृद्ध होने लगी । प्रेमचन्द के प्रथम चरण की कहानियों में यथार्थवाद और आदर्श का सन्तुलन है तो दूसरे चरण में कहानी यथार्थ के खुरदरे सन्दर्भों को अपने में समाहित कर लेती है । मानवीय संवेदनाओं के साथ साथ इन में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं को भी व्यक्त किया गया । उनके अन्तिम चरण की कहानियां बिलकुल यथार्थवादी है ।

"कफन", "पूस की रात", "नशा", "मिस पद्मा" आदि कहानियों में इस संवेदना को बहुत ही गहराई के साथ व्यक्त किया है ।

निस्सन्देह ये कहानियाँ आधुनिक है । इन्होंने हिन्दी कहानी का दिशा निर्देश किया था । इसी समय विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक" विश्वंभरनाथ "जिज्जा", सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा जैसे लेखक प्रेमचन्द के ही समान आदर्शोन्मुख यथार्थवादी मानसिकता को प्रश्रय देते रहे हैं । दूसरी ओर प्रसाद, जैनेन्द्र, उग्र, निराला आदि इससे थोडा हटकर भावुकता एवं रोमांटिकता पूर्ण कहानियाँ लिखते रहे । अत: आधुनिक हिन्दी कहानी की शुरूआत प्रेमचन्द से मानना समीचीन होगा । "जब से कहानियों में सामाजिक वास्तविकता के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि के बिन्दु मिलते हैं, मोटे तौर पर ऐसे समय से कहानी में आधुनिकता का आरंभ मानना चाहिए । अत: प्रेमचन्द युग कहानी के आधुनिक दौर का प्रथम समय है ।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर कहानियाँ आधुनिक रचना-दृष्टि के बहुआयामी सन्दर्भों को अभिव्यक्त करनेवाली हैं । उनमें सामाजिकता के साथ ही साथ व्यक्ति मन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने का प्रयास हुआ है । नया ज्ञान-विज्ञान एवं सांस्कृतिक परिवर्तन इन कहानियों में मुखर हैं । पर इनमें प्रेमचन्द युगीन सामाजिकता कुछ मद्धिम पड गई है । विषय सम्बन्धी गहराई तो ज़रूर है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी क्षेत्र में अनेक आन्दोलन हुए हैं । इन सभी आन्दोलनों के मूल में आम जनता की व्यथा को संप्रेषित करने तथा उनकी वर्तमान हैसियत को बदलने की बलवती आकांक्षा है । क्यों कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ऐसी एक कामना जुडी हुई थी ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी : एक प्रारंभिक निबन्ध
गंगाप्रसाद विमल, पृ.5

पर वह बेकार सिद्ध हुई । यह भी नहीं इस सन्दर्भ में मानवीय मूल्यों में भी काफी परिवर्तन हुए । बहुत सारे मूल्य विघटित हो गए तथा नए मूल्यों की तलाश भी शुरू हुई । आस्था एवं विश्वास विघटित हो गए । इन परिवर्तनों का प्रभाव काफी हद तक साहित्य पर भी पडा । इसका परिणाम है आधुनिकता । आधुनिकता याने नया भाव बोध, जीवन को नए सिरे से देखने-परखने का, नए मूल्यों की तलाश का परिणाम है । इसने ही नयी कहानी को जन्म दिया, "नई कहानी के ऐतिहासिक सन्दर्भ ने नई "एप्रोच" और नए दृष्टिबोध से जन्म लेकर कहानी को आगे बढाने का आयाम दिए । यह नयी "एप्रोच" मानव जीवन की अन्तर्विरोधात्मक स्थिति असंगति और विघटन से पैदा हुई । क्यों कि इसके मूल में साक्षात भोग की प्रामाणिकता है, अत: नए मूल्यों के साथ नई कहानी ने नव्य स्थापनाओं पर भी बल दिया ।"[1]

"नयी कहानी की भूमिका" में कमलेश्वर ने व्यक्त किया है कि नयी कहानी में नए के लिए निरन्तर प्रयत्नशील और प्रयोगशील रहने की प्रक्रिया है । अत: नई कहानी में भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति की तीव्रता है । कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर यह तीव्रता हमें अभिभूत कर डालती भी है । यह नयी कहानी की प्रगतिशीलता का ही परिवाचक है । इस प्रकार नयी कहानी में अनिश्चितता, अकेलापन, अजनबीपन, ऊब, व्यर्थताबोध, स्ट्रास, घुटन, महानगर की विभीषिका, राजनैतिक विसंगति आदि नए तेवर के साथ अभिव्यक्त हो गए ।

---

1. समकालीन हिन्दी कहानी : समान्तर कहानी - डॉ. विनय
पृ.6

हिन्दी कहानी और विमल

विमल नयी संवेदना का रचनाकार है । कहानी के क्षेत्र में उनका पदार्पण स्वाधीनता परवर्ती सन्दर्भ में हुआ और अब भी वे सक्रिय लेखन कार्य में जुड हुए हैं । इसी बीच हिन्दी कहानी के क्षेत्र में अनेक आन्दोलन हुए । नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, समकालीन कहानी आदि । इनमें नयी कहानी और समकालीन कहानी आन्दोलनों को छोड्कर दीगरों की प्रासंगिकता सन्दिग्ध ही रह गयी । विमल समकालीन कहानी आन्दोलन से अवश्य जुडे रहे हैं । समकालीन कहानी आन्दोलन का स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने लिखा है, वह रचना की कोई नई विधा नहीं है । इसके रचनाकार कथा रचना में अपने समग्र नयेपन का आग्रह करते हैं । वे अपने भोगे हुए जीवन को सही मायने में सम्पूर्णता से पहचाना है । और यह उसका प्रामाणिक यथार्थ है ।

विमल की कहानी ने नई कहानी से लेकर समकालीन कहानी तक की विभिन्न प्रवृत्तियों को अपने में समाहित किया है । वे किसी आन्दोलन के पक्ष में नहीं है । उनका रचना संसार मध्यवर्ग का है । इसलिए मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को नई संवेदना के साथ संप्रेषित करने का कार्य विमलजी ने अपनी कहानियों में किया है । वे निराशावादी नहीं, आस्थावादी है । भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं परंपरा पर आस्था रखनेवाला है । पारिवारिक विघटन पर दु:खी है, औद्योगीकरण से संत्रस्त है, मूल्यहीनता पर व्याकुल है । इसलिए उनकी कहानियों में ये सारी बातें विभिन्न सन्दर्भों में अभिव्यक्त हुई है । सच्चे अर्थ में विमल की कहानियाँ भी उनके काव्य के समान समसामयिक जीवन-यथार्थ के साथ सीधे संघर्ष का सही दस्तावेज़ हैं ।

अत: उनकी कहानियों में सांस्कृतिक आस्था का स्वर, शहरी जीवन में गुम होता हुआ व्यक्ति जीवन, मतलब का रिश्ता और इनसानियत का कृष्ण पक्ष, जनतांत्रिक व्यवस्था का पोल, अकेलापन के महाशून्य से पीड़ित व्यक्ति, जड से उखडे हुए लोगों की कराह ध्वनि, पारिवारिक विघटन के इर्द-गिर्द घूमते व्यक्तित्व आदि प्रवृत्तियां पायी जाती हैं ।

सांस्कृतिक आस्था का स्वर

भारतीय संस्कृति इतिहास एवं विरासत पर आस्था रखनेवाला लेखक हैं गंगा प्रसाद विमल । देश-विदेश की यात्राओं से भारतीय संस्कृति की विभिन्नता एवं विशिष्टता को देखने और परखने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ है । संसार भर के लोग इस संस्कृति पर आकृष्ट भी है । विश्व भर में व्याप्त भारतीय संस्कृति की उस गरिमा को व्यक्त करने वाली कहानी है "हमवतन" । मध्य एशिया के फूजे नामक शहर में यह घटना घटी थी । भरे बाज़ार में हाथ पकड कर रोकते हुए महिला ने पूछा "क्या आप भारतवासी है ? उनका अनुमान है अगर तुम भारतवासी है तो हमारे रिश्तेदार है, क्यों कि वे सब महिलाएं फरगाना के थे, जहां के बाबर थे । उसने "मैं" को शादी पर बुला लिया । ससुराल जाते समय दु:खभरी वाणी में उसने कहा, "अगले मौसम की पहली चिडिया आयेगी तो "मैं" अपने हिन्दुस्तानी रिश्तेदारों को सन्देश भेजूंगी ..... यहां दूर ..... हिमालय के इस पार से ..... ।"[1] भारतीय संस्कृति से समानता रखनेवाली संस्कृतियां, रस्में और रीतिरिवाज़ एशिया के अन्य भागों में भी देख सकते हैं । "जरफशान दरिया की घाटी में बसे समर कंद को "पूर्व का मोती" कहा जाता है । यह सब पूर्व का

---

1. हमवतन : वर्जित कहानियां - गंगा प्रसाद विमल, पृ.12

चमत्कार है, और पूर्व का ज्ञानकेन्द्र है हिन्दुस्तान । जो यहाँ के हरेक के दिल में बसता है ।"[1]

पारिवारिक जीवन की सुदृढता भारतीय संस्कृति की खूबी है । यद्यपि आजकल इसमें बदलाव आ गया है तथापि देश विदेश के लोग इस पर आकृष्ट है । पश्चिम में विवाह और परिवार लगभग शिथिल हो चुके हैं । माँ-बाप के होते हुए भी बच्चे अनाथ रहते हैं । अपने बच्चों को अनाथ जैसा जीवन बिताते देखकर एक यूनानी का कथन है, "अफसोस तो मुझे होना चाहिए । हमारी संस्कृति जो रूप ले रही है उसमें कोई भविष्य नहीं है ।"[2] वह यूनानी भारतीय परिवार को देखकर बहुत खुश होता है और दुआ देता है, "बस आप लोग जीवन भर ऐसे ही रहें । ये बच्चे बढे और तरक्की करें । ..... बनाये रखो दोस्त मनुष्य के मूल्य ..... मनुष्यता ।"[3]

विदेश के लोग भारत के बारे में बहुत पढते ज़रूर हैं । भारतीय संस्कृति का जो रूप पुस्तकों में हैं, उससे बहुत भिन्न है असलियत । अंग्रेज़ी शिक्षा एवं संस्कृति ने भारतीय जनता को प्रभावित अवश्य किया है । 'खोई हुई थाती' के 'सैलानी' नाम्क कहानी का "मैं" इसलिए बहुत दु:खी है, "मैं किसे बताऊंगा कि भारत में क्या हो रहा है ? जो किताबें से पढ़ता है और जो यहाँ घटता है उसमें कितना फर्क है ।"[4]

---

1. हमवतन : वर्जित कहानियाँ, पृ.12
2. सैलानी खोई हुई थाती, पृ.117
3. वही, पृ.119
4. वही, पृ.119

पारिवारिक सम्बन्धों में आए विघटन से लेखक चिन्तित है । संसार भर के लोग भारतीय समाज व्यवस्था के जिस पहलू को बडे आदर की दृष्टि से देखते हैं वे हमारे लिए नगण्य हैं ।

औद्योगीकरण के कारण नौकरी की तलाश में या रोज़ी-रोटी कमाने के लिए लोगों को अपने गाँव तथा वहाँ उन्हें अपनी संस्कृति, विरासत तथा यहाँ तक अपनी अस्मिता को भी नष्ट करके एक प्रकार का आश्रयहीन जीवन बिताना पडता है । विमलजी की "खोई हुई थाती" असल में शहरी सभ्यता में गुम हो जानेवाली अपनी विरासत, परम्परा एवं भाषा को तलाशनेवाली कहानी है । विज्ञान ने ही मनुष्य को आस्थाहीन एवं शंकालु बना दिया था । इससे वह अपनी परम्परा एवं विरासत पर पुनर्विचार करने केलिए उद्यत हो उठा है । तब पता चलता है कि उनका बहुत सारा विश्वास विश्वास मात्र है, उससे अपने भविष्य को गढना असंभव है । "खोई हुई थाती" में इस बदली हुई मानसिकता का चित्रण हुआ है ।

मरते वक्त माँ ने "मैं" को एक ताबीज़ दी थी । ..... माँ के मरने के बाद उसे धागे से बाँधी मेरी बडी बहन ने मेरी बाँह के साथ बाँध दिया था ।"[1] उस कागज़ में लम्बी उम्र पाने के तरीके थे ..... सब कुछ पाने के तरीके ..... और लिखे थे भूख पर विजय पाने के तरीके ..... और रोग तथा कष्टों से छुटकारे के तरीके ..... ।"[2] "मैं" ने उस ताबीज़ को खो दिया जो उसकी माँ को विरासत से प्राप्त थी और उसे आगे की पीढी को भी देना था । लेकिन जब "मैं" ने पढ़ना शुरू किया तो बचपन में एक भूल की थी, "उस भूले बचपन में जब मुझे अक्षर ज्ञान हो गया था "मैं" ने अपने

---

1. खोई हुई थाती, पृ.11
2. वही, पृ.4

शरारतपूर्ण आदत से मज़बूर हो वह तावीज़ एक दिन तोड डाला था । .....उसमें से एक कागज़ निकल आया था, उसे ही खो दिया । बडी बहन ने बताया, "तू जो शरारती और धूर्त था वही उसे पढ सका था । पता है तुझे एक रात लैम्प की रोशनी में धीरे-धीरे तू ने वह पढकर मुझे सुनाया था ..... वह भी आधा कागज ।"[1] उसने पहले अपनी माँ को खोया फिर तर्क और ज्ञान में पडकर सच और झूठ की दुविधा में फँस गया । वह अपनी विरासत और परम्परा को ज्ञान एवं तर्कशीलता की नवीन दृष्टि से परखने लगे । इसलिए उसे वह भी नष्ट हो गयी । इन सब को खोकर वह अपने सामने ही नहीं सम्पूर्ण दुनिया के सामने दु:खियों, भिखारियों, पीडितों के सामने कसूरवार हो गया है । "मैं कसूरवार हूँ ओ भविष्य इन तमाम विग्रहों, मृत्युओं, हत्याओं तनावों की वजह मैं हूँ ..."[2] मैं सिर्फ अपने ही अस्तित्व को तलाश में भटकता रहा । "मैं" खुद में सिमटकर सामाजिक चेतना से भी विमुख हो गया । समाज के विभिन्न प्रकार के काले कारनामों के विरोध में "मैं" ने कभी भी आवाज़ नहीं उठाया । इसलिए "मैं" अपने आप को कसूरवार मानता है । माँ जिस विरासत को "मैं" के हाथ में सौंपकर चल बसी वह उससे गुम हो गयी है । आनेवाली पीढी को देने के लिए उसके पास कुछ भी शेष नहीं है । क्यों कि शहरी सभ्यता के प्रभाव में पडकर "मैं" ने अपनी विरासत को खो दिया । "मैं" अपनी विरासत एवं परम्परा से विच्छिन्न होकर अनस्तित्व की व्यथा भोगनेवाले आधुनिक मानव का प्रतीक है ।

---

1. खोई हुई थाती, पृ.13
2. वही

भारतीय परम्परा एवं संस्कृति के प्रति आस्थावान लेखक उसके परिवर्तन पर दु:खी तो ज़रूर है । पर वह यह भी स्थापित करना चाहता है कि उसकी परम्परा शहरी सभ्यता की चकाचौंक में पूर्ण रूप से विनष्ट नहीं हो गयी है । लेकिन वह शहर में ही कहीं न कहीं दब गई है । उसकी तलाश अनिवार्य है । इसके बिना हमारा अस्तित्व नामुमकिन है । उनकी "इन्ता-फिन्ता" नामक कहानी इसका ही परिणाम है । गर्मी की दुपहरी में बस से उतर कर "मैं" गलियों से यात्रा शुरू करता है । कडी धूप की यात्रा करते हुए "मैं" एक बस्ती में पहुँच जाता है । बस्ती में चौपट खेलने में मस्त लोगों से "मैं" ने पूछा कि क्या आप को रामदर्मा का घर मालूम है । "उन लोगों ने रामदर्मा का नाम गिनना शुरू किया, तीन श्रीरामदर्मा, आठ प्रियरामदर्मा, और तीन मदनरामदर्मा ····· फिर सब लोग मिलकर मदनरामदर्मा का घर ढूँढने निकला ।" रास्ते में बातचीत के दौरान पता चलता है कि वहाँ बहुत ही कम लोग बाहर से आते हैं । "हमारे गाँव में तो कोई कोई आता है साब । कभी आ गया तो कोई नेता आ गया ।"[1] जब वे मदनराम के घर पहुँचे तो वहाँ वह नहीं था सिर्फ उसकी बीबी थी । उसने गरमागरम दूध दिया, करीबन आधा सेर । "मैं इस अवस्था में पडा इतना सारा दूध कैसे पी सकेगा ।" आज ही नहीं जीवन भर इतना दूध पी नहीं सकता । वह दूध की तरफ देखता रह जाता है । "पियो न" । मदनरामदर्मा की पत्नी कहती है । सारे लोग यहाँ इतना ही दूध पीते हैं । इस पर "मैं" सोचता है, "यह अच्छी सज़ा है । मैं यह दूध अगर पी लूँगा तो मुझे ज़रूर किसी शौचालय में बैठना पडेगा । दूध का गिलास हाथों में लिये-लिये मुझे महसूस हुआ जैसा मेरा पेट गड़गडा रहा हो ।"[2] वहाँ के लोग फुसफुसा रहे थे, "शहरी लोग उतना दूध भी नहीं पी सकते ।

1· इन्ता फिन्ता - अतीत में कुछ, पृ·145

2· वही, पृ·149

जाते समय एक बूढी औरत ने चूमते हुए कहा, "कभी कभी आ जाया करो बेटा । लोग जो यहाँ आते भी हैं वह चुनाव के दिनों आते हैं और फिर या बिजली काटने या मकान गिराने ।"[1] लौटते वक्त रास्ते में एक कबाडी की दूकान है जिसमें आज भी एक पुरानी दुनिया ज्यों का त्यों जीवित है । बन्द दरवाज़ोंवाली बस्ती से एकाएक "मैं" खुले मैदान वाले शहर में आ गया । तभी तो उसे लगा "शहर से घिरी हुई वह बस्ती इतने पास होने पर भी शहर से कितनी दूर थी । एक बन्द दरवाज़ों वाली बस्ती से "मैं" खुले मैदानों वाले शहर में आ गया था ।"[2] लेकिन लेखक शहर के बीचों बीच स्थित उस बस्ती में ही गाँव की खूबसूरती, अपनापन एवं सादगी का अनुभव करता है । इस प्रकार अपनी सही सभ्यता एवं संस्कृति को तलाशने की इच्छा विमल की कुछ कहानियों में देख सकते हैं ।

शहरी शोर में गुम होता हुआ व्यक्ति जीवन

स्वाधीनोत्तर भारत की बिगडी हुई परिस्थितियों ने मनुष्य को हताश एवं आस्थाहीन बना दिया । शहरीकरण बढता गया । विकास की नवीन योजनाओं के मुताबिक बहुमंजिले इमारतें एवं सड़कें बन गयीं । व्यस्तता एवं यातनाग्रस्त जनता शहरी सभ्यता की मुखमुद्रा बन गयी । इस सभ्यता ने असल मेंभीड को जन्म दिया । भावनाहीन भीड इसकी उपज है । मानवमूल्य, ईमानदारी एवं अच्छाई की जो शिक्षा उन्होंने पाई थी, वे सब अपने यथार्थ जीवन में बेकार सिद्ध हुई । इसलिए आम जनता एक भीषण मोह भंग की स्थिति में पहुँच गयी । ऐसी परिस्थिति में चिन्तन शील व्यक्ति के सामने सिर्फ एक ही रास्ता नज़र आया, अपने को खत्म करना । तमाम परीक्षाओं में सर्वोत्तम स्थान प्राप्त होने के बावजूद धनराज को

---

1. इन्ता फिन्ता, पृ.150
2. वही, पृ.156

मामूली मास्टरी की नौकरी से तृप्त होना पडा़। मास्टरी की नौकरी ने ही असल में उसकी ज़िन्दगी को और अधिक संघर्ष-मय बना दिया । जिन मूल्यों की शिक्षा उसे मिली थी वे सब पुरानी पड गई । जो नवीन मूल्य बन रहे हैं वे अत्यंत खतरनाक हैं । "छल, तस्कर, चोरबाजारिए ····· वे लोग तो मानव मूल्य या मानव करुणा या सच को ताक पर रख बहुत ही क्रूरतापूर्ण ढंग से तिजोरियाँ भरे जा रहे हैं और "मैं" स्कूल में बच्चों को पढाये जा रहा था कि झूठ बोलना पाप है, हमेशा सच बोला करो, दीन दु:खियों की मदद के लिए आगे आओ ···· ।"[1]

इस भीषण अवस्था से बचने के लिए उसके सामने सिर्फ एक ही रास्ता है "आत्महत्या" जो यहाँ जीते हुए भी कर रहा है । उसकी शंका यह है, "क्या दे सकूंगा मैं अपने बच्चों को ? क्या छोड सकता हूँ विरासत में '·····सिर्फ भूख ····· कर्ज ····· पराश्रय और एक निकम्मी सी धारावाहिक, आत्मघाती प्रतीक्षा ···· ।"[2] आत्महत्या करना पाप है । उस पर सज़ा मिल सकती है । लेकिन उसे इन सज़ाओं की परवाह नहीं है । क्यों कि "लम्बी सजाओं की तो ज़िन्दगी मिली है । एक जगह से मुश्किल से बरी हुआ तो अब यहाँ मुक्त ज़िन्दगी में भी खुद को फँसा हुआ महसूस करता हूँ । "फ्रीडम" की कैद में हूँ दोस्त ।"[3] धर्म, मन्दिर ····· विश्वास सब कुछ मनुष्य को सिर्फ बेचारा साबित कर सकता है, "मुझे लगता है मेरे परिवार के पास कोई विकल्प नहीं है ····· हम बेचारों के लिए हमारे अधिकार की सीमा में सिर्फ एक दरग है ····· और वह है ·····मौत को अपनाना ।"[4] परिवार के सामने, खुद के सामने,

---

1· आत्महत्या खोई हुई थाती, पृ·74

2· वही

3· वही, पृ·76

4· वही, पृ·80

बेवारा एवं निकम्मा स्थापित होने के बावजूद जिन्दा रहना आत्महत्या करने से भी बदत्तर है । इसके बाद "मेरे बच्चों का जीवन भी बेवारगी भरी सच्चाई से भरा होगा तो क्यों न वे मेरा ही आदर्श अपनाएं ? पर अगर उनमें कोई झूठा, मक्कार, अपराधी बन गया, तो वह दुनिया के लिए सफल आदमी बन जायेगा । .... शायद मुझे खुशी होगी ....।"[1]

शहरी सभ्यता में पनपनेवाली भीड में न अपने पराये का बोध रहता है न ही अपनेपन का भाव । सिर्फ दिखावा है । अपनी स्वार्थपूर्ती के लिए बनावटी प्रदर्शन ही करते हैं । तीन घण्टों से लाश की प्रतीक्षा में रोनेवाले भीड से डाक्टर कहते हैं, "तुम लोगों को यहाँ रोने की बिलकुल इज़ाजत नहीं । ..... फिलहाल आप लोग यहाँ से हट जायें नहीं तो मुझे पुलीसवालों को कहना पडेगा कि वे आप को यहाँ से बाहर कर लें ।"[2] रात को सड़क पर रोने की आवाज़ सुनाई दी । कुछ देर बाद बिजली के खम्भे के नीचे चादरें बिछाकर वे लोग बैठ गये । बीच में लाश थी । आखिरी बस आने पर वे छातियाँ पीट कर रो रहे थे । कुछ देर बाद, "वे लोग हँस रहे थे । खिलखिलाकर हँस रहे थे । वे टोलियों में बाँटकर अपनी अपनी चादरों पर ताश खेलने लग गये थे ।"[3] दूर से कार देखा तो फिर से रोने का नाटक शुरू किया । इन लोगों को मरे हुए जीव के प्रति न कोई दिलचस्पी है न ही लाश के प्रति आदर । सब दिखावा है, प्रदर्शन है । इन लोगों के बीच "मरना भी कितना अपमानजनक है । हृदयहीन लोगों के लिए दूसरों का मरना सिर्फ मुसीबत है, मखौल है ।"[4] "प्रिज्म" कहानी शहरी मनुष्य की स्वार्थता के और एक पहलू का

---

1. आत्महत्या - खोई हुई थाती - गंगाप्रसाद विमल, पृ.8।
2. प्रदर्शन - अतीत में कुछ - गंगाप्रसाद विमल, पृ.35
3. वही, पृ.36
4. वही, पृ.38

अनादरण करती है । दुर्घटना में किसी के मरने पर भीड तो इकट्ठी होती ही है । लेकिन वे लोग इसकी ओर ध्यान नहीं देते कि वह कितने साल का है ? दुर्घटना कैसे हुई ? आदि । अगर कोई इन सभी मामलों पर ध्यान देता तो उसका कोई न कोई स्वार्थ अदृश्य होता । "प्रिज्म" कहानी में एक नौजवान लड़के की मृत्यु पर एक महिला आकर पूछती है कि उसका उमर क्या है ? जब उसे पता चला कि लड़के का उमर चौबीस साल है तो उसने कहा, "हाय ! भादवान को भी क्या मंजूर होता है । देखो अभी कुछ दिन पहले मेरा छब्बीस साल का लड़का भी भादवान को प्यारा हो गया .... ।"[1] दूसरे को अपने ही समान दु:खी पाकर उसे थोडी तसल्ली मिलती है । क्यों कि "दूसरे का दु:ख अपने अफसोस की तसल्ली बन गया था । किसी का रोना-धोना सुनकर किसी को गन्दा लगता है और बोर होने लगता है । नौजवान का कहना है, "साला रोना भी कितना गन्दा काम है ... ।" .... बोर होने का पूरा इन्तज़ाम किया हुआ है ।"[2] कुछ बूढे लोग इस घटना को लेकर अपने ढंग से कहानी गढने में लगे हुए हैं । वे अपने खानदान के लोगों की मृत्यु सम्बन्धी बौरा प्रस्तुत करते रहते हैं तो किसी लड़के को यह भी पता नहीं है कि अफसोस कैसे प्रकट करना है?और किससे?"मां ने कहा था, तू वहां हो आइयो । पर मुझे तो मालूम ही नहीं कि अफसोस किससे ज़ाहिर करूं ।"[3] मृत्यु पर रोना धोना, अफसोस प्रकट करना सब मात्र रस्में हैं । कोई भावुकता इसमें नहीं है । निराशा एवं निष्क्रियता जब मनुष्य की मुखमुद्रा बन जाती है तो इससे अधिक कुछ प्रतीक्षा की गुंजाइश नहीं है ।

निर्मलजी शहर की भीड एवं उसकी सभ्यता से अवगत है । ग्रामीण जीवन में दया, करुणा, स्नेह भावुकता जैसे मानवीय विकारों को

---

1. प्रिज्म - अतीत में कुछ, पृ.123
2. वही
3. वही, पृ.124

जितना स्थान है वे सब महानगर के खूबसूरत इमारतों के बीच नष्ट हो गए हैं । वात्सल्य, ममता जैसी भावनाओं का स्रोत भी सुख गया है । "बच्चा" नाम्क कहानी में विमलजी इस ओर संकेत देना चाहते हैं । हवेली की किसी मंजिल से गिरकर बच्चा सीधे दालत के बीचों बीच आ गिरा था । बहते खून और बच्चे को उल्टा पडा देख जल्दी ही भीड जमा हो गयी । आस-पडोस के लोग जो वहाँ जमा हो गये थे वे जल्दी ही वहाँ से हट गये । औरतें विलाप करने लग गयी, "वह एक सामूहिक संकीर्तन की स्थिति थी ।"[1] अचानक किसी ने पूछा कि आखिर बच्चा किसकी है ? इतने पर विलाप पर विराम पडा । सब अपने अपने बच्चे ढूंढने निकली फिर दालन में लौट आई । अपने अपने बच्चे को दिखाकर फिर विलाप करने में जुड गयी । अनेक औरतों ने अफसोस प्रकट किया, "पर किसी ने जानने की कोशिश लड्के के मुंह का कपडा नहीं हटाया कि उसकी शक्ल क्या है ? और वह किसका बच्चा है ? डाक्टर को बुलाने या उसे उठाकर कहीं छाया में रखने की सुध जैसे हवेली की उन औरतों में आयी ही नहीं ।"[2] परेश की बीबी के आने पर इन लोगों ने कहा कि कोई बच्चा ऊपर से गिरकर मर गया । घण्टों से पता नहीं चला कि किसका बच्चा है । श्रीमति परेश लेटे बच्चे को देखकर बोली, "मेरा अन्दाज़ा है कि यह सबरी धोबिन का लड्का है ।" भीड में सन्नाटा छा गया । कुलीन और श्रीकान्त किस्म की औरतें जैसे घूंघट के बीच ही नाक-भौंह सिकोड रही थीं । धोबिन के बच्चे के लिए वे नहीं सक सकती थी । फिर उसे छूने का तो सवाल ही नहीं उठता था ।"[3]

---

1. बच्चा - इन्तज़ार में घटना, पृ.53
2. वही, पृ.55
3. वही, पृ.55

मतलब का रिश्ता और इनसानियत का कृष्णपक्ष.

पैसे के लिए मनुष्य कुछ भी करने को तैयार हो जाता है । पैसा मिले तो किसी को भी रिश्तेदार मानने में कोई हर्ज नहीं । मृतदेह के चारों ओर भीड जमा हुआ था । सब अपने-अपने ढंग से अफसोस प्रकट कर रहा था, और अपने आप को किसी न किसी प्रकार उसके रिस्तेदार स्थापित करने का भी प्रयास हो रहा था । यह देखकर किसी बूढे ने कहा "शरम करो । तुम तो बंटवारा करने आये हो जैसे । अरे, जो चाचा-ताए का है वह आगे आये ।"[1] आदमी के मरते घण्टों बीत जाने पर भी लाश उठाने का कोई उन्तज़ाम भी नहीं हुआ । जेब से डयरी निकाली, कर्ज लेनेवालों का नाम पढने लगा । तब किसी वृद्ध ने कहा "छि: छि: क्या वक्त आ गया है । आदमी की लाश पडी है । पर सब लोग तमाशाइयों की तरह उसकी ज़िन्दगी को खोद रहे हैं । जो चीज़ मौत के साथ खत्म हो गई हो, उसे नहीं खत्म कर देना चाहिए ।"[2] जब पुलीस ने पूछा कि इसका रिस्तेदार कौन है ? तब "सारी भीड में सन्नाटा छा गया । धीरे धीरे लोग खिसकने लगे । जब तक अपनी कार्यवाही के सिलसिले में पुलीसवाले कागज़-पत्तर लिखते तब तक सारी भीड न जाने कहाँ खिसक गयी थी ।"[3] तब उस लाश केलिए न कोई रिस्तेदार है नाही कोई दोस्त । सब अपने बचाव के वास्ते वहाँ से खिसक गये ।

स्वार्थी और मतलबी लोग अपने धुन से सब कुछ हासिल करना चाहते हैं । उसे किसी से कोई वास्ता नहीं है । सिर्फ अपने मतलब से होता है । "मैं भी" कहानी स्वार्थी धनवान

---

1. इन्तज़ार में घटना, पृ.11
2. वही, पृ.14
3. वही, पृ.16

लोगों के शोषण के शिकार बने नौजवान की कहानी है । पिता की मृत्यु के बाद गाँव की मुखिया माँ को फुसलाकर नौकरी के लिए उसे ले गये । मुखिया का लड़का जो कोढ की बीमारी से पीड़ित था, उसे उसका देखभाल करना था । इससे इतना ही बताया था कि उसे मामूली चर्मरोग है । सालों की सेवा के बाद जब उसे कोढ की बीमारी हुई तो उसे गाँव से भगा दिया । क्यों कि "कोढवाले को गाँव में रखने का सवाल ही नहीं उठता था । मुखिया की सेवा करने के बावजूद उसने उसका ध्यान नहीं रखा । "पैसेवाले लड़कों का ध्यान सिर्फ मतलब तक होता है । जब तक मैं उसके लड़के की सेवा करता था तब तक मैं बहुत अच्छा आदमी था । जब मुझे यह रोग हुआ तो मैं कोढ़ी साबित हो गया । ..... और यह साबित होते ही गाँव से मैं खदेड दिया गया । फिर मैं भटकता भटकता शहर तक पहूँचा ।"[1]

स्वार्थी एवं मतलबी लोग गरीब लोगों की ज़िन्दगी बरबाद कर डालते हैं । "सड़क पर" नामक कहानी में इसी सत्य का चित्रण हुआ है । सड़क पर बनी भीड के बीचों बीच एक बच्चा पडा है । सेब चुराने के जुर्म में लाला ने उसे खूब पीटा । बाकी लोगों ने भी लाला का समर्थन करते हुए कहा, "साले चोर की तो खूब मरम्मत होनी चाहिए ।"[2] भीड में कुछ लोग लाला के खिलाफ भी बोल रहे थे कोई भी बच्चे का बयान सुनने के लिए तैयार नहीं था । सब चोरी का इलज़ाम कबुल करवाने केलिए लालायित थे । उसे इतना पीटा था कि वह थाम नहीं सकता था । उसे अस्पताल ले गया । पूछने पर लड़के ने बताया कि उसने चार दिन से कुछ नहीं खाया था ।

---

1. "मैं भी" बाहर न भीतर, पृ.११
2. सड़क पर इधर उधर, पृ.8।

यह सुनकर एक बढई ने कहा, "हिन्दुस्तान में यह आम चीज़ है । भूख और फिर बेकसूरों की मौत" ..... कौन पूछता है इन लोगों को" जब उससे पूछा कि फलवाले ने उसे मारा क्यों ? तो उसने कहा कि फलवाला उसके घर की ज़मीन खरीदना चाहता था जहाँ झोंपडी बनाकर वे लोग रहते हैं । वह सिर्फ इतना जानता था, "बडे लोग हैं । और सारी ज़मीन पर, सारी चीज़ों पर उनका हक होना चाहिए ।"[2] घर के सभी सदस्य बडे लोगों के गुलाम थे । गुलामी दूर हुई । सम्पूर्ण भारत स्वाधीन हो गये । मगर खुद स्वाधीन होते हुए दूसरों को गुलाम बनाने की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आया है ।

धन और बल से दुर्बलों पर अधिकार ज़माने की प्रक्रिया अब भी ज़ारी है । इस यथार्थ की ओर कहानीकार ध्यान आकृष्ट करता है ।

जनतांत्रिक व्यवस्था का पोल

स्वाधीनता ने सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया । राजनीति समाज का अटूट हिस्सा बन गयी । भारत को स्वतंत्र बनाने में राजनीति की भूमिका मुख्य थी । पर स्वाधीनता के उपरांत उसने भ्रष्ट रूप धारण कर लिया ।

राजनीति के काले कारनामों ने समाज को बदसूरत बना दिया । समाज के कोने कोने में इसका दुष्परिणाम हम देख सकते हैं । कहने का मतलब यह है कि राजनीति पूर्णत: भ्रष्ट हो गई है । हम राजनीति से इतना जुड गए हैं कि "राजनीति के बिना हम लोगों का मनोरंजन नहीं हो सकता ।

---

1. सड़क पर इधर उधर, पृ.84

और कोई भी सरकार या राजनीतिज्ञ मूर्खतापूर्ण घोषणाएं करें तो यह हम सब लोगों के लिए कितनी मज़ेदार बात हो सकती है ।"[1]

"बदहवास" नामक कहानी में शहर की भीड-भाड में अनदेखा करनेवाले अनेक पीडित प्रताड्ति लोगों का चित्र खींचा है । स्टेशन की सीढियाँ चढते हुए पेशाबघर से सटी हुई खाली जगह में "मैं" ने करीने से सजे पतीले और एक सज्जन सी आकृति देखी । उसके चेहरे पर न क्रूरता थी, न चालाकी और न किसी किस्म का पछतावा, बल्कि उसके चेहरे में आत्मविश्वास से भरी हुई मेहनती गर्व का टटकापन दीखता है । कुछ ही दूरी पर बडे ही दर्दनाक दूसरा दृश्य था । दो फुट के अनन्त विस्तार में गृहस्थी का राजभवन समेटने का दृश्य था । दो फुट में वे ढाबे चलाते थे । "आधा फुट जगह खानेवालों ने घेरी हुई थी, आधा फुट चमचमाते बर्तनों ने बाकी एक फुट में गृहस्थी का राजभवन था ।"[2] उसके एक कोने में बर्तनों से सटे फटी हुई चादर में छोटा सा बच्चा सो रहा था । एक फुट के विस्तार में वह बच्चा बडा होगा और नापेगा अगली शताब्दी के विस्तार ...... ।"[3] शहर के भीड भाड में सेठों, साहूकारों, राजनेताओं और बुद्धि-जीवियों ने उसकी शक्लें कभी भी देखी नहीं होगी । केवल इस बात का आश्चर्य है, "समतावादियों, साम्यवादियों और उदार किस्म के विश्ववादियों की एक बात पर हैरानी होती है कि वे दुनिया - जहान के मामलों में अपनी चिन्ता ही व्यक्त नहीं करते बल्कि अगली पांतों में खडे होकर विरोध में हस्ताक्षर करते हैं और दहाडते हैं । लेकिन उन्होंने भी कभी ऐसे लोग नहीं देखे ।"[4] समाज की इस स्थिति का कारण

---

1. विदर्स - कोई शुरुआत, पृ.152
2. वही
3. वही
4. बदहवास - खोई हुई थाती, पृ.19

केवल राजनीतिज्ञ नहीं है । सामाजिक के नाते हम भी कसूरवार है । सामाजिक के नाते हम सिर्फ इन्तज़ार कर रहे हैं दूसरों द्वारा परिवर्तन लाने का । कोई सक्रिय कदम उठाने केलिए तैयार नहीं होते, "अपने देश में न्याय और अन्याय की जागरूकता ही नहीं वरना "मिसमैनज" करनेवाली सत्ता के खिलाफ न उठ खडे होते लोग । कसूर उनका नहीं, जो लूट रहे हैं - उनका है जो ऐसा होने दे रहे हैं ।"[1] एकता और समता के नारे रटनेवाले इस देश में एकता और समता अपने दर्जे के लोगों तक सीमित रखते हैं । किसी बडे साहब की पार्टी होने पर सड्क साफ साफ होना चाहिए । भिखारी मुल्क के माथे पर कलंक है । इसलिए उसे हटाना ही चाहिए । "मैं भी" कहानी में कोढ की बीमारी से पीड्ति भिखारी ने कहा, "आज शाम पुलीसवाले मुझे यहाँ से उठा देंगे । आखिर सड्क साफ होनी चाहिए । और भिखारी तो मुल्क के माथे पर कलंक है ।"[2]

दरअसल हमारे समाज का अभिशाप शक्तिहीन व्यवस्था ही है । सत्ता पर जब जब शंका होती है तब समाज में आतंकवाद छिड जाता है । क्यों कि पिस्तौल से ही शांति मंत्र निकलते हैं । और उसे आतंकवाद की संज्ञा देते हैं । "इधर उधर" कहानी में इस सच्चाई का ही पर्दाफाश हुआ है । बच्चे की ज़िद की वजह से "मैं" एक खिलौना खरीद लाया था । उसे पिस्तौल का नाम दे सकता था । बच्चे ने खेलने के बाद पिस्तौल "मैं" के हाथ में दिया । तब "मैं" को पुरानी घटना याद आयी । "जुलूस में शामिल हुए बेकसूर लोगों को गोलियों का शिकार होना पडा । गोली लगने पर वे लोग ज़मीन पर ठीक ऐसे गिरे जैसे कोई ट्रक से आटे के बोरे गिराये जा रहे हो । पिस्तौल पर हाथ फिराया तो लगा जैसे वह असली पिस्तौल

---

1. वे आ गये हैं - खोई हुई थाती, पृ·56
2. मैं भी - बाहर न भीतर, पृ·98

बन गयी हो और नकली लफ्ज उछकर राजनेताओं की कलगियों पर टिक गया हो । हमारे राजतन्त्र के तांत्रिक राजनेताओं के हाथों में जो गोलियां है - वे दनादन देश के हर कोने में विरोधियों या जुलूसियों के जिस्म छेद रही है ।"[1]

दूसरी घटना में पुलीस की ज्यादती के खिलाफ थाने के सामने लोग नारे लगा रहे थे । बडे साहब ने थाने के दरवाज़े के पास ही आग लगाने का हुक्म दिया । क्यों कि आग लगाने से ही गोली और आंसू-गैस का हुक्म दे सकते हैं । लोगों के मरने और मारने से उनका कोई वास्ता नहीं है । सिर्फ अपने फायदे केलिए घटना को बढा चढाकर दिखाना ही चाहिए । "पुलीस और कानून इस बारे में सोचा भी न कर । तन्खवा बढवानी है तो जल्दी से हुक्म के मुताबिक आग लगा ।"[2] थोडी देर में लोगों को वहां से हटाने की चेतावनी दे रहे थे । साथ साथ भीड पर इल्ज़ाम भी लगा रही थी । लोग कुछ देर के लिए थोडी दूर हट गये थे । लेकिन फिर लौट आये और नारे लगाना शुरू कर दिये । तब अचानक दनादन गोलियां निकली और अनेकों लोग गिर पडे । अखबारवाले भी काफी फायदेमन्द है । उन्होंने गोलीकाण्डों की खबर अवश्य छपी थी । लेकिन "किसी हद तक अखबार लोगों को जनहत्यारों के प्रशंसकों के रूप में मज़बूत करते हैं । वे गोलीकाण्डों की खबर और दाल-पापड के भाव एक साथ छापते हैं । वे एक साथ नेता के ज़ुकाम की खबर छापते हैं और कहीं अन्दर के पृष्ठों में बीच के किसी छोटे से कालम में खबर छपती है अधिकारों के लिए मरनेवाले तीन सौ नौजवानों की ।"[3]

---

1. इधर उधर, पृ.35
2. वही
3. वही, पृ.37

"उसकी पहचान" नाम्क कहानी में खोखली राजनीति एवं पथभ्रष्ट समाज व्यवस्था का चित्रण किया गया है । पेशेवर नेताओं से भिन्न बातें करनेवाले उन लोगों से लोगों ने सिर्फ यही बताया कि, "हम ठीक आपकी तरह के लोग है । फरक इतना है कि हम अपनी ज़रूरतों के लिए लड रहे हैं । .... आप की और हमारी ज़रूरतें कोई अलग चीज़ नहीं है .... ।"[1] उसने "मैं" से पूछा पूँजीवाद किस आदमी का नाम है ? तो "मैं" ने बताया आदमी नहीं यह एक वर्ग का एक विचारधारणा का नाम है । तब उसने इस पुस्तकीय ज्ञान पर हँसी उडाते हुए कहा यह एक आदमी का ही नाम है । उस आदमी की जिसने चालाकी से सबकी मेहनत का हिस्सा खाने का गुर व्यापारियों को बता दिया है ।

पुस्तकीय ज्ञान पर खिल्ली उडाते हुए उसने सच्चाई पर प्रकाश डाला और कहा पिछले पन्द्रह दिनों से अपनी पगार बढाने के वास्ते काम रोका हुआ है । लेकिन हमारी सरकार को इसकी भूख से कोई ताल्लुक नहीं - फैक्टरी मालिक के दरवाज़े पर पुलीस है, कारखानों में पुलीस । बस, काम्गारों को डराकर अपने वश में करने के तरीके अजमा रहे हैं । उनका कहना है, "पन्द्रह दिन तक दूध के डिब्बे न भी बन पाये तो कोई फरक नहीं पड़ता । क्योंकि डिब्बे का दूध पीनेवाले बच्चे है ही कितने ? अपने मुल्क में करोडों बच्चे भूख से ही सो जाते हैं । असल में वह आदमी जिसका नाम पूँजीपति है उसके फायदे की नज़र की हमारी ट्रेनिंग है ।"[2] अखबार और सरकार हमें जानबूझ कर ट्रेनिंग देते हैं । तभी से "मैं" सब को इसी नज़रिए से देखने का आदी हो गया । सभी वस्तुओं का भविष्य सन्नाटे भरा, निर्जन एवं वीरान दीखता है तो नौजवानों का भविष्य, बेकारी, जुलूस जेलयात्रा, अतिवादियों की संगत और फिर गत्म ....

---

1. उसकी पहचान, पृ.22

2. वही, पृ.25

दिखाई देता है । "मैं" उस आदमी की तलाश में है जिन्होंने उसे ये सब बता दिया था । लोगों की दुर्दशा पर बडे बडे भाषण देनेवाले, मनोवैज्ञानिक तरीके से लोगों के दिल तक पहुँचनेवाले बहुत मिलते हैं । लेकिन यहाँ जो कुछ हो रहा है उसका भविष्य भी बीरान, सन्नाटे भरा एवं अन्धकारपूर्ण है ।

हिन्दुस्तान के नाम पर मर मिटने का ढोंग भी बढ रहा है । इसलिए "क्रिकट मैच में" हिन्दुस्तान हार गया" सुनने मात्र से कहनेवाले के गला पकडकर अपना देश प्रेम ज़ाहिर करना नहीं भूलता । "अभी मैच तीन दिन और है, और तुम कहते हो हिन्दुस्तान हार गया ।" समाज की समस्याओं को नए सिरे से देखकर उसका पक्षपाती होना वे खूब जानते हैं । अपने फायदे के लिए दूसरा खूबसूरत तरीका निकालना इनका कार्य है । इस प्रकार विमलजी ने मानवीय सम्बन्धों में स्वार्थता को जो अनुचित स्थान मिल गया है उसका चित्रण कहानियों के माध्यम से करने का कार्य किया है ।

अकेलेपन के महाशून्य से पीडित व्यक्ति

द्वितीय महायुद्ध के बाद सम्पूर्ण जगत में अजीब उदासी एवं बेगानेपन का वातावरण छा गया । मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रति भयभीत और शंकित होने लगा । आदमी अपने आप को खोखला एवं शून्य महसूस करने लगा । समसामयिक हिन्दी साहित्य में भी मनुष्य की अस्तित्वहीनता और रिक्तता की अनुभूति को ईमानदारी के साथ उजागर किया है । बीसवीं शताब्दी में व्यक्ति की प्रमुख समस्या केवल रिक्तता नहीं । उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि वे चाहते क्या हैं ? अपनी ही अनुभूति उन्हें स्पष्ट नहीं होती ।

---

1. उसकी पहचान, पृ.30

आजकल मनुष्य अपने लिए नहीं समूह के लिए जीने को विवश है । इसलिए व्यक्ति अपनी आन्तरिक प्रेरणाओं से निर्देशित या चालित न होकर दूसरों से या समूह से निर्देशित है ।

विमलजी की कहानियों में अनस्तित्व की व्यथा भोगने-वाले बहुत सारे पात्र दिखाई देते हैं । वे अपने अस्तित्व की तलाश में है । "प्रेत" कहानी में आदमी की अस्तित्वहीनता तथा अस्तित्व की तलाश को उजागर किया गया है । रात को "मैं" जब अपनी नौकरी से लौट आया तब बीबी सो रही थी । हडताल के कारण पोस्टमैन रात में ही पत्र बांटा था । जब "मैं" ने खत को बार-बार उलट पुलट कर देखा, "उस खत में लिखा था कि "मैं" प्रेत हूँ और मुकन्दीलाल नामक आदमी के रूप में रह रहा हूँ । अगर यह सच नहीं है तो मैं अपने को मुकन्दीलाल साबित करूँ, कम से कम कोई तो बताये कि "मैं" ही मुकन्दीलाल हूँ ।"[1] इसी बीच बीबी नीद में "भूत भूत" चिल्ला रही थी । अगले दिन "मैं" ने खत रास्ते में छोड दिया । मैं उस खत से और उसके बयान से छुटकारा पाना चाहता था । अगले दिन घर पहुँचा तो काफी देर हो चुकी थी । दरवाज़े पर "पोस्टमैन" मिला । वही पुराना खत जिसे गन्दे नाले के पास छोड आया था । तब पत्नी ने कहा "आप के दफ्तर के खन्ना साहब आये थे .... आप की तारिफ कर रहे थे । कह रहे थे भाई मुकन्दी-लाल तो भूत की तरह काम करता है ।"[2] उस रात टूटी टूटी नींद में उसे तरह तरह के सपने आए । "मुझे लगा अगर मैं सचमुच मुकन्दीलाल नहीं हूँ, तो इस औरत जिसके साथ पति की हैसियत से रह रहा हूँ, के मन में क्या कुछ करने की आग नहीं जागेगी ।" इसके बाद "मैं" ने अपने आपको मुकन्दीलाल साबित करने की यात्रा शुरू की ।

---

1. प्रेत - अतीत में कुछ, पृ.134
2. वही, पृ.135

शहर जाकर "म्युनसिपल कमेटी", एवं पुलीस की कागज़ात खोलने की कोशिश की । इससे इतना ही स्थापित हुआ कि 20 सितम्बर को कोई आदमी किसी दुर्घटना में मरा हुआ है । "यह कितनी विचित्र बात है कि मैं मुकन्दीलाल होकर भी अपने बारे में निश्चित नहीं हूं । एक छोटे से खत ने मुझे बेहद परेशान कर रखा है । पर जाने क्यों ..... मैं सोचता हूं कि कहीं यह सच नहीं हो सकता ..... ।"[1] अपने आप को मुकन्दीलाल स्थापित करने के लिए उसने भरसक कोशिश की ।

पर "हर तरफ से हार कर मैं ने फैसला किया कि मैं वह खत जला दूंगा ।"[2] अपने अस्तित्व की तलाश में हारकर, अस्तित्व हीनता की व्यथा भोगते हुए प्रेत के समान ज़िन्दगी बिताने के लिए वह विवश बन जाता है ।

रिक्तता के साथ साथ निर्णय क्षमता का अभाव ने भी मनुष्य के जीवन को विडम्बनाग्रस्त बना देता है । आदमी अनिश्चितता के बीचों बीच पडा हुआ है । उन्हें स्वयं मालूम नहीं है कि वह क्या चाहता है ? "एरीना" ऐसी विडम्बनाग्रस्त ज़िन्दगी की कहानी है । इस कहानी की शुरूआत ही अनिश्चय में है, "मैं ने उसे तार दिया था कि वह आ जाए । मैं नहीं जानता था क्यों ? शायद यों ही मज़ाक में या बेहद उकताहट से बचने केलिए ।"[3] मैं ने उसे आज की खास खबर को सुनाना चाहा । और पूछा, तुम्हें शायद पता नहीं कि आज यहां क्या हो गया है । उसने कहा, "किसी चीज़ के होने-न होने में मेरी दिलचस्पी खत्म हो गई है । आधुनिक मनुष्य इतना सीमित एवं संवेदनाहीन हो गया है कि किसी चीज़ के होने न होने में कोई दिलचस्पी नहीं है । इतना ही नहीं वह जो कुछ भी करेगा

---

1. प्रेत - अतीत में कुछ, पृ.136
2. वही
3. एरीना - कोई शुरू आत, पृ.137

निरूद्देश्य ही होगा । इधर उधर घूमने जाने का भी कोई उद्देश्य नहीं है, "मैं ने निश्चय किया कि अब हम दोनों काफी देर तक निरूद्देश्य घूमेंगे । वैसे मुझे याद नहीं है मैं कब किसी उद्देश्य से घूमा हूँ । मुझे अकसर उन लोगों पर आश्चर्य होता है जो निश्चय उद्देश्य से घूमते हैं ।"[1] हम इतना सिकुड गए हैं कि हमें किसी दूसरे के संग रहने से गुलामी महसूस होने लगे हैं । व्यक्ति इससे मुक्त होने के लिए लालायित है । "मैं ने उससे ज्यादा पूछने की कोशिश नहीं की । जब वह चला गया तो मुझे लगा मैं कुछ देर के लिए मुक्त हो गया हूँ ।"[2] व्यक्ति के अनिश्चय एवं खोखलेपन का चित्र इस कहानी में बहुत ही सहजता के साथ उकेरा है ।

"मैं" के मन में अपने अस्तित्व के प्रति अचानक शंका उत्पन्न होती है । शंका कभी डर में परिणत होती है । वह अपने अस्तित्व के ऊपर काला धब्बा लगाने लगती है । उन काले धब्बों को ढोते हुए जीवन बिताने के लिए अभिशप्त मानव जीवन का ही चित्रण है "अभिशाप"। "मैं" नाई के यहाँ जाता है । वहाँ भीड होने के कारण वह पास की दूकान से चाय पीने लगता है, जहाँ "मैं" को कोने में किसी आदमी के बैठने का भ्रम होता है । बेचारे से पूछने पर पता चलता है कि उस कोने में ही क्या पूरी दूकान में भी कोई दूसरा ग्राहक नहीं है । फिर नाई के दूकान पर शीशे में "मैं" को कभी कभी अपना चेहरा विकृत दिखाई देता है तो कभी किसी दूसरे के भयावह और क्रूर चेहरे का भ्रम होता है । कभी नाई की कैंची गायब हो जाती है तो कभी कंघी और कभी उस्तरा । आतंक से "मैं" की चीख निकलने को होती है और भय से मुट्ठियाँ बन्द जाती हैं । वह बोल नहीं पाता था बच्चे की सहायता से "मैं" नाई के लिए पैसा निकालता है । फिर उसे

---

1. एरीना - कोई शुरू अंत, पृ.137
2. वही

यह भय सता रहा कि कहीं बन्द मुट्ठियां कोई दूसरा न देख ले "मेरी मुट्ठियां बन्द थी । मुझे लगा कहीं लोग मेरी बन्द मुट्ठियों की तरफ न देखने लगे । बाहर जाने पर "मैं" ने हाथ पैंट की जेब में डाल दिया ।"[1] घर जाते हुए मैं इसके प्रतिविन्तित था, "अगर मेरी मुट्ठियां नहीं खुली तो ताला कैसे खुलेगा यह सोचते हुए मुझे पसीना आ गया । मैं ने सोचते सोचते अपनी चाल तेज़ कर दी । मेरी मुट्ठियां अब भी बन्द थीं । बुरी तरह बन्द ।"[2] अपने अस्तित्व के प्रति ही नहीं हर हरकत के प्रति आधुनिक मानव शंकालु है । अस्तित्वहीनता के बोध में पड़कर शंकालु एवं भयभीत होकर जीवन बिताने केलिए आधुनिक मानव विवश है ।

आदमी अपने को तलाशते हुए अपने आप को भूल जाता है और कभी अपने नाम तक को । "तलाश" कहानी इसकी ओर संकेत करती है । "मैं" उस आदमी की तलाश में निकला जिसे बहुत साल पहले सस्ते होटल में देखा था । उससे सम्बन्धित सब कुछ भूल गया था । पर वह इतना ज़रूर जानता था कि उसे अपने सामने पा सकता है । जाते वक्त उसने पता दिया था । अभी उसके ही शहर में था । किसी घर का दरवाज़ा खडखडाया । "मैं" अपने शहर का नाम लेते ही उसने रोते चिल्लाते हुए युद्ध से न लौटे "नरवीरा" का नाम लिया । फिर एक बूढे आदमी से उसका पता पूछा । बूढ़े ने अपना सिर खुजलाया । फिर एक मिनट ठहरने के लिए कहकर गली के किसी घर के अन्दर घुस गया । थोडी देर बाद वह लौट आया और उसका नाम दुहराया । कुछ लोग यह कहते हुए हँसने लगा कि "आप गलत शहर में तो नहीं आ गये । तभी ठीक वह आदमी सामने से आया । मैं ने सोचा कि वह उसको पहचान लेगा । पर उसने पूछा "अच्छा तो आप उसके

---

1. एरीना - कोई शुरू आत, पृ.147
2. अभिशाप कोई शुरूआत, पृ.17।

मिलना वाहते हैं । फिर से वह पूछ रहे थे कि कहीं आप गली तो नहीं भूल आये ? फिर अपनी उस मुद्रा में कहा जिससे मैं उसे जानता था, "ऐसे आदमी अक्सर चोर किस्म के होते हैं - उचक्के या जेबकतरे ।"[1] उसकी हर बात से यह स्थापित हो रहा था कि वह वही आदमी है जिसकी वह तलाश कर रहा था । "मैं" ने कहा कि अगर आप अपना नाम याद करेंगे तो मामला सुलझ जायेगा । उसने बताया कि आप मामला बताइए नाम फिर याद कर लूंगा । तब "मैं" ने पूछा आप का नाम क्या है ? "ठहरिए । मैं नाम भी याद कर लूं हालांकि "मैं" नहीं भूलता पर मेरा खयाल है ..... वह याद करने के लिए गली के एक तरफ बैठ गया ।"[2]

आदमी अपने आप को, अपनी अस्मिता को ही भूल जाते हैं । कभी कभी याद दिलाना पडता है । वह खुद की तलाश में भटकता रहता है । कहीं भी नहीं पहुँच पाता ।

परिवर्तन की प्रतीक्षा आधुनिक जीवन की प्रेरक शक्ति है । कुछ भी न हो फिर भी अपने आप को धोखा देते हुए प्रतीक्षा करना आधुनिक मनुष्य का सबसे बडा कार्य है । विडम्बना यह है कि उसे खुद मालूम नहीं है कि वह किसकी प्रतीक्षा कर रहा है । विमलजी आधुनिक जीवन की इस विडम्बना को पहचाना है । "दिप्पी के साथ उसकी मुलाकात को एक अरसा हो गया । पर वह अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या मुलाकात सचमुच पुरानी हो गई । जब भी वह उसे मिलता है उसे लगता है जैसे दूसरी बार मिल रहा हो, जैसे दूसरी बार मिलकर वह कोई नई शुरूआत करना चाहता हो । पर हर बार कुछ न कुछ ऐसा हो जाता है कि बातें बीच में ही रह

---

1. तलाश - बाहर न भीतर, पृ.44
2. वही

जाती है । अधूरी बातें और कुछ खास बातें हमेशा के लिए टल जाती है ।"[1]
"हर बार उसे लगता है कुछ नई शुरूआत होनेवाली है, हर बार .... ।"[2]
हर दिन इसी प्रतीक्षा में रहता है कि सब कुछ नये सिरे से शुरू करेंगे । लेकिन प्रतीक्षा अर्थहीन रह जाती है, "दिन भर शाम की प्रतीक्षा करता हूँ और जैसे ही शाम हो जाती है मुझे महसूस होता है शाम की प्रतीक्षा गलत की थी । और यह क्रम चलता रहता है । शायद ऐसा चलता ही रहेगा ।"[3] प्रतीक्षा एवं प्रतीक्षा की व्यर्थता ने मानव को विडम्बनाग्रस्त बना दिया है । 'बीच की दरार' नाम्क कहानी का भी मूलस्वर प्रतीक्षा एवं तनाव है । बर्फ गिर रही है । इसी वजह से सब परेशान है । कोई बाहर नहीं जा सकता । बाजी कई दिनों से घर नहीं लौटे । बाहर गए हुए थे । माँ उसकी प्रतीक्षा में है । कभी कभी बच्चे को पोस्टोफिस भेजते हैं । कभी डाकिये से पूछते हैं । कोई भी पत्र नहीं मिला । पोस्टमास्टर ने बताया था कि यहाँ से दो मील दूरी पर घोडा और घुडसवार बर्फ में दबे पडे हैं । घुडसवार के कुछ हिस्से बाहर दिखाई पडते हैं और कुछ हिस्से घोडे के भी । यह खबर पाकर सब लोग वहाँ पहुँचते हैं । सुबह तक इन्तज़ार करने के बाद माँ ने बताया "वह कोई गरीब आदमी था गाँव का "अब वह कहीं नहीं है ।"[4] बर्फ में ढके पर्वतीय इलाके में कई दिनों से बाजी का इन्तज़ार करने और उससे न मिलने से उत्पन्न तनाव सम्पूर्ण कहानी में व्याप्त है ।

---

1. कोई शुरूआत, पृ.13
2. वही, पृ.14
3. वही, पृ.13
4. बीच की दरार - कोई शुरूआत, पृ.206

जड़ से उखड़े हुए लोगों की कराह ध्वनि

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण आज पारिवारिक रिस्ते टूट रहे हैं । धर्म, समाज, एवं नैतिकता के मानदण्ड भी तेज़ी से विघटित होकर नया रूप प्राप्त कर रहे हैं । भारतीय जीवन में परिवार, धर्म, प्रेम और सामाजिक आचरण की मर्यादाएँ अनिश्चित हो गयीं । पारिवारिक सम्बन्धों के परम्परागत मानदण्डों में बदलाव आ गया है । "शीर्षहीन" कहानी के "पिता और पुत्र" के बीच का सम्बन्ध इसके लिए उदाहरण है । पुत्र अपने पिता को सिर्फ पैसे भेजनेवाले के रूप में पहचानता है, "मैं इतना जानता हूँ कि होस्टल में प्रतिमास एक निश्चित रकम भेजनेवाला व्यक्ति मेरे पिता है और कभी कभी मुझे मिलने आनेवाला एक गम्भीर आफीसरनुमा आदमी मेरा पिता है ।"[1] पिता के आने का समाचार सुनकर पुत्र खुश नहीं होता । लेकिन पिता के आ जाने पर दोनों पिता और पुत्र स्वतंत्रता की अपना दायरा बनाते हुए दो मित्रों की तरह रहते हैं । "मेरे अंतरंग परिचितों को छोड़कर बाकी परिचितों को यह भी पता नहीं कि कोई ऐसा आदमी, जो मेरे साथ रहता है, मेरा पिता है ।"[2]

पिता भी परम्परागत पिता की अनुशासन प्रियता से बिलकुल मुक्त नवीन दिवारधारा से ओतप्रोत है । इसीलिए पिता अपने नए सौन्दर्य बोध के आधार पर पुत्र से मिलने आयी लडकियों में अधिक सुन्दर लड़की को अन्दर भेज देते हैं । उसके जाते समय पिता ने कहा, "तुम इन्हें बाहर तक छोड आओ ।" पिता नियमित रूप से पीते थे । इसमें कोई छिपाव नहीं था । पिता के मित्र के आने पर उसने कहा, "आओ यार तुम भी पियो" । शायद उसे पता भी

---

1. शीर्षहीन - कोई शुरूआत, पृ.102
2. वही, पृ.103

नहीं था कि वह उसका पुत्र है । पिता ने सहमति दे दी । तीनों मिलकर पीने लगे । नैतिकता के बदलते आयामों का चित्र विमलजी ने यहाँ ठीक से उकेरा है । उसी प्रकार पुत्र पिता के भूतपूर्व प्रेमिका से मिलकर उसके सौन्दर्यबोध के प्रति अवश्य प्रभावित हो उठता है । वह यह भी सोचता है अपनी "तलाकशुदा" "बास" को अपने पिता को तोहफे में देगा । पुत्र इसमें खुश है कि पिता-पुत्र होते हुए भी, "दोस्तों की तरह एक दूसरे से मिले भी रह सकते हैं और अलग भी रह सकते थे । आप मुझे माफ करेंगे, मैं सोचता हूँ वे जो मेरी "बास" है न, वे जो तलाकशुदा हैं, मिसेज़ नहीं, मिस सी अपने पिता के तोहफे के रूप में उन्हें भेंट कर दूँ ।"[1] पारिवारिक सम्बन्धों एवं नैतिक आचरणों के बदलते सन्दर्भों को बडी सहजता से यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

नवीन परिस्थितियों ने नवीन चिन्तन प्रणाली को जन्म दिया । परम्परागत वस्तुओं के प्रति उनके मन में कोई दिलचस्पी नहीं है । उनकी संवेदना में बदलाव आ गया है । "वे आ गये हैं" कहानी में बदलती संवेदना के साथ परम्परागत रूप की तुलना देख सकते हैं । अय्यर जैसे लोगों के लिए गुलदस्ते के फूल मन्दिर में देव-मूर्तियों पर अर्पित किए जानेवाले फूल की तरह पवित्र लगते हैं । और नरगिस एवं जैसमिन के बीच गेंदे के फूल ऐसे लग रहे हैं जैसे विलायती पोशाकों के बीच साडी और बिन्दीवाली दक्षिण भारतीय अभिनेत्री है । इसी गुलदस्ते को ही परजीत ने खोल डाला था । बात ही बातों में एक एक फूल तोडने लगा था । परजीत एक फूल हाथ में लेकर मोहिन से लिली को देने के लिए कहते हैं । मोहिन के लिए यह "स्टुपिडिटी" मात्र था । आज के मनुष्यों की भावुकता को प्रकट करने की शक्ति इन फूलों में नहीं है । उसका कहना है, "फूल किसी वक्त में आदमी की भावुकता का सहारा था, आज नहीं । जानते हो यह क्या है कुछ तत्वों का निर्माण । तुम ने चाँद पर कविताएँ पढ़ी है । मनुष्य

---

1. शीर्षहीन - कोई शुरुआत, पृ. 111

जाति के अज्ञान का इतिहास है वह ।"[1] विज्ञान ने यह स्थापित कर दिया है कि चन्द्रमा भी पर्वत एवं पत्थरों वाला "उपग्रह" मात्र है । फूलों की सुगन्ध और खूबसूरती युवाओं के मन को तसल्ली नहीं देती । उनकी भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति इनमें नहीं है । इसलिए सब कुछ "स्टुपिड" लगता है । ज्ञान विज्ञान ने तर्क बुद्धि को जन्म दिया । बौद्धिकता ने संवेदना एवं विचारधारा को ही बदल डाला ।

पारिवारिक विघटन के इर्द गिर्द घूमते व्यक्तित्व

पारिवारिक मूल्य भी बदल गए हैं । मूल्य परिवर्तन ने पारिवारिक गठन को चकनाचूर कर दिया है । सम्बन्धों की घनिष्ठता नष्ट हो गयी है । इन सभी के दुष्परिणामों का शिकार असल में बच्चे ही हैं । "निर्वासित" कहानी में इस प्रकार की परिस्थिति का ही उल्लेख है । छह या सात साल का लड़का "मैं" के घर के बाहर खड़ा था । उसमें कोई असाधारण चीज़ थी । उसके चेहरा की घनी उदासी मामूली नहीं थी । जब "मैं" बच्चे से बातें करता है तब पता चलता है कि बच्चा अपने माँ-बाप से तंग आकर घर से भाग आया हुआ है.। वह अपने घर का सबसे छोटा है । वह घर जाना नहीं चाहता । उसका विश्वास है कि वह अपने पापा के लिए फालतू है । वे हमेशा उसे कहीं चले जाने को कहते थे । पापा-मम्मी में रोज़ लड़ाई होती है । उस बच्चे के लिए पुलिस और पापा में कोई फरक नहीं है । मेले में बच्चों को ले जाना उसके अनुसार बहाना मात्र था । उसका कहना है, "इस बार मेले में वे हम सब बच्चों को इस बहाने से ले गये थे कि यह उनकी शादी की सत्रहवीं साल गिरह है । और वहाँ पापा ने मुझे जीप गाड़ी से धक्का दे दिया था ।"[2] बच्चे के मन में माँ-बाप के

---

1. वे आ गये हैं - खोई हुई थाती, पृ.52
2. निर्वासित - इधर उधर, पृ.47

प्रति सिर्फ डर एवं घृणा की भावना है ।

परिवर्तित जीवन परिस्थितियों में सम्बन्धों की घनिष्ठता ही नहीं बदली बल्कि परम्परागत रूढियाँ भी तोड दी गई । पति के जुर्म चुपचाप सहनेवाली नारी के स्थान पर पत्नी के व्यवहार से तंग आकर घर से भाग जानेवाले पति भी आजकल कम नहीं है । लेखक की "सिद्धार्थ का लौटना" नाम्क कहानी में इसका ही चित्रण हुआ है । सिद्धार्थ एक मामूली आदमी है । जो अपने दबदबे और खूंखार स्वभाव के कारण घर से भाग खडा हुआ था । वह तो तलाक नहीं ले सकता था और न ही उसके पास अपनी पत्नी के सामने विरोध करने की हिम्मत थी । सिद्धार्थ ने अपनी पत्नी मोना के नाम कोई पत्र भी नहीं लिखा था । वह रातों रात चला आया । सुबह होते ही मोना हाँफती हुई "मैं" का घर पहुँचा । मैं उन दोनों के साथ एम·ए· में पढा था । मोना ने बताया सिद्धार्थ रात को कहीं चला गया । वह रोने और चिल्लाने लगी । उसे शंका है कि किसी ने उसे छिपाकर रखा है । उसने चार पाँच लोगों का पता बताया । लेकिन वह कहीं भी नहीं था । कुछ दिन केलिए मोना रोते बिलखते लोगों को धमकियाँ देती फिरी । फिर वह भी चुप हो गयी । कई दिन बाद बंबई के फिल्म कम्पनी से मोना उसे पकडकर लायी, "मोना ने जूडे में फूल खोंसे हुए थे और सिद्धार्थ ने एकदम नया चमचम सूट पहना हुआ था ····· वह कमज़ोर आदमी की तरह हँसने लगा ।"[1] वह जिससे मुक्ति चाहकर भागा था वापस उसके ही वश में पड गया । हताशा, निराशा, एवं कमज़ोरी के बावजूद भी उसे हँसना ही पडता है ।

1· सिद्धार्थ का लौटना - इधर उधर, पृ·7।

जाहिर है विमल की कहानियाँ समसामयिक जीवन - यथार्थ की विविधताओं को उनकी पूरी वास्तविकता के साथ अपने में समेटी हुई है । समसामयिकता के साथ सार्थक संघर्ष ही इस रचनात्मक उपलब्धी में विमल के लिए सहायक रहे हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विमल का सृजनात्मक साहित्य

पांचवां अध्याय

रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विमल का सृजनात्मक साहित्य

रचना प्रक्रिया का सम्बन्ध वस्तुत: रचना के अभिव्यक्ति पक्ष से है । रचनाकार का सृजन क्षेत्र विभिन्न विषयों से सम्पृक्त होता है । ये विषय उसका भावपक्ष है । भाव को अभिव्यक्त करने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया जाता है वे सब संरचना पक्ष या शिल्प पक्ष हैं । भाव पक्ष तथा संरचना पक्ष के विशेष संयोग से रचना पूर्ण बनती है । याने ये दोनों पूरक तत्व हैं ।

रचना की सफलता उसकी अभिव्यक्ति की कुशलता पर निर्भर है । कुशल शिल्पी ही रचना का सार्थक संप्रेषण कर पाता है । यह उसकी प्रतिभा एवं निपुणता पर निर्भर है । शिल्प-विधान विषय के अनुरूप बदलता रहता है । पर बदलाव के बावजूद परम्परा के सूत्रों से सर्वथा पृथक भी नहीं होता । स्वाधीनता परवर्ती रचनाओं के शिल्पविधान में बहुत बड़ा परिवर्तन नज़र आता है । क्यों कि नये रचनाकारों की प्रतिभा का निखार सबसे पहले नए शिल्परूपों में अभिव्यक्त होता है ।

भावपक्ष को सूक्ष्मता एवं भाव गंभीरता के साथ पाठकों तक पहुँचाना ही शिल्प पक्ष का कार्य है । बदलते मूल्यों एवं जीवन दृष्टियों को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करने केलिए नए शिल्परूपों की अनिवार्यता है ।

इसलिए साहित्यिक विधाओं का शिल्प हमेशा बराबर नहीं रहता । परिस्थिति के अनुरूप यह निरंतर परिवर्तित होता ही रहता है ।

प्रत्येक युग के लेखक अपनी प्रतिभा के अनुरूप शिल्प में नए नए प्रयोग करते हैं । परिणामत: रचना प्रक्रिया के नूतन आयाम खुल जाते हैं । बदलते मानमूल्यों परिस्थितियों एवं संवेदनाओं के अनुरूप शिल्प का निरन्तर नवीन रूप धारण करना अनिवार्य भी बनता है । कविता हो या कथा साहित्य, नाटक हो या निबन्ध सृजन की सभी विधाओं में परिवर्तन का नैरन्तर्य हम देख सकते हैं ।

प्रत्येक युग के रचनाकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की अपेक्षा नई संवेदना को लेकर रचनारत होते हैं । विषय की नवीनता उन्हें अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए विवश करती है । लेखक इसके प्रति सतर्क भी रहता है कि अपनी रचना नवीन हो तथा उसकी अभिव्यक्ति प्रक्रिया के साधन भी अपने आप में नूतन हो । नवीन विषय परम्परागत ढाँचे में ढलता नहीं ।

हिन्दी कविता के संरचना-स्तर

हिन्दी कविता की विकासयात्रा यह साबित करती है कि कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर वह निरंतर प्रयोग के पथ पर अग्रसर है । सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत द्विवेदीयुगीन कविता मुख्य रूप से इतिवृत्तात्मक थी । वहाँ परम्परागत संस्कृत काव्य रूढ़ियों का पालन अवश्य होता रहा । अलंकार एवं छन्द से आबद्ध कविता का ही सृजन हुआ । अभिधात्मक भाषा का ही प्रयोग किया गया । इसके उपरान्त भी छायावादी कविता में वैयक्तिकता का ही स्वर प्रमुख रहा । छन्दों के बन्धन से कविता को मुक्त किया गया ।

अत्यन्त सूक्ष्म लाक्षणिकता से युक्त भाषा का ही प्रयोग होता रहा । संस्कृत के क्लिष्ट पदों का प्रयोग इस समय अदृश्य हुआ है । प्राचीन एवं नवीन अलंकारों का प्रयोग हुआ ।

प्रगतिवादी दौर में कविता फिर से समाजोन्मुखी हो गयी । यह काव्यधारा मार्क्सवादी विचारधारा से ओत-प्रोत थी । प्रगतिवादी कविता के पाठक जनसाधारण थे । अत: इसमें जन-भाषा एवं सरल शैली का प्रयोग किया गया । साहित्य की प्राचीन रूढियों को तिलांजली दी गई । "तारसप्तक" के नवीन विचारधारा के कवियों ने नए नए प्रयोगों पर अधिक बल दिया । घोर वैयक्तिकता का ही प्रतिपादन इनकी रचनाओं में हुआ । रूढ काव्यांगों के स्थान पर नवीन प्रतीकों एवं उपमानों का प्रयोग हुआ । अपने विचारों को अभिव्यक्ति देने केलिए पर्याप्त शब्दावली की खोज तथा पुराने शब्दों में नये अर्थ भरने का प्रयास भी हुआ । धीरे धीरे प्रयोगवादी कविता नयी कविता में परिणत हो गयी । व्यक्ति और समाज दोनों का सामरस्य हुआ । व्यक्ति और समाज के यथार्थ को चित्रित करने के लिए रूढ परम्परा का निषेध एवं नवीनता का वरण करने लगे । नवीन भाषा, प्रतीक एवं उपमानों की तलाश ज़ारी रही । परवर्ती कविता में हम कविता के इस विकसित स्वरूप ही देखते हैं । समसामयिक जीवन की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को चित्रित करने के लिए नए प्रयोग सार्थक भी ठहरते हैं । विमलजी का काव्य भी इस नएपन की खोज का सही दस्तावेज़ हैं ।

विमल के काव्य में बिम्ब

कवि अपने अनुभूति विचार एवं भाव को पाठकों तक सार्थक ढंग से पहूंचाने के लिए कुछ तत्वों का उपयोग करता है । उनमें प्रमुख है बिम्ब । अनुभूति के सार्थक संप्रेषण के लिए बिम्ब की अपनी महत्ता है ।

इन्द्रियबोध को भाषा में ढालने के लिए बिम्ब अनिवार्य हैं, "बिम्ब काव्य भाषा की तीसरी आँख है, जो मात्र गोचर ही नहीं किसी अगोचर रूप को एक ओर कारयित्री और दूसरी ओर भावयित्रीभाषा के लिए उपलब्ध करती है ।"[1] कवि अपने विचारों के संप्रेषण केलिए बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग करता है । बिम्बात्मक भाषा ही कविता की भाषा को दार्शनिक एवं तथ्यात्मक भाषा से अलगाती है । बिम्बों से काव्य की गहराई भी निर्धारित होती है । बिम्ब के माध्यम से कवि पाठकों के मन में मूर्त चित्र प्रस्तुत करता है । विमल ने बिम्बात्मक प्रस्तुतीकरण में काफी सजगता दिखाई है । उन्होंने तरह-तरह के बिम्बों के माध्यम से पाठकों के सामने विभिन्न भावों को बडी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है । आधुनिकता के मोह में पडकर विनष्ट होनेवाले अतीत पर कविवर्य दु:ख प्रकट करता है,

"नदी बाहों में टूटता होगा
अन्तरीप
इस नीले आकाश के नीचे
सघन देवदारू वनों में नीले फूल चुनते
किसी के हाथों में
टूटा होगा अतीत ।"[2]

यहाँ समुद्र और लहरों के अटूट संबन्ध के माध्यम से मानव जीवन में अनिवार्य रूप से वर्तमान शून्य की ओर इशारा करता है । चाहे जीवन को समझने और समझाने का जितना भी प्रयास क्यों न करें पर यह सच निकलता है कि जीवन को पूर्णत: समझना असंभव है ।

---

1. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ.10
2. अतीत - विजप, पृ.28

"दोनों छोरों पर
दो हथेलियाँ लपकती हैं
समुद्र मुचडे कागज़ की तरह
अनेक तह बदलता है
अनपढा रह जाता है लगातार
एक अर्थहीन शून्य ।"[1]

समय की गतिशीलता एवं कालचक्र के भ्रमण को सूचित करने वाला यह बिम्ब सहज एवं मनोरम है । गति रूपी दानव समय का हस्ताक्षर एकत्र कर रहा है । बच्चों के आल्बम भरने केलिए बीच-बीच में होनेवाली घटनाओं का चित्र खींच रहा है ।

"गति का दानव
इकट्ठे कर रहा समय के हस्ताक्षर
इकट्ठे कर रहा घटनाओं के चित्र
बच्चों की "अल्बम" पूरा करने
चीखता है ।"[2]

आधुनिक विसंगत परिस्थिति में जीनेवाले मानव की यातनाओं को यहाँ बिम्बित किया गया है । सामाजिक विडम्बनाओं को पूरी समग्रता के साथ चित्रित करनेवाला बिम्ब है यह ।

"आदमी को निगलते भवन
चूमते
पिचर प्लॉट की तरह पूरे के पूरे नगर
रास्तों पर मरे हुए कीडे
और अधमरे - अपनी कैंचुल संभाले हुए ।"[3]

---

1. इतिहास - विजय, पृ.10
2. अशमित - विजय, पृ.13
3. वही, पृ.12

प्रकृति का मानवीकरण कवि के लिए इष्ट विषय रहा है । यहाँ विमल प्रकृति के एक मनोरम दृश्य का मानवीकरण करते हैं । घाटियों के रंग बिरंगे फूलों को देखकर कवि को लगता है कि कोई अज्ञात हाथ उगते सूर्य को प्रणाम करने के लिए घाटी के फूलों को द्वार पर बिखेर रहा है ।

"घाटियों के फूलों को
द्वार-द्वार बिखेर कर
उनन्हें हाथों ने कैसे किया होगा
उगते हुए सूर्य को प्रणाम ।"[1]

कम शब्दों में बहुत कुछ कहने की क्षमता बिम्बों में हैं । विमल जी के बिम्ब इसके लिए स्पष्ट प्रमाण हैं । आधुनिक जीवन के यथार्थ को बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत करने का उनका प्रयत्न सफल निकला है । इसलिए विमलजी के बिम्ब आधुनिक जीवन के बहुआयामी सन्दर्भों को गहराई से प्रस्तुत करनेवाले ठहरते हैं ।

प्रतीक

कवि की अनुभूति एवं चिन्तन को सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि प्रदान करनेवाला तत्व है प्रतीक । आधुनिक कविता में प्रतीकों का प्रयोग बडी मात्रा में हुआ है । भौतिक जीवन के तात्कालिक मूल्यों से सम्बद्ध विषयों को अभ्यन्तर व्यंजना के माध्यम से जीवन के चिरन्तन मूल्यों की ओर अग्रसर करने केलिए प्रतीकों की बडी उपयोगिता है । कवि की अनुभूति के साथ साथ पाठकों की अनुभूति को भी प्रखरता

---

1. अज्ञात - विजय, पृ.15

प्रदान करने में प्रतीकों की अपनी महत्ता है । बिम्बों के समान प्रतीक भी भाव संप्रेषण का सशक्त माध्यम है । हिन्दी कविता में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग अधिक है । आधुनिक परिस्थिति एवं जीवन की जटिलता ने काव्य विषय को बहुत कुछ बदल दिया । इसलिए आधुनिक सन्दर्भ में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग वर्तमान जीवन की जटिलता को उजागर करने के लिए किया गया है ।

आधुनिक समाज के विडम्बनाग्रस्त परिवेश को, वहाँ के यातनाग्रस्त मनुष्यों को विमलजी प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं । "सर्प गुफाओं" के माध्यम से सामाजिक भीषणता को प्रस्तुत किया है, तो "मुझे फेंक दिया" में अयाचित जीवन जीने के लिए अभिशप्त परिस्थिति की ओर भी इशारा,

> "मुझे फेंक दिया है, यहाँ इन सर्प गुफाओं में
> यहाँ सूर्य किरणों को लटका दिया गया है ।"[1]

शोषण की भीषणता को कवि यों चित्रित करता है । चारों ओर के शोषण एवं अत्याचारों से निरन्तर पीड़ित जनता को "मांस से रक्त बहाए" जानेवाले मनुष्याकार के रूप में चित्रित किया है । रेंगती हुई रक्त पीनेवाली छिपकलियाँ हज़ारों शोषकों का प्रतीक है ।

> "एक मनुष्य लगातार अपने मांस से रक्त बहाए
> जा रहा है
> हज़ारों छिपकलियाँ रेंगती हुई रक्त पीती है ।"[2]

आधुनिक समाज के अस्तित्व-हीन मानव के प्रतीक के रूप में आधारहीन खंभों पर लटके हुए नये ईसा का प्रयोग किया गया है,

---

1. यातना - विजप, पृ.9
2. वही, पृ.9

"टेढे-मेढे बेडौल शरीर आधारहीन खंभों पर लटके हुए
नये ईसा निरन्तर फूकते तपे हुए स्वर ।"[1]

आधुनिक मानव के मोहभंग का प्रतीक है "टूटी हथेलियों पर थामे हुए टूटे ताजमहल" । एलोरा की मूर्तियों की परतदार चट्टानें, अजन्ताई चित्रों की दरारें, कन्याकुमारी मन्दिरे के बुझे हुए दिये आदि आधुनिक मानव की बुझी हुई आशाओं और आकांक्षाओं की ओर इशारा करते हैं,

"..... टूटी हुई हथेलियों पर पुरूष
थामे हुए होंगे टूटे ताजमहल
यहां एलोरा की मूर्तियों की परतदार चट्टानें
यहां अजन्ताई चित्रों की बडी दरारें
यहां कन्याकुमारी मन्दिरों के बुझे हुए दिये ।"[2]

यहां कवि प्रतीकात्मक ढंग से सरकार की असफल योजनाओं पर व्यंग्य कर रहा है । "प्रजातंत्र का आटा" सरकार की विभिन्न योजनाओं का प्रतीक है । "चीटियां" कामचोर अफसर बाबूओं एवं शोषकों का प्रतीक है,

"सरकार आटा डालती है
प्रजातन्त्र का
और चीटियां बढ रही है
कष्ट विष धारण किए हुए ।"[3]

---

1. अशमित - विजय, पृ.12
2. अर्थ - विजय, पृ.23
3. सात छोटी कविताएं - विजय, पृ.35

पूरे देश में होनेवाले तथा जन नेताओं के द्वारा होनेवाले विभिन्न अत्याचारों के प्रति कवि यों विद्रोह प्रकट करता है,

"देखो देखो
राजपथ
और संसद
जो लोग चल रहे है
उनके खून सने कपडे देखो
मैं हिन्दुस्तान के नक्शे पर भी
खून का धब्बा देखता हूं ।"[1]

शासकों तक पहुंचने पर सामाजिक सच्चाई किस प्रकार झूठ में परिवर्तित हो जाती है उसको प्रतीकात्मक ढंग से कवि यों प्रस्तुत करता है,

"पूछता है हाकिम
मुताहत से
मुताहत नीचे जाकर
लाता है खोज-खबर
रोज खबर वैसी ही है फिर भी
बदलता है वह कुछ शब्द
कुछ बदल डालता है हाकिम
कुछ सत्ताधिकारी ।"[2]

आधुनिक मानव के जीवन की अनिश्चितता को यहां प्रस्तुत किया है । आदमी को मालूम नहीं कि वह सीधे चल रहा है या पीछे । यह भी नहीं जानता कि वह समय के साथ आगे बढ रहा है कि नहीं ।

---

1. खून सने कपडे - बोधिवृक्ष, पृ.30
2. राजकाज - इतना कुछ, पृ.57

इन्हीं बातों के बारे में सोचने का समय मनुष्य के पास नहीं है । समाज में होनेवाली घटनाओं का अहसास तक नहीं है,

"मैं सीधे चल रहा हूँ या पीछे
उतर रहा हूँ या चढ रहा हूँ
समय की सीढियाँ
जानने का न अवकाश है
न अहसास ।"[1]

कवि लगाम के कसाव पर चलने केलिए विवश घोडों के माध्यम से आधुनिक विसंगतियों में अनचाहे जीवन बिताने के लिए विवश मानव को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है,

"हिस्कार या छडी से
लगाम के कसाव ने
बस बढने के लिए
विवश थे ।"[2]

शहरी जीवन की विशेष परिस्थिति में कवि को भविष्य कभी-कभी निरर्थक लगता है । भविष्य में कोई गतिशीलता नहीं है । वह महानगर की भीड में ठिठका हुआ है ।

"चलते नगर में
शवों और जन्मों के बीच
ठिठका है भविष्य ।"[3]

---

1. आँख भर - इतना कुछ, पृ.60
2. घोडों को मालूम न था - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.47
3. आगामी होना - मैं वहाँ हूँ, पृ.53

शहर सचमुच मनुष्य को एकदम बदल डालता है । वहाँ व्यक्ति अपने आपको ही अपरिचित महसूस करता है । उस स्थिति की भी कवि इशारा करते हुए कहता है,

"वह एक पौधा
बेरंग पड़ता जा रहा है
.....
कि नगर की आबोहवा
बाहर के पौधों के लिए
अनुकूल नहीं ।"[1]

पौधा यहाँ गाँव से आगे हुए लोगों का प्रतीक है । शहरी सभ्यता में अजनबी बननेवाले ग्रामीण लोगों को बाहर के पौधों के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । इस प्रकार समकामयिक यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को बडी गहराई के साथ संप्रेषित करने में दिमलजी के प्रतीक-विधान अत्यन्त सफल निकले हैं ।

अलंकार

अलंकार एवं छन्द भी कविता के लिए आवश्यक अंग है । लेकिन समय के बदलाव के साथ सौन्दर्य परक दृष्टिकोण में भी बदलाव आ जाता है । "अलंकारों के लिए अलंकारों का" जानबूझकर प्रयोग समाप्त हो गया । उसके स्थान पर स्वाभाविक अलंकार को स्थान मिला । दिमलजी की कविताओं में कहीं भी अलंकारों का जबरदस्त प्रयोग नहीं मिलता । अलंकारों के प्रति विशेष लगाव भी नहीं है ।

---

1. बेधर - मैं वहाँ हूँ, पृ.32

इसमें स्वाभाविक रूप से आये हुए उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक, मानवीकरण जैसे अलंकारों का ही प्रयोग प्राप्त है ।

अलंकारों के प्रयोग में मानवीकरण अलंकार का स्वाभाविक किन्तु सूक्ष्म चित्रण यहाँ हुआ है । यहाँ पेड पर मानव के मनोविकारों को आरोपित किया गया है ।

"कभी कभी चुप होते हैं पेड
जैसे ध्यानमग्न हो,
कभी कभी हिलते हैं गुस्सैल से
कभी चुपचाप उनके बीच
गुज़रती है हवा
कभी सन्नाटा
सीटी मारकर दहलाता है ।"[1]

वर्षा को देखकर कवि को ऐसा लगता है कि आकाश से हाथी उतर आ रहा है,

"आकाश पथ से एक हाथी नीचे उतर रहा है
बीच में चिंघाड़ते हुए
एक रजतवर्णी रेखा खींच आती है
और अचानक मिटकर
हाथी की सूंड में बुलबुलों की तरह
छिप जाती है ! अचानक ।"[2]

---

1. खिड़की से हरियाली - सन्नाटे से मुठभेड, पृ.87
2. पादस सन्नाटे से मुठभेड, पृ.5।

मानवीकृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी कविताओं में है । "कामनाओं का बोझ" "शून्य का मण्डोपा", "स्मृति की खिड़की" आदि अलंकारों के खूबसूरत प्रयोग केलिए उदाहरण है ।

"भटकते मन का विचित्र सा पड़ाव
जो अंधेरे में भी
उजाले सा खुलता है ।"[1]

यहां उपमा, रूपक आदि अलंकारों के साथ "भटकते मन के पड़ाव" को बहुत ही बारीकी से चित्रित किया है ।

छन्द

आधुनिक कविता छन्द के बन्धन से मुक्त कविता है । विषयवस्तु की विविधता ने काव्य-शिल्प के मुख्य स्थान से छन्द को हटाया । छन्द के स्थान पर कविताओं में एक प्रकार का लय विद्यमान है । "छन्द मुक्त कविता में लय को परिभाषित करना कठिन है, क्यों कि उसके निश्चित नियम नहीं हैं ।"[2] फिर भी यह लयात्मकता कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति में काफी हद तक सहायक सिद्ध हुई है,

"अपने में मस्त है लोग
उतने ही त्रस्त है लोग
जयजयकार में भी
हाहाकार में भी ।"[3]

---

1. अन्धेरे से आलोकित अतीत - मैं यहां हूं, पृ.6।
2. कविता की तीसरी आंख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ.45
3. लोग - इतना कुछ, पृ.49

"जब कुछ नहीं लिखा जाता
तब एक तैयारी होती है
चुप्पेपन में छिपी आक्रामकता
अपने सींग फैलाती है ।"[1]

प्रयोगात्मकता

विमल की कविताओं में बीच-बीच में नूतन शैल्पिक प्रयोग भी मिलता है । एक ओर उन्होंने लम्बे छोटे पंक्तियों का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर बीच-बीच में दे पंक्तियों को अधूरा छोड देते हैं । इससे उनके विचारों की तीष्णता का एहसास पाठक को सहज ही मिल जाता है ।

"गांधी समाधी पर
कसमें खाने के बावजूद .....
गांधी स्मारक के चपरासी की बीबी
चाहे उसने आत्महत्या की थी ....
लहूलुहान है ।"[2]

विमल की कुछेक कविताओं की पंक्तियों के बीच में काफी अन्तराल छोडा गया है,

बुद्ध पा चुके है निर्वाण

तुम वहीं हो
बोधिवृक्ष

---

1. जब कुछ नहीं लिखा जाता, पृ.57
2. खून से सने कपडे - बोधिवृक्ष, पृ.30

कितनी बार गुज़रा है काल
तुमसे होकर ।"[1]

इसके अलावा इन्होंने इने गिने शब्दों के माध्यम से भी कविता का गठन कर दिखाया है,

"मुक्ति
.....
इतनी ही है
होना निर्भीक ।"[2]

भाषा

भाषा के बिना कविता का संप्रेषण संभव नहीं । कवि की अनुभूति को संप्रेषित करने के लिए चुस्त भाषा की अनिवार्यता है । अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न कविता में कवि को कम शब्दों में अधिक कहना पड़ता है । इसलिए कविता की भाषा सशक्त एवं चुस्त होनी ही चाहिए । कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को विभिन्न ढंग से सशक्त बनाता है । बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग इसमें महत्वपूर्ण है । कवि प्रतीकात्मक भाषा को अपनाकर विचारों एवं भावों को गहराई एवं अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है । अलंकार एवं लय के माध्यम से भाषा को सजाता है और उसे नाद युक्त बना लेता है । इस प्रकार की काव्य भाषा के सृजन में कवि जितनी सजगता दिखायेगा, विषयवस्तु के संप्रेषण में उसे उतनी ही सफलता मिलेगी । आधुनिक कविता में भाषा को अधिक महत्व

---

1. बोधिवृक्ष, पृ.9
2. मुक्ति - बोधिवृक्ष, पृ.45

दिया है, "काव्य के केन्द्र से अनुभूति को हटाकर भाषा की स्थापना महज़ दृश्यांतर नहीं युगांतर की सूचक है ।"[1]

विमलजी ने अपनी कविताओं में सरल भाषा को अपनाया है । संस्कृत निष्ठ सरल बोलचाल की भाषा के माध्यम से अपने भावों को पूर्णता एवं ईमानदारी के साथ पाठकों तक पहुँचाना चाहते हैं । इनकी प्रारंभिक कविताओं की भाषा में कहीं निराशा एवं अतृप्ति का भाव झलकता है तो बादवाली रचनाओं में आस्था का । वस्तुपक्ष के समान ही भाषा के प्रयोग में भी उन्होंने काफी संयम दिखाया है ।

"एक झूठ को लगातार बाँधे हुए ।
हम सब प्रतिबद्ध है ।
कौन सा रास्ता है जिसे हम जाते हैं
सिर्फ । विज्ञान कुविज्ञान और तर्क
सिर्फ । आकृतिवान संशय एवं सम्पृक्त मोह ।"[2]

कवि ने यहाँ आधुनिक मनुष्य के जीवन यथार्थ को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है । सरल, संस्कृतनिष्ठ बोलचाल के निकट की भाषा को अपनाया है ।

"गुरुत्वाकर्षण कैद है
सौरमण्डल के क्रम में
सौरमण्डल
आकाश गंगा में

---

1. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ.10
2. अग्नु - विजय, पृ.11

आकाश गंगा
अन्तरीक्ष में ।"[1]

इन पंक्तियों में कवि ने भावुक भाषा के स्थान पर कोरे विज्ञान की भाषा को अपनाया है । बादवाले संग्रहों में संस्कृत निष्ठ शब्दों के अलावा उर्दू शब्दों का भी खूब प्रयोग किया है । सतत, सरहद आदि शब्द इनकी कविताओं में बार बार प्रस्तुत दिखाई देते हैं । उनकी कविताओं में पहाड, वन, पेड, नदी, हवा जैसी प्राकृतिक वस्तुओं से संबद्ध शब्दों का प्रयोग मिलता है । घाटी में पले-बढे कवि के मन में अपनी परम्परा एवं संस्कृति के प्रति भी मोह है । इसलिए उनकी शब्दावली भी अपने संस्कार का ही सूचक है । महानगर की भीड में एकान्तता एवं शून्यता को महसूस करनेवाले कवि की वाणी में भावुकता एवं कल्पना का अभाव होना स्वाभाविक है ।

"रंगों में छपजाती है कहानियाँ
और कविताएं लटक जाती है टहनियों पर
उन्हें चुपके से कोई
नीचे उतारता है
पतझर या गर्मी के कपडे पहने हुए ।"[2]

उन्होंने सामाजिक एवं राजनैतिक विडम्बनाओं के यथार्थ का चित्र भी उकेरा है । वहाँ भी उनकी भाषा में संयम का पालन किया गया है ।

"क्या तुमने कभी
सामान ढोते हुए लोग देखे हैं
उन्हीं में से
जो इस वक्त पीठ पर

---

1. सुन सने कपडे - बोधिवृक्ष, पृ·28
2. दोपहर की ओर - सन्नाटे से मुठभेड, पृ·52

सामान लादे चल रहा होगा
उसकी बीबी
और बच्चे
बाबुओं के घर झिड़कियाँ सह रहे होंगे ।"[1]

बीच बीच में अपने हास्य व्यंग्यात्मक भाषा को अपनाकर सामाजिक एवं राजनैतिक विडम्बनाओं पर गहरी चोट भी पहुँचायी है ।

"सरकार आटा डालती है
प्रजातन्त्र का
और चीटियाँ बढ़ रही है
कष्ट विष धारण किए हुए ।"[2]

संक्षेप में विमलजी की कविता का शिल्प पक्ष भी भावपक्ष के समान समृद्ध है । आधुनिक जीवन के यथार्थ को संप्रेषित करने में उनका काव्यशिल्प काफी सफल निकला है । अनलंकृत भाषा के माध्यम से वर्तमान जीवन के यथार्थ एवं आधुनिक मानव की विडम्बना को प्रस्तुत करने में विमल का काव्य विशेष भूमिका अदा करता है । सचमुच कवि शिल्पपक्ष पर अधिक ज़ोर देनेवाला नहीं । शिल्प प्रयोग में कवि ने मध्यम मार्ग को अपनाया है । इसलिए उनके काव्य में कथ्य एवं शिल्प का अद्भुत संयोग हुआ है ।

कथा साहित्य का संरचना पक्ष

स्वातंत्र्योत्तर कविता के समान कथा साहित्य भी परिवर्तन की अखाड़ा बन चुका था । गंगाप्रसाद विमल स्वाधीनता परवर्ती कथाकार है । उनके कथा साहित्य में परिवर्तन की दिशाएँ परिलक्षित होती

---

1. सुन सने कपड़े - बोधिवृक्ष, पृ.28
2. सात छोटी कविताएँ - विजप, पृ.35

कथ्यगत विशेषतायें

विमलजी ने जिन सन्दर्भों को चुन लिया है वे सब या तो छोटे समय की है नहीं तो कुछ घटनाओं पर आधारित होती है । मुख्यरूप से मध्यवर्ग को ही उन्होंने अपनी रचना का आधार बनाया है । इसलिए पूरे उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन की मिथ छाया हुआ है । आधुनिकता ने ही मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं को प्रकाश में लाने का कार्य किया था । क्यों कि समाज में सबसे अधिक विडम्बना-ग्रस्त ज़िन्दगी बितानेवाला मध्यवर्ग ही है । समाज के सभी प्रकार के नियमों से ये जकडे हुए हैं । इसलिए उनकी एक खास मानसिकता है । मध्यवर्ग के विडम्बनाजन्य विवश एवं हताश जीवन का चित्रण विमलजी के कथा साहित्य का मूल कथ्य है ।

"अपने से अलग" एवं कहीं कुछ और इस मानसिकता को अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यास हैं । अपने से अलग के एक पिता है जो प्रकट नहीं होता । पर पूरे उपन्यास का नियंत्रण उस पर निर्भर है । उन्हीं के कारण एक परिवार टूट जाता है । उसके सदस्यों केबीच दरारें पड जाती है और एक दूसरे को अजनबी बन जाता है । कथा पिता पर केन्द्रित है पर वह कभी भी उपन्यास में सीधे प्रत्यक्ष नहीं होता । उसी प्रकार का एक "पिता" कहीं कुछ और में भी है । सारे पात्र उस पिता, उसकी चिट्ठी तथा उसकी चिट्ठी के साथ आनेवाले मणिआर्डर से सम्बद्ध है । उनके लिए जीने का मतलब ही उस पत्र और पैसे की प्रतीक्षा करना ही लगता है । सारे के सारे पात्र निष्क्रिय हैं । अपनी उजडी हुई ज़िन्दगी को उभारने का कोई कारगर प्रयत्न वे करते नहीं । यह एक मध्यवर्गीय मानसिकता ही है । वे विभिन्न प्रकार की ग्रंथियों में फंसे हुए है । उन ग्रंथियों से मुक्त होने में वे असमर्थ हैं । मध्यवर्ग की इस निष्क्रियता और अहंग्रस्त

मानसिकता को चित्रित करने केलिए उपन्यासकार ने इस कथा को स्वीकार किया था । दोनों उपन्यास पाठकीय संवेदना को उजागर करते हैं । पाठक आदि से अंत तक जिज्ञासु बनकर कथा के पीछे चलते है । सारी घटनाओं से गुज़र कर पाते हैं कि मध्यवर्गीय झूठी मानसिकता का परिणाम क्या है । यह उन उपन्यासों की शिल्पपरक विशेषताओं में एक है । मध्यवर्गीय आर्थिक विपन्नता, पारिवारिक विघटन, निष्क्रिय इन्तज़ार, अहंग्रस्त मानसिकता इन सब से होकर उपन्यासकार पाठकों को मध्यवर्गीय सच्चाई का पता चला देता है ।

"मरीचिका" भी मध्यवर्गीय मानसिकता का ही उपन्यास है । कथानक एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसमें नवीनता अवश्य है । इस की कथा के केन्द्र में एक गुरुदेव है । सारी कथा उससे जुडी हुई है । पूरे उपन्यास में गुरुदेव तथा जुडी हई समस्याएँ प्रत्यक्षत: दिखाई देती है । पर गुरुदेव एक मिल बन गया है । ऐसा मिल जो हर मध्यवर्ग के मन में वर्तमान सुरक्षा एवं सुख को प्रतिबिम्बित करता है । "मरीचिका" में ऐसा एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की कथा है जो मूलत: मार्क्सवादी है पर काम किए बिना सुखी एवं साधन सम्पन्न होना चाहता है । इसके लिए वह गुरुदेव की तलाश करता है । विश्वास है कि गुरुदेव की तलाश करें और उन से भेंट हो जाय तो सारी समस्यायें सुलझ जाएगी । इसके लिए उपन्यास का "मैं" प्रयत्न करता है । पर अन्त में पता चलता है कि यह तलाश एक मरीचिका मात्र है । सुख सम्पत्ति की प्राप्ति तलाश मात्र से संभव नहीं । यहाँ भी विमलजी की मध्यवर्गीय मानसिकता का पोल खोलने का ही प्रयत्न किया है । "मृगान्तक" भी इसी प्रकार का उपन्यास है ।

मरीचिका के समान इसमें भी मध्यवर्ग की बदली हुई मानसिकता को ही वाणी मिली है । कथानक एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह उपन्यास अन्य उपन्यासों से कुछ भिन्न है । इसके मूल में बोधू विद्या और उसकी तलाश है । मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए किस प्रकार पाशवीयता को अपनाते हैं यही इसका कथ्य है । "बोधू विद्या भी एक ऐसी विद्या है जिसको जानकर सहज ही में बोधू यानी बाघ का रूप धारण कर सकता है । .... यह अमरत्व की साधना है । एक बार बोधू का रूप धारण कर आप एक वर्ष के लिए सुरक्षित हो जाते हैं ..... आपकी उम्र में एक वर्ष बाद जाते हैं ।"[1] जलेड की खोज के बाद सिद्ध स्थानों की तलाश करते फिरते हैं । उसके बाद बोधू साधना के स्थान एवं बोधू की तलाश करता फिरता है । फिर बोधू विद्या की पाण्डुलिपि की खोज ज़ारी रखता है । जब मनुष्य एक बार बोधू बन जाता है तो फिर मनुष्य बनने केलिए किसी मनुष्य का रक्तपात करना आवश्यक है । और जब एक बार आदमखोर बन जाते हैं तो उसी से मुक्ति पाना भी आसान नहीं है । मानव मन की पाशवीयता को बहुत ही खूबी के साथ उन्होंने उकेरा हैं ।

विमलजी की प्रत्येक कहानी अपना अलग अस्तित्व रखती है । विषय की दृष्टि से जितनी विविधता इसमें पायी जाती है उतनी ही विविधता उसकी अभिव्यक्ति की शैली में भी है । शैल्पिक प्रयोग की दृष्टि से नवीनता प्रत्येक कहानी की अलग पहचान बन गयी है । "हमवतन" कहानी में भारतवासियों के प्रति विदेशियों के मन में जिस आकर्षण का भाव आज भी विद्यमान है । उसे बहुत ही खूबी के साथ चित्रित किया है । "फरगाना" की लडकियों के मन में भारतवासियों के प्रति होनेवाली दोस्ती एवं आत्मीयता का भाव गहराई के साथ

---

1. मृगान्तक, पृ.10

उकेरा है । "देखो, अपने लोगों से मिलकर कितने खुश होते हैं हम फरगाना वाले, लड़की बोली । ..... सच आज कितना खुश किस्मत दिन है । एक तो हम लोगों ने मौसम की पहली चिड़िया को दक्षिण की ओर जाते देखा है जो हम जान गये कि लड़की बताती है कि वे पक्षी एक सिरे से दूसरे सिरे तक बस अपने लोगों के पास ही जाते हैं । अपने और खास अपने लोगों के पास ..... ।"[1] फरगाना और भारत के लोगों में रीति-रिवाज़ में जो समानता है उसे पूरी वास्तविकता के साथ चित्रित किया है । किसी तरह जुल्फ्या आई और मुझे एक शामियाने के भीतर खींचकर ले गई - "यह रहा मेरा दहेज ..... यानी कपड़े, बर्तन ..... दूसरी चीज़ों के ढेरे ।"[2] रिक्तों के प्रति भावुकतापूर्ण दृष्टि रखनेवाले तथा उसकी मूल्यवत्ता को स्वीकारने वाले विमलजी ने अपनी कहानियों में बदलते हुए सम्बन्धों को बारीकी के साथ चित्रित किया है । "अतीत में कुछ" सम्बन्धों में आनेवाले परिस्थितिजन्य परिवर्तन को चित्रित करता है । रियासत की ओर से आरोप लगाये जाने से घण्टों में अपनी रियासत छोड़ने का हुक्म मिलनेवाले पिता माना एवं रियासत के फौजी अफसरों की बीमार लड़की के प्रति प्रतिक्रिया यहाँ चित्रित है । बीमार बच्ची को उसके साल गिरह पर घर ले आने से पिता क्रुद्ध होकर माँ से पूछता है "लेकिन तुम इसे घर क्यों ले आयी ? ..... जो चीज़ अस्पताल में रहनी चाहिए, उसे घर में क्यों ..... ।"[3]

पुत्री की बीमारी की वजह से परेशान पिता के ऊपर रियासत के फौजी अफसरों के बर्ताव ने उसके तनाव को और अधिक

---

1. हमवतन - चर्चित कहानियाँ, पृ.10
2. वही, पृ.12
3. अतीत में कुछ - चर्चित कहानियाँ, पृ.39

बढ़ा दी । लेकिन मां की भावना में कोई परिवर्तन नहीं है। बच्ची के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को देखकर मां ने कातर आवाज़ में कहा "कोई डाक्टर तो बुलाओ ····· बुलाओ न । बच्ची की मृत्यु के बाद भी उस सत्य को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं है "इसे लम्बी बेहोशी है अभी पठ जायेगी ····· बच्ची ····· मेरी बच्ची ! उठो बेटे हमें जाना है ।"[1] "खोई हुई थाती" में आधुनिकता की आड में अपनी विरासत को विनष्ट करने वाले ग्रामांचल के लोगों को दिखाया है । ग्रामांचल की रीति रिवाज़ों को भी इसमें चित्रित किया है । विरासत को खोदेने के बाद पछतानेवाला "मैं" गांव छोड़कर शहर बसनेवाले लोगों का प्रतिनिधि है । गुम हुए ताबीज़ में जो कागज़ था "उस में लम्बी उम्र पाने के तरीके लिखे थे ····· सब कुछ पाने के तरीके और लिखे थे भूख पर विजय पाने के तरीके और रोग और कष्टों से छुटकारा के तरीके ।"[2] "सैलानी" नामक कहानी में भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था रखनेवाले विदेशियों को चित्रित किया है । यह स्थापित किया है कि भारतीय संस्कृति के प्रति, यहां के पारिवारिक संगठन के प्रति जो जानकारी विदेश के लोगों को है वह केवल किताबी ज्ञान है लेखक इस चिन्ता में डूब जाते हैं कि "मैं सोचने लगा, मैं किसे बताऊंगा कि भारत में क्या हो रहा है ? जो किताबें यह पढ़ता है और जो यहां घटता है उसमें कितना फर्क है । अगली बार किसी यूनानी से मिलूंगा तो उसे बताऊंगा वह असलियत ।"[3]

"आत्महत्या" नामक कहानी में सामाजिक मूल्यहीनता से दु:खी होकर आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जानेवाले युवा का चित्रण है । सामाजिक सच्चाई का नज़रन्दास करते हुए जीने केलिए

---

1. अतीत में कुछ - वर्जित कहानियां, पृ.48
2. खोई हुई थाती, पृ.14
3. सैलानी, पृ.119

विवश लोग खुद आत्महत्या करनेवालों की जैसी ज़िन्दगी बिताते हैं। आत्महत्या करने से पहले उसने जो पत्र लिखा था वह पत्र राजनेताओं, पादरियों, शिक्षकों और समाज सुधारकों को सम्बोधित था। "हाँ, मैं आत्महत्या कर रहा हूँ इसलिए कि अब कोई विकल्प नहीं। मूल्य, नारे ईमानदारी और अच्छाई ये सब चीज़ झूठी है। जो लोग मूल्यों, ईमानदारी और अच्छाई की झूठ से बँधे नहीं है, वे सुखी लोग है।" ...... क्या दे सकूँगा मैं अपने बच्चों को ?" क्या छोड सकता हूँ विरासत में ..... सिर्फ भूख .... कर्ज .... पराश्रय और एक निकम्मी-सी धारावाहिक आत्माघाती प्रतीक्षा ... ।"[1] आत्महत्या करने निकले मास्टर जी को देखकर उसे पन्द्रह साल पहले के धनराज का चेहरा याद आता है। धनराज की याद के माध्यम से उन्होंने समाज के और एक पहलू को उकेरा है। "लम्बी सजाओं की तो जिंदगी मिली है मुझे। एक जगह से मुश्किल से बरी हुआ तो अब यहाँ मुक्त जिंदगी में भी खुद को फँसा हुआ महसूस करता हूँ। "फ्रीडम" की कैदम हूँ दोस्त।"[2] फिर जब जाने का वक्त आया तब उस नन्नी सी जान को वहीं ही छोडना पडा तो कभी माँ ने सडक पर धुन्ध के बीच छिपे मुँह से कहा "पर अगर वह जाग गयी तो[3]।"

"निर्वासित" कहानी में नन्ने से बच्चे के माध्यम से पारिवारिक सम्बन्धों के बिगडते हुए दृश्य को चित्रित किया है। बच्चे से जब पूछा कि "तुम्हारे पापा बहुत अच्छे है न ? तब उसने उत्तर दिया कि "नहीं"। ठीक तो तुम्हारी मम्मी अच्छी है ? "नहीं"

---

1. वर्जित कहानियाँ - आत्महत्या, पृ. 21
2. वही, पृ.22
3. वर्जित कहानियाँ - अतीत में कुछ, 48

वह दुगुने ज़ोर से बोला ।"[1] उसने बताया "मैं अपने पपा के लिए फालतू था । वे कहते हैं कि मैं उन का बेटा नहीं हूँ । मेरा रंग, मेरी शक्ल किसी और से मिलती है ।"[2] उस छोटे से बच्चे केलिए पिता और पुलीस में कोई फरक नहीं है "पुलीस हो या पापा दोनों एक जैसे हैं । मैं अब वहां कभी नहीं जाऊंगा ।"[3]

विमल की कहानियों में भारत की ऊपरी तस्वीर नहीं बल्कि वास्तविकताओं की भीतरी जटिलताओं को एक रोचक भाषा में मूर्तित किया है । "इतनी देर बाद उन औरतों को खयाल आया कि बच्चा किसका था । घण्टों विलाप करने के बाद और एक क्षण वहां बैठे रहने के बाद अचानक उनमें खलबली मच गयी । हर कोई अपने बच्चे के तलाश में निकल पडी । कुछ जिनके बच्चे बडे बडे थे और शहर में नहीं थे या बोझ औरतें अभी वहां बैठी हुई थी ..... दनादन अपने बच्चों को लेकर हवेली की औरतें फिर दलान में लौट आयी और एक दूसरे को अपना बच्चा दिखाकर तसल्ली से फिर बैठ गयी और रोने का उपक्रम करने लगी ।"[4]

"इन्तज़ार में घटना" कहानी में रुपये के प्रति लालच रखनेवाले लोग एवं किसी की लाश के प्रति सहानुभूति का नाटक करना भी दिखाया है । "मैं भी" कहानी में समसामयिक समस्याओं को बहुत ही गहराई के साथ प्रस्तुत किया है । कोढ की बीमारी से पीडित भिक्षुक अपनी कहानी सुनाता है । सभी उसे नफरत के साथ देखते हैं ।

---

1. वर्जित कहानियां - अतीत में कुछ, पृ.48
2. वर्जित कहानियां - निदर्शित, पृ.146
3. वही, पृ.147
4. बच्चा - बाहर न भीतर, पृ.84

सभी लोग कोढ की बीमारी से डरते हैं । लेकिन गाँव भर के अकाल और बेरोज़गारी के कारण कोढ जैसी बीमारी को भी स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है । उनका कहना है कि, "ऐसे में बस मेरे जी में आता है कि मुझे भी कोढ हो जाये । कम से कम नन्दु भाई की तरह परिवार का तो पेट भर सकें । मैं भी .... ।"[1]
विमलजी के कथासाहित्य में कथ्यगत विविधता उपन्यास की अपेक्षा कहानियों में है । कथा कथन की विशेष शैली को अपनाने के कारण कथ्य प्रस्तुतीकरण में विमल सफल निकले हैं ।

विमलजी के पात्र

विमलजी के कथा साहित्य में पात्र परिकल्पना की अपनी विशिष्टता है । सन् साठ के आस पास के अन्य लेखकों के समान इन्होंने भी "मैं" को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है । उनकी अधिकांश रचनाओं में "मैं" मुख्य पात्र है । प्रत्येक कथा या घटना "मैं" के इर्द-गिर्द घूमती है । इसलिए ये घटनायें अधिक वास्तविक लगती है । "मैं" ही सभी पात्रों के साथ सम्बन्ध जोडता है । वह समाज के किसी खास व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि सामाजिक सच्चाई को दर्शानेवाला है ।

उनके सभी पात्र मध्यवर्ग के हैं, साथ ही साथ ग्रामांचल से जुडे हुए भी । इसलिए धार्मिक रूढियों एवं अन्धविश्वासों में जकडे हुए भी हैं । "अपने से अलग" के पात्र हैं मा, पिता, मैं, छोटा भाई, छोटी बहन, दो बडी बहन । "कहीं कुछ और" में भी पात्र कम है । बहुत कम ही पात्रों को अलग से नाम दिया है -

---

1. मैं भी, पृ.32

आशी, बूलू, जोनतारा आदि । बाकी सभी पात्र सम्बन्धों के नाम पर जीवित हैं । "अपने से अलग" "कहीं कुछ और" दोनों उपन्यासों में पिता की चर्चा आदि से अन्त तक बनी रहती है । लेकिन एक बार भी उससे सीधा साक्षात्कार नहीं होता । "मां" दोनों ही उपन्यासों में मध्यवर्गीय मानसिकता से ओतप्रोत दिखाई पडती है । मिथ्याभिमान, अकेलापन, जैसी मध्यवर्गीय मानसिकता के संकरे दायरे में "मां" के आत्मसंघर्ष को पूर्ण रूप से उतारने में लेखक सफल हुए हैं । शेष सभी पात्र भी मां की मानसिकता की गिरफ्त में है । इसलिए घर की बुरी हालत देखकर भी वे कोई सक्रिय कदम उठाने में असमर्थ हो जाते हैं । "मैं" छोटे भाई, आशी बूलू जैसे पात्र बहुत ही छोटी उम्र के हैं । लेकिन समस्याओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अपनी आयु से भी कुछ आगे की है । वातावरण के तनाव को दूर करने में वे बडों से भी अधिक कामयाब दीखते हैं ।

"मरीचिका" में भी पात्रों की संख्या कम है । "मैं" सन्त भजन सिंह, कक्कू पागल, हरिप्रकाश, ठेकेदार शशा सेठ, मैत्री और खेतरीलाल । ये सभी पात्र अपनी महत्वपूर्ण भूमिका तो निभाते हैं । लेखकीय उद्देश्य को पूर्णता प्रदान करने में ये पात्र सफल निकले भी है ।मैं मरीचिका के पीछे भटकनेवाली आधुनिक युवा पीढी का प्रतिनिधि है । वे सुख सुविधा के लोभी हैं । इसलिए वे "सन्त भजनसिंह" जैसे लोगों के आशीश रूपी मरीचिका के पीछे भागने केलिए विवश हो जाते हैं । यह विवशता समय सापेक्ष्य है । इस केलिए वह अपने विश्वासों एवं सिद्धान्तों को भी छोडने के लिए तैयार हो जाते हैं । सन्त भजनसिंह एक प्रतीक है, झूठी आकांक्षाओं एवं सुख लोलुपताओं का । इसको पाने केलिए युवा पीढी सन्त भजन सिंह की तलाश करती है । क्यों कि निष्क्रिय रहकर सुख सुविधाएं जुटाने की

इच्छा उनके मन में है । "मैं" पढे लिखे नौजवान का ही प्रतीक है जो विभिन्न परिस्थितियों से गुज़रते हुए भी किसी मंजिल तक पहूंचने में असफल है । पर धन कमाने तथा पढ़ाने की लालच है इसीलिए हरि-प्रकाश के जाल में फंस जाता है ।

इसका दूसरा पात्र है सन्त भजनसिंह जो सम्पूर्ण उपन्यास में रहता है । लेकिन कहीं भी उनसे सीधी मुलाकात नहीं होती है । वर्तमान समाज में व्याप्त काले कारनामों एवं मूल्यहीनताओं को छिपाने का सब से सुन्दर पर्दा है सन्त भजन सिंह । अत: सन्त भजनसिंह रूपी मरीचिका के पीछे भटकते हुए अन्त में "मैं" यह स्थापित करता है कि सन्त भजनसिंह का कोई अस्तित्व ही नहीं है । वह एक मरीचिका मात्र है । उपन्यास में कफ्फू पागल का चित्रण किया गया है । गांव में ऐसा कोई नहीं है जिसने कफ्फू पागल के बारे में न सुना हो । उनकी कहानी सुपरिचित लोकगीत के समान सम्पूर्ण गांव में फैली हुई है । कफ्फू पागल अपने आप में एक संकेत मात्र नहीं है । बल्कि वह समाज की हर समस्या के प्रति जागरूक है और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है । लेखक अपनी तरफ से समाज की जिन जिन बीमारियों का इलाज करना चाहता है, या आलोचना करना चाहता है उसके लिए उन्होंने कफ्फू को पागल का बाना पहना दिया । क्यों कि पागलपन में ही व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र होता है । लेखक के अनुसार "पागलपन ही दुनिया के तमाम कष्टों की दवाई है । पागलपन में आप नंगे घूम सकते हैं - पूरी आज़ादी के साथ ..... प्रकृति ने जो आज़ादी दी है - उसी सम्पूर्णता के साथ ..... क्या आसमान में कोई पर्दा है क्या पेड की टहनियां नंगी नहीं है ।"[1]

---

1. मरीचिका, पृ.54

हर विचारशील व्यक्ति अपने परिवेश के प्रति सजग रहता है । आधुनिक समाज की भीषणताओं को देखकर वे अपने को निस्सहाय पाते हैं और महसूस करते हैं कि इस संन्दर्भ में जीने के लिए पागल होना ज़रूरी है, "पागल होने से संसार के सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्ति मिलता है । जिम्मेदारियों से मुँहमोड सकता है । बनावटी सभ्यता से स्वाधीन हो सकता है । भोजन रहन सहन का फिकर नहीं ।"[1] यहाँ कफ्फू को पागल बनाकर लेखक, उसी के माध्यम से समाज के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करता है । इसलिए कफ्फू पागल का चरित्र सशक्त बन पडा है ।

हरिप्रकाश इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है । इससे मरीचिका जुडी रहती है । हरिप्रकाश ऐसे लोगों के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं जो आर्थिक विपन्नता के शिकार है । पिताजी की छोटी कमाई अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए पर्याप्त नहीं थी । उन्हें विभिन्न प्रकार की बेईमानी को सहनी पडी । इन सारी परिस्थितियों से बचने केलिए वे गप्पेबाज़ एवं झूठे लोगों से मिल जाते हैं । अपने आप को झूठ और गप्पों के जाल में फँसाकर मानसिक तसल्ली पाना चाहता है । सन्त भजनसिंह रूपी मरीचिका की तलाश में भटकते हुए वह वापस आकर पहचान लेता है कि अपनी खोज बिलकुल मरीचिका ही थी । यहाँ राजनीतिक एवं सामाजिक मूल्यहीनता पर भी व्यंग्य है । लेखक के अभिमान यहाँ सीधे पाठक तक पहुँचाते हैं । हरिप्रकाश के पत्र से उपन्यास सम्पूर्ण रूप से खुल पाता है । हरिप्रकाश के पत्र में लिखा है "इतना ज़रूर मानता हूँ कि न्याय, खुदा और रहम के ये ऐसे तीन टापू है । गरीब अपंग, अनपढ़ और असमर्थ लोगों को फँसाने के लिए ये जाल बुने हैं ।"[2]

---

1. मरी चिका, पृ.54
2. वही, पृ.143

मिनिस्टर के माध्यम से आजकल के राजनीतिज्ञों की भ्रष्टाचारिता पर करारा व्यंग्य किया है, "साले अनपढ लोग मिनिस्टर बने बैठे हैं । अभी जो चुगद यहाँ बैठा था वह मिनिस्टर का बच्चा साला कुछ भी पढा-लिखा नहीं है । कुछ ही साल पहले साला अँगूठे से दस्तखत करता था । ..... मिनिस्टर को अँग्रेज़ी बहुत कम आती है । मैं ने औपचारिकता में कहा "अगर मिनिस्टर साहब माइण्ड न करें तो मैं रिपोर्ट अँग्रेज़ी में ही पढ लूं तो सूअर बोला आइ हैव नो माइण्ड । दास तुम रिपोर्ट पढ लो अब देख लो तुम, ऐसे लोग मिनिस्टर है ।"[1]

दास पढे लिखे हैं पर अपनी नौकरी से तृप्त नहीं है । वह अनपढ मंत्री के दफ्तर का अफसर मात्र है । वह एक महत्वाकांक्षी अफसर का प्रतिनिधि है जो अपने बडे अफसरों के सामने विनम्रता का मुखोटा धारण कर छिपकली सा रहता है । निम्न स्तर के कर्मचारियों को गाली देता है । वह भी अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ती केलिए सन्त के शरण में जाना चाहता है । साथ ही साथ यह भी बताता है कि सन्त जी के आशीर्वाद के समान ही मिनिस्टरों का आशीर्वाद पाना भी आवश्यक है । अब तो मिनिस्टरों की खुशामदों से मैं वह जगह पाना चाहता हूँ जो सिर्फ दो तीन लोगों को मिलती है । दास अपने मिनिस्ट के लिए लेखक की तलाश में है । दास "मैं" से कहता है "तुम भी कुछ लिखते हो क्या ..... लिखते होते तो अच्छा रहना । अब तो मिनिस्टर भी किसी सन्त से कम नहीं है किस पर चाहे दया कर दें ।"[2]

---

1. मरीचिका, पृ.100
2. वहीं, पृ.101

खेतरीलाल उस सम्पन्न वर्ग का प्रतीक है जो अनपढ और गंवार है । दो दिन की सम्पत्ति का ढोंग करना कभी भूलते नहीं है "वह बडा बंगला था । खूबसूरत बगीचे से घिरा हुआ । ..... खुले हवादार हाल में घुसे । वह बैठकर इन्तजार करने की जगह थी । ठीक दायीं ओर स्वीमिंग पूल था ..... । वहां जवान और खूबसूरत लडकियां नहाने का खेल खेल रही थी ।"[1]

इस प्रकार लेखक ने "मरीचिका" को एक अलग ढंग से ही प्रस्तुत किया है । इसके प्रत्येक पात्र किसी न किसी सामाजिक यथार्थ का प्रतीक है । यद्यपि इसमें भी मध्यवर्गीय मानसिकता को ही उकेरा गया है तथापि यह उपन्यास पहले के दो उपन्यासों से थोडा भिन्न है । इसमें कथानक को सामाजिक स्तर प्रदान किया है । आदि से अंत तक इस में सन्त का जाल फैला हुआ है । यह जाल अंत में हरिप्रकाश के पत्र से खुलता है । इस प्रकार यह उपन्यास पाठकों को सोचने केलिए विवश कर डालता है ।

"मृगान्तक" में भी पात्रों की संख्या कम है । यहां जलेड नामक पर्वतीय अंचल पात्र के रूप में पूरे उपन्यास में वर्तमान है । जलेड पहले सम्पन्न गांव था । लेकिन अब दैवी शाप से उजडा हुआ है । एक वक्त था वहां खण्डहर या जंगल होते हुए भी लोग बराबर जाते रहते थे । पर अब तो वहां मीलों तक कोई नहीं जाता । जलेड बडे ही सम्पन्न स्थान था, लेकिन बोक्षु सिद्धा या तंत्र साधना ने उस गांव को उजाड दिया और लोगों के मन में डर पैदा की । इस उपन्यास में जलेड का अच्छा सांगोपांग वर्णन प्राप्त है । इससे वह खुद एक पात्र के रूप में उभर कर सामने आता है । इस उपन्यास का

---

1. मरीचिका, पृ.102

एक एक पात्र कहानी को खोलने या उपन्यास को आगे बढाने में सहायता देता है । मैक्टाफ साहब इसका पहला पात्र है । उसकी खोज को आगे बढाने का कार्य "मैं" ने यहां किया है जितने लोग बोधु साधना के चक्कर में निकले उन सब की मृत्यु हुई है, "मैक्टाफ साहब का देहान्त हो गया । रक्तहीन चेहरे, और गले पर दांत के घाव थे ।" इतनी ही जानकारी लेखक को आगे बढाती है । लामा और कीर्तीबाई दोनों पात्र लक्ष्य तक पहूंचने का मार्ग दिखाते हैं । सर्वदानंद यहां के सारे कार्यकलापों का केन्द्रीय पात्र है । बोधु साधना में लगा हुआ है । उन्होंने जनता में यही विश्वास पैदा किया है कि वह सम्पूर्ण समाज के हित के लिए काम करता है । लेकिन बोधु बन जाने से अपनी आयु में एक साल और जोड देने के सिवा कोई लाभ नहीं होता ।

बोधु साधना के माध्यम से मनुष्य में वर्तमान पाशवीयता का ही चित्रण किया है । अंत में ये सब झूठ साबित होते हैं, "बोधु कृत्रिम है और बाघ नैसर्गिक । जो प्रकृति की निर्मिति है उसका अपना एक निर्धारित लक्ष्य है । प्रकृति का एक प्रकार का संतुलन है । सब चीज़ें अपनी जगह महत्वपूर्ण है ।"[1] सर्वदानंद यहां सभी प्रकार के काले करतूतों का प्रतीक है । लेकिन वह जनता के सामने लोक कल्याण केलिए साधना में लगे हुए संत के रूप में दिखाई पडता है । इस मुखौटे के पीछे सम्पूर्ण काले करतूत छिपाये हुए है । एक ओर जनकल्याण की अच्छी भावना को बढाता है तो दूसरी ओर अन्धविश्वास की भयावहता को फैलाता है । भक्ति की ढोंग और अन्धविश्वास के जाल में आम लोगों को फंसाकर उनका शोषण करना सर्वदानंद जैसे लोगों का कार्य है । शोषकवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ही सर्वदानंद को यहां चित्रित किया है ।

---

1. मृगान्तक, पृ.86

रिखलीदेई मृगान्तक उपन्यास का सशक्त पात्र है । निर्धनता और सत्ता पर अन्धविश्वास के कारण उसका शोषण होता है, "हम लोग गरीब लोग है । मेरे पिता अचानक एक दिन भादान को प्यारे हो गये । बडी बहन को सकलाना के माफीदार ले गये । वह बहन खूब सुखी है । मैं उसके घर भी गयी थी ।"[1] रखली देई को सर्वदानंद उसके घर से ले आया था । "पंडित जी मेरे घर आये और उन्होंने मेरी मा से सिर्फ पूजा केलिए कुछ महीनों के लिए मुझे मांग लिया । मैं तो अब तक नहीं जानती कि मेरा क्या होगा - कि पंडित जी किस रूप में मुझे तंत्रोपचार में दीक्षित करेंगे ..... बस जो लोगों से सुना वह बेहद घृणास्पद है ।"[2]

रिखलीदेई ऐसे लोगों का प्रतिनिधि है जो सर्वदानंद जैसे लोगों के जाल में फंसकर अपने प्यार तक को छोड्कर घृणित कार्य करने के लिए विवश हो जाती है । सर्वदानंद की अपनी एक पत्नी और बच्चे भी थे । फिर भी रिखलीदेई को इस साधना के अंत में शादी करने का वादा भी दिया था, "तंत्र साधना के बारे में आप कुछ नहीं जानते क्या ? तंत्र सिद्ध करने के लिए बहुत सी चीज़ों की ज़रूरत होती है और इस सिद्धि के बाद सर्वदानंदजी मुझसे ठीक तरह से विवाह भी कर लेंगे ।"[3] रिखलीदेई बहुत ही दयनीय स्थिति में पहुंच जाती है । "पंडितजी तो मुझे खरीदकर लाये हैं । फिर यह देवी का मामला है । मैं भी तो डरती हूं । अब तो मैं एक चीज़ भर हूं । जैसा बलि की चीज़ें होती है ।"[4] उसे अपना कामना करने का

---

1. मृगान्तक, पृ·87
2. वही, पृ·88
3. वही, पृ·91
4. वही, पृ·93

अधिकार भी नहीं है । ऐसे में वह बोक्कु साधना को परास्त करने केलिए खुद को ही बरबाद कर देती है । यही इस पात्र की प्रतिक्रिया है। बोक्कु "मृगान्तक" का एक सशक्त पात्र है । बोक्कु बाघ का रूपान्तरण नहीं है । बल्कि मानवीय मन की पशुता का ही साकार रूप है । जब स्वार्थ पशुता का सहारा लेता है तो बोक्कु का जन्म होता है । मनुष्य जब पशु का रूप धारण कर देता है तो उसके सामने सम्बन्धों का कोई मूल्य नहीं रह जाता । नाकछेदा की माँ के द्वारा बतायी गयी कहानी उसको ही स्थापित कर देते हैं, "बुढिया की बडी मौसी ने जिद पकड ली थी कि वह बोक्कु ज़रूर देखेगी । लिहाजा नाना उसे नदी तट पर ले गये । वहाँ उन्होंने उसे एक बडे पेड पर चढा दिया । ..... कुछ देर बाद नाना बोक्कु बन गया । ..... जैसे ही बकरी का कण्ठ अपनी दाँतों से दबाया कि बकरी ज़ोर से चीखी और मौसी धडाम से नीचे आ गिरी । बोक्कु ने उस लड्की का भी खून चूस लिये । जब थोडी देर बाद नाना आदमी बने तो उन्होंने देखा कि उनकी लड्की भी मरी पडी है । वे समझ गये ..... नाना ज़ोर ज़ोर से रोने लगे । पत्थर पर अपना सर फोडने लगे ।"[1] मनुष्य में जब पशुता सवार हो जाता है तो उसे अपने चारों ओर से कोई वास्ता नहीं रह जाता । बोक्कु सिर्फ एक मनुष्य नहीं है । बल्कि संपूर्ण मनुष्य के भीतर छिपी हुई पाशवीयता है । नाकछेदा की माँ कहती है, "सारी दुनिया बोक्कु है मेरे बेटे, बोक्कु" आधुनिक मानव के मन में बढती हुई पाशवीयता का चित्रण यहाँ प्राप्त है । बाघ और बोक्कु में अन्तर भी दिखाया है । बाघ जब ज़रा सा भी खून चख ले तो वह बहुत बडा खतरनाक स्थापित हो सकता है । "बाघ को आदमखोर बनने में ज्यादा देर नहीं लगता । वह ज़रा सा खून चख ले तो फिर वह सारे इलाके के लिए खतरनाक चीज़ बन जायेगा ।

---

1. मृगान्तक, पृ.155

एक ऐसी चीज़ जो तमाम तरह की चालाकियां जानती है और धीरे धीरे राह जाते लोगों को भी उठा सकता है ।"[1] इस प्रकार बोधु के माध्यम से यहां आधुनिक मानव के मन में बसी हुई पशुता की ओर संकेत किया है ।

मणिराम और आत्मानन्द जैसे पात्र जलेड की खोज करने तथा बोधु साधना के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने में सक्षम हुए है । ये दोनों पात्र प्रस्तुत उपन्यास के प्रत्येक पर्त को खोलने में सहायक सिद्ध हुए हैं । मणिराम ने बताया "जानवर और आदमी इसमें कहीं सामना हो सकता है ? फिर भाई आदमी जानवर की दुनिया से उठकर आया है, आदमी बना है । तुम क्यों फिर जानवर के सामने जानवर बन रहे हो ।"[2]

उनकी कहानियों के बारीक अध्ययन से कुछ विशेषतायें नज़र आती हैं । उपन्यासों के समान कहानियों में भी मध्यवर्गीय जीवन की झांकियां प्राप्त हैं । परिवार से बढकर समाज को, उसकी मानसिकता को चित्रित किया है । "मैं" द्रष्टा या भोक्ता के रूप में विद्यमान है । कभी कभी समाज की भीड को भी प्रस्तुत करते हैं । "इन्तजार में घटना, "प्रदर्शन", "इन्दा-फिन्दा", "मैं" भी", जैसी कहानियों में भीड को खडा किया है । बच्चों के प्रति विमलजी के मन में एक प्रकार का आकर्षण था । इसलिए उनकी कहानियों में बच्चों की मानसिकता को उचित स्थान दिया गया है । संक्षेप में विमलजी का कथा साहित्य यद्यपि मध्यवर्गीय जीवन परिवेश तक सीमित है तथापि समाज की बहुत सारी समस्याओं को अपने में समाहित किया हुआ है । यह उनकी समाज सापेक्ष्य रचना दृष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण है ।

---

1. मृगान्तक, पृ.158
2. पहरुए पृ.161

स्वप्न तथा स्मृति चित्रों का प्रयोग

स्वप्न तथा स्मृति का प्रयोग विमलजी की अधिकांश रचनाओं में पाया जाता है । वर्तमान के चित्रण के साथ भूत और भविष्य को जोडने का कार्य इससे संभव होता है । "मैं" उनकी सभी रचनाओं का केन्द्र पात्र है । वह खुद भोक्ता या घटनाओं का साक्षी है । इन घटनाओं को अतीत और भविष्य से जोड़कर तीनों कालों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की श्रृंखला के रूप में स्मृति या स्वप्न का प्रयोग हुआ है । "खोई हुई थाती" कहानी की शुरूआत ही यादों से होती है, "ठेठ बचपन की वह याद आज एक स्वप्न सी लगती है । अविश्वसनीय और आश्चर्य से भरी हुई । ..... मां नाम की उस औरतको मैं ने सिर्फ एक फोटो भर में देखा है ।"[1] मां के द्वारा विरासत के रूप में दिये गए ताबीज़ के खो जाने की कहानी है "खोई हुई थाती" । सम्पूर्ण कहानी स्मृति चित्रों पर आधारित रहती है । "आत्महत्या" नामक कहानी में मूल्य, ईमानदारी, अच्छाई आदि के झूठे स्थापित हो जाने पर आत्महत्या करने के लिए उद्यत आदमी को देखकर "मैं" को पन्द्रह बरस पहले का दिसम्बर 22 याद आता है । यहाँ "धनराज" नामकपात्र को भी कहानी से जोड़कर सामाजिक विडम्बना के और एक पहलू को उजागर करता है । "सपनों का सच" नामक कहानी में सपनों में हमारे देश के सुनहले भविष्य को दिखाकर लेखक अपने मन की प्रतीक्षा को बचाये रखते हैं । "मैं ने सपना देखा कि एक पूरा शहर है जहाँ घर है पर घरों की दीवारें नहीं है । पेड है पर पेडों की जडें नहीं है, लोग है पर लोगों के चेहरों पर दु:ख नहीं ..... ।"[2] "मैं खुद उसके सपने में शामिल हो गया था । मैं भी

---

1. खोई हुई थाती, पृ.9
2. सपनों का सच, पृ.94

देखने लगा कि उस सपनों के देश में लोग सुखी हैं ..... काश हम वैसा ही कुछ यहाँ ले आते ।"[1] सभी उपन्यासों में इसका प्रयोग हम अवश्य देख सकते हैं । "अपने से अलग", "कहीं कुछ और", उपन्यासों में "मैं" और माँ की यादों से ही "पिता" का चित्र उभरता है । जो कभी भी उपन्यास में प्रत्यक्ष नहीं होते है फिर भी सम्पूर्ण उपन्यास को घेरे हुए है । "मरीचिका" में "कफ्फू" पागल का गठन भी इस प्रकार हुआ है । सामाजिक कुरीतियों के प्रति आवाज़ उठानेवाला सशक्त पात्र है "कफ्फू" । मृगान्तक में बोक्कु की असलियत को दिखाने में नाकछेदा की माँ की स्मृतियाँ काफी सहायक हुई है । "सम्पूर्ण संसार बोक्कु है बेटा" कहकर बोक्कु को मानवीय मन में छिपी पाशवीयता से जोडने का सफल कार्य हुआ है । इस प्रकार यादों एवं स्मृतिचित्रों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक उन्होंने किया है ।

प्रतीक्षा, खोज या तलाश का प्रयोग

स्मृति चित्रों के समान प्रतीक्षा, खोज या तलाश भी विमलजी के कथा साहित्य का एक अनिवार्य तत्व है । अपने से अलग उपन्यास में प्रतीक्षा ही कहानी को आगे बढाती है । पिता के साथ सम्बन्ध रखनेवाली महिला से मिलकर सभी समस्याओं से मुक्ति पाने की लालसा ही "माँ" को ज़िन्दा रहने की प्रेरणा देती है । माँ अन्त तक पिता के घर लौट आने तथा सभी समस्याओं के दूर हो जाने की आशा रखती है । असल में प्रतीक्षा की भावना ही उपन्यास को गति प्रदान करती हैं । "अतीत के अन्धकार की गुफ़ा से निकलते हुए लगा था जैसे कुछ दूर पर ही उजाला है ..... लेकिन वह कुछ दूर अन्तहीन हो गया है । वह कुछ दूर काल की

---

1. सपनों का सच, पृ.95

सीमा में कभी नहीं आयेगा । अतीत की गुफा से निकलकर फिर एक अंधेरे में मृगजल के भ्रम में भटक जाना है । जाना है पर कहाँ जाना ।"[1]

जब तक मनुष्य के मन में आस्था है तब तक वह सुरक्षा की खोज करता है । "कहीं कुछ और" में पिताजी के उस पत्र का इन्तज़ार रहता है जिसके साथ पैसे भी आनेवाले हैं । हर दिन सुबह से शाम तक पत्र की प्रतीक्षा बनी रहती है । इसी बीच वे पिताजी की बीमारी की ख़बर फैलाते हैं जो असल में आरोपित है । दरअसल मनुष्य को ज़िन्दा रखनेवाला तत्व प्रतीक्षा ही है । इस मनोविज्ञान का भी प्रयोग यहाँ हुआ है । इन दोनों उपन्यासों में प्रतीक्षा ही कहानी को आगे ले जाती है तो "मरीचिका" एवं "मृगान्तक" में खोज । "मरीचिका" में सन्त भजनसिंह की खोज उपन्यास के आदि से अन्त तक बनी रहती है । अन्त में आकर सन्त भजनसिंह का अस्तित्व मरीचिका बनकर रह जाता है । "मृगान्तक" में बोधु साधना की तलाश ने उपन्यास में रोचकता, भावुकता एवं वास्तविकता प्रदान की है । उपन्यास के समान उनकी कहानियों में भी खोज या तलाश को अभिव्यक्ति शैली के रूप में अपनाते हुए दिखाई देता है । "खोई हुई थाती" नामक कहानी में खोई हुई विरासत की खोज ज़ारी है । "प्रेत" नामक कहानी में प्रेत के पत्र मिलने के बाद उस प्रेत की असलियत की तलाश में "मैं" भटकता रहता है । यह भटकन असल "में" "मैं" के अस्तित्व की ही तलाश है । "आत्महत्या" नामक कहानी में "आत्महत्या" करने केलिए निकले आदमी की तलाश है । "बच्चा" नामक कहानी में एक बच्चे की मृत्यु से अपने अपने बच्चों की तलाश में भटकते हुए लोगों की मानसिकता का चित्रण हुआ है ।

---

1. अपने से अलग, पृ.34

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि विमलजी के कथा साहित्य में तलाश प्रतीक्षा भटकन आदि ने कथ्य के समान शिल्प को भी गतिशील बनाया है ।

संकेतों का प्रयोग

विमलजी के कथा साहित्य में संकेतों का प्रयोग काफी मात्रा में हुआ है । ज्यादातर ऐसे संकेतों का प्रयोग मिलता है जो भारतीय जनमानस में रूढ मूल हो गये हो । चाहे इन संकेतों को ग्रामीण जनता का अन्धविश्वास कहें या उनके जीवन की रीढ की हड्डी ही समझे । विमलजी ने उसे खूब पहचाना है । यहाँ आकर उनके कथा साहित्य वास्तविकता के स्तर को छू लेता है । "अपने से अलग" उपन्यास में छोटे बच्चों के शहर के होस्टल में रहने के बावजूद परिवार की विभिन्न समस्याओं का प्रभाव पडता है । परिवार पूर्णरूप से टूट जाता है । पारिवारिक टूटन का अहसास माँ को पहले से ही होता है । मरी हुई चिडिया एवं उसके फटे हुए पेट और बाहर निकली हुई आतें देखकर माँ अत्यधिक दु:खी होती है और कहती है "हे भगवान यह आनेवाले दिनों की कोई बुरी सूचना तो नहीं है .....मैं पूरी तरह जानती हूँ - जब कभी ऐसा होता है तो किसी भयानक घटना की शुरूआत की सूचना होती है । वह क्या है जो होनेवाला है .... ।"[1]

"मैं" को रात में सपना आया "वह समुद्र स्वप्न था । जैसे मैं एक नीले रंग के समुद्र के किनारे तट पर खडा हूँ । जैसे वह उफनता हुआ समुद्र रंगीन लहरें ले रहा हो । वे विकराल और डरावनी लहरें मुझ तक आती है और मैं जैसे डरकर पीछे भागता हूँ और भागते हुए एक घर में घुस जाता हूँ ।"[2] माँ के मन में भविष्य के बारे में

---

1. अपने से अलग, पृ.70
2. वही, पृ.68

जो डरावनी चिन्ता थी उस से इस सपने का सम्बन्ध है, "मैं पूरी तरह जानती हूँ जब कभी ऐसा होता है तो किसी भयानक घटना की शुरूआत की सूचना होती है । वह क्या है जो होने वाला है ?"[1] वह इतनी खबरा गयी कि उसकी तबीयत भी खराब हो गयी है । बच्चों की "शवयात्रा" खेल और चिड़ियों का मरना आदि से उन्हें अपनी मृत्यु की बात ही सूझी । यह "शवयात्रा" यहाँ संकेत मात्र है । माँ के द्वारा बिछाए गए जाल से परिवार के अन्य सदस्य बच नहीं पा रहे हैं । मध्यवर्गीय झूठी मान्यता एवं गौरव का प्रभाव इन लोगों पर भी पड़ता है । इसे बहुत ही सांकेतिक शब्दावली में चित्रित किया है । "हर चीज़ को हर पुरानी चीज़ को संभालकर रखना संस्कार के असर का सूचक है । पुरानी चीज़ों की उपयोगिता चाहे खत्म हो गयी हो उन्हें रखने की परम्परा के पीछे मन्तव्य है ।"[2]

"मरीचिका" असल में सांकेतिक है । सुख भोग की सुविधायें जुटाने की भागदौड में कभी जाल में फँस जाना स्वाभाविक है । अन्त में आकर पता चलता है कि उसने मृग मरीचिका का ही पीछा कर रहा था । "मरीचिका" का अन्त भी बिलकुल सांकेतिक है । "मैं को खयाल आया कि कहीं वह लकड़ी का आदमी तो नहीं । फिर भी मैं खुश था कि जीते जागते लोगों के न सही स्थितप्रज्ञ सन्तों के दर्शन किए । ..... जितनी जल्दी हो सके मैं उस किले से बाहर निकलने की कोशिश में था । वह एक कैद थी । जहाँ न जाने कितने भजनसिंह गिरफ्तार थे । "..... वहाँ एक नहीं अनेकों सन्त थे । मैं बहुत झंझट में फँसा था । ..... ओह, मेरा क्या होगा । मैं अजीब पेशोपश में पड गया ..... क्या होगा मेरा .....

---

1. कहीं कुछ और, पृ.85
2. वही, पृ.191

..... कहीं इतने ज्यादा सन्तों की मेहरबानी मुझ पर हुई तो मेरा क्या होगा ।"[1]

उसी प्रकार "मृगान्तक" नामक उपन्यास में मनुष्य के अन्दर छिपी हुई पाशवीयता का ही चित्रण हुआ है । और बोक्षु का आदमखोर बन जाना मनुष्य में पाशवीयता के बढ जाने को ही दिखाया गया है । नकछेदा की मां का कथन बोक्षु हिंसा को सीधे जन समाज से जोड देता है । "सारी दुनिया बोक्षु है मेरे बेटे बोक्षु । ..... इन सब लोगों को देख - ये क्या चाहते है मुझ से । बस मैं एक निरीह बकरी की तरह हूं ।"[2]

खोज के बाद "मैं" निराश एवं हताश हो जाता है । "मैं" को अपनी खोज निरर्थक लगने लगी "शायद "मैं" डयरी में लिखूंगा कि अपने अतीत को कभी नहीं खोजना चाहिए । इससे बीभत्स और क्या हो सकता है कि हम किसी के खून के प्यासे हो जाएं । ..... अपने अतीत गौरव के बहाने आदमी हत्यारा हो जाता है ।"[3] हिमलजी की कहानियों में भी संकेतों का खूब प्रयोग हम देख सकते हैं । खंडहर कहानी में लेखक को किसी आदमी को देखकर खंडहर याद आती है । लेखक का कहना है "मैं" खुद हैरान हूं । ..... कि मैं किसी को देख रहा हूं - और वह न दीखकर मुझे कोई दूसरी ही चीज़ नज़र आ रही हो । ..... फिर भी मैं किसी अभिशप्त आदमी की तरह विशाल खंडहर यानी विशाल राजभवन के अन्दर जा पहूंचा । अंदर जाना तो बेहद आसान था, पर एक अन्जान जगह, उस जगह के शिष्टाचार से अपरिचित होकर जाना विचित्र किस्म के हीन भाव से

---

1. मरीचिका, पृ.134
2. वही, पृ.135
3. वही, पृ.149

भर जाना होता है ।"[1] "प्रेत" कहानी का प्रेत एवं उसकी वास्तविकता की तलाश असल में "मैं" के अस्तित्व की ही तलाश है । अपने अस्तित्व पर उसे खुद शंका होती है ।

विमलजी अपने कथा साहित्य में संकेतों का प्रयोग बडी सतर्कता के साथ किया है । कथ्य के सफल प्रस्तुतीकरण में यह काफी सहायक निकला है ।

कथासाहित्य के सन्दर्भ में विमलजी की भाषा

विमलजी की भाषा शुद्ध एवं स्पष्ट है । सरल संस्कृत शब्दों से युक्त साहित्यिक हिन्दी का ही प्रयोग हम उनकी रचनाओं में देख सकते हैं । "माँ पहले जहाँ खडी थी उसी दीवार के पास सरककर वे लकडी की चौकी पर बैठ गयी । उनके चेहरे से लगता था जैसे कोई बडा पश्चाताप उन्हें हो, सूखा और उदास चेहरा ।"[2] विमलजी की भाषा कहीं कहीं शुद्ध साहित्यिक दीखता है । "अपने से अलग", "कहीं कुछ और" जैसे प्रारंभिक उपन्यासों में उनके पात्र शुद्ध साहित्यिक भाषा ही बोलते नज़र आते हैं । लेकिन "मरीचिका" के भ्रान्तिजन्य परिस्थितियों के गढन में उनकी भाषा भी सहायक सिद्ध हुए हैं । मृगान्तक तक आते आते उनकी भाषा काफी सुस्पष्ट होती दिखाई पडती है । उनकी प्रारंभिक रचनाओं में विवरणात्मक एवं शुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है । "वह पत्र मैं ने माँ को बताया, तो माँ क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गई । क्षण भर इसलिए कि दूसरे ही क्षण उन्होंने मेरी तरफ देखा था । वह देखना था या

---

1. खोई हुई थाती - खण्डहर, पृ.101
2. अपने से अलग, पृ.39

कुछ और - क्यों कि मा का चेहरा एकदम बुझा - बुझा सा रक्तहीन था ।"[1]

भाषा की शुद्धता पर कर्कशता रखने के कारण शुरू की रचनाओं में भाषा बोझीली लगती है । लेकिन बाददाली रचनाओं में भाषा परक शुद्धता की उतनी जबरदस्ती नहीं दीखती । यहाँ आकर भाषा काफी लचीली हो गयी है । विषय के अनुसार सक्षम भाषा का प्रयोग ही इसमें हुआ है । शिल्प के नवीन प्रयोग के साथ संप्रेषणशील नवीन भाषा गढन भी हुआ है । इनके नवीन शैल्पिक प्रयोगों में संकेतों का प्रयोग काफी हुआ है । इसके लिए सांकेतिक एवं संश्लिष्ट भाषा का होना अनिवार्य है । पर कथासाहित्य में कभी कभी भ्रान्ति-जन्य परिस्थितियों एवं चरित्रों का चित्रण भी हुआ है । इसे फैन्तासी नहीं कहा जा सकता । फिर भी फैन्तासी के निकट की एक भ्रमात्मकता या दुरूहता पायी जाती है । संक्षेप में विमलजी की रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह सरल एवं संस्कृत शब्दों से युक्त साहित्यिक भाषा का है । इसलिए कथ्य पक्ष के सरल प्रस्तुती-करण में वे कामयाब भी निकले हैं ।

इस अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो उठती है कि विमलजी किसी लीक को पीटनेवाला रचनाकार नहीं, चाहे वह कथ्य के क्षेत्र में हो या संरचना के । वे अपना रास्ता स्वयं बनाकर आगे बढ़ने में सक्रिय हैं । कविता के सन्दर्भ में यद्यपि वे "अकविता" से जुड़कर साहित्य जगत में आए है, तथापि रचनाधर्मिता के बहुआयामी सन्दर्भों से गुज़रकर उन्होंने अपनी रचना को बहुत विशाल बना दिया ।

---

1. अपने से अलग, पृ·38

उस में नई कविता, अकविता और समकालीन कविता की संरचनात्मक खूबियाँ एवं खामियाँ उपलब्ध हैं । उसी प्रकार कथा साहित्य के क्षेत्र में भी वे प्रयोगधर्मी रहे हैं । हर कथा को अपनापन के साथ प्रस्तुत करने में वे हमेशा सतर्क रहे हैं । इसलिए उनके संरचना पक्ष की तुलना अन्य किसी रचनाकार के संरचना पक्ष से करना नामुमकिन है । क्यों कि उसमें विमलजी का एक विशेष संस्पर्श अवश्य रहता है । इसलिए हर रचना अपने आप में अलग तथा नयी रह जाती है । यह नयापन निस्सन्देह उनके रचनात्मक कथ्य एवं संरचनात्मक तत्त्वों के अनोखे मिलन का परिणाम है ।

उपसंहार

उपसंहार

रचना रचनाकार की जीवन्तता का लक्षण है । उसने जीवन में जो कुछ अनुभव किया है उसको संप्रेषित करने का सशक्त माध्यम है रचना । इसलिए रचना उनकी सक्रियता एवं जीवनदृष्टि की मापिनी भी है । दिमल की रचनाएं उनकी जीवनदृष्टि एवं जीवन-संघर्ष का सही दस्तावेज़ ही है । बचपन से ही अभाव-ग्रस्त जीवन परिस्थितियों से गुज़रते हुए उन्होंने जीवन की वास्तविकता का सही परिचय प्राप्त किया था । इसलिए ज़िन्दगी भर उन्हें संघर्ष के रास्ते से आगे बढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई । अत: उनका निजी व्यक्तित्व एवं रचनाकार व्यक्तित्व अभिन्न है । ज़िन्दगी के तीक्ष्ण अनुभवों से उनका व्यक्तित्व रूपायित हुआ । उसकी प्रतिछवि उनकी रचनाओं में भी अभिव्यक्त हुई है । इसलिए उनका साहित्य अपने ही जीवन का तथा अपने समाज के बहुतों के जीवन - यथार्थ का लेखा-जोखा बन गया है ।

जैसे जीवन में वे विद्रोही रहे वैसे साहित्य जगत में भी सही मायने में दिमल विद्रोही है । हिन्दी कविता के क्षेत्र में जितने आन्दोलन हुए हैं उन सबसे अलग रहकर, पर सबकी खूबियों को अपनाते हुए अपनी एक अलग राह बनाने में दिमल सफल निकले हैं । सन् साठ के बाद साहित्य जगत में उनका प्रवेश हुआ । शुरू में वे साहित्यिक आन्दोलन से जुड़े रहे । उसके बाद कविता के क्षेत्र में ही बीसों छोटे-मोटे आन्दोलन हुए है और विलीन भी । पर

विमल ने महसूस किया कि रचनाकार का फर्ज अपने को, अपने अनुभूत को तथा स्वयं देखे-समझे गए सत्य को ईमानदारी के साथ संप्रेषित करना ही है, न कि गुटबन्दी में शामिल होना । साहित्य दरअसल सत्य का संप्रेषण है । उसमें गुटबन्दी सच्चाई की अभिव्यक्ति में अदृश्य घातक सिद्ध होगी । इसलिए विमलजी की कविताओं के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उनका काव्य अपने गहन जीवनानुभवों की तपिश से खरा उतरा हुआ है ।

कथा साहित्य के सन्दर्भ में भी विमल की मानसिकता कवि मानसिकता से भिन्न नहीं है । पर कथा साहित्य का कैनवास विशाल होता है । इसलिए अपने अनुभवों को काफी प्रखरता के साथ संप्रेषित करने में वे सफल भी निकले हैं । विमल का रचनाक्षेत्र मध्यवर्गीय जीवन परिस्थितियों एवं जीवनानुभवों से सम्बद्ध है । क्यों कि वह क्षेत्र खुद उनका अपना है तथा अपने लिए काफी परिचित भी । इसलिए पूरे साहित्य में मुख्य रूप में मध्यवर्गीय जीवन-परिस्थितियों की खामियों एवं खूबियों का ही चित्रण हुआ है । यह उनकी सृजनात्मकता की कोई कमी नहीं है बल्कि उसकी ईमानदारी को सूचित करनेवाला तथ्य है आलोचना एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनका योगदान चिरस्मरणीय है । वे सूक्ष्म आलोचक थे, कुशल सम्पादक तथा क्रांतदर्शी पत्रकार भी ।

कहने का मतलब यह हुआ कि विमल एक ऐसा रचनाकार है जो अपने वैयक्तिक जीवन में, सारस्वत साधना के क्षेत्र में लीक से हटकर चले हैं तथा सब कहीं अपनी वैयक्तिक एवं लेखकीय अस्मिता को बनाये रखने में दत्तचित्त भी रहे हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

विमल का साहित्य

कविता

1.	त्रिजप	डॉ. गंगाप्रसाद विमल राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अनसारी, दरियागंज, दिल्ली-6, प्र.सं.1967
2.	बोधिवृक्ष	प्रतिमान प्रकाशन, नई दिल्ली-6, प्रथम संस्करण, 1983
3.	इतना कुछ	किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.1990
4.	सन्नाटे से मुठभेड	किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.1994
5.	मैं यहाँ हूँ	किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.1996

उपन्यास

6.	अपने से अलग	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1969
7.	कहीं कुछ और	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र.सं.1971

8. मरीचिका — राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली । प्र.सं.1973

9. मृगान्तक — लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं.1978

कहानियाँ

10. अतीत में कुछ — भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन बी/45-47, कनाट प्लेस प्र.सं.1972

11. कोई शुरूआत — राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 8, फौजबाज़ार दिल्ली-6 प्र.सं.1973

12. इधर उधर — पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, दिल्ली, प्र.सं.1980

13. बाहर न भीतर — आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1981

14. चर्चित कहानियाँ — सामयिक प्रकाशन, 3543 जरदाडा, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.1993

15. गोई हुई थाती — किताबघर, 24, अनसारी रोड, नई दिल्ली, प्र.सं.1993

16. इन्तजार में घटना — आसेतु प्रकाशन, 274, राजधानी एन्क्लेव, रोड नं.44, पीतम पुरा, दिल्ली, प्र.सं.1993

आलोचनात्मक ग्रन्थ

17. समकालीन कहानी का रचना विधान
सुषमा पुस्तकालय,
नई दिल्ली, प्र.सं.1960

18. प्रेमचन्द (पुनर्मूल्यांकन) राजकमल प्रकाशन,
8, फौज बाज़ार, दिल्ली-6,
प्र.सं. 1967

19. आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में
दि मैकमिलन कंपनी इण्डिया लि.,
नई दिल्ली, प्र.सं.1978

संपादित ग्रन्थ

20. गजानन माधव मुक्तिबोध का रचना संसार
सुषमा पुस्तकालय, नई दिल्ली,
प्र.सं. 1967.

21. अज्ञेय का रचना संसार दि. मैकमिलन कंपनी प्रा.लि.
नई दिल्ली, प्र.सं.1974

22. आधुनिक कहानी दि.मैकमिलन कंपनी प्रा.लि.
नई दिल्ली, प्र.सं.1974

सहयोगी सम्पादन

23. अभिव्यक्ति राजपाल एण्ड सन्स,
नई दिल्ली. प्र.सं.1964

24. सर्वहारा के समूहगान — जन साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1979

25. नागरी लिपि की वैज्ञानिकता — नागरी लिपि परिषद, काशी, प्र.सं.1987

26. अकविता और कलासन्दर्भ - श्याम परमार — कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं.1968

27. आज का हिन्दी उपन्यास-डॉ.इन्द्रनाथ मदान — राजकमल प्रकाशन, 8, फौज बाज़ार दिल्ली-6, प्र.सं.1966

28. आधुनिक हिन्दी काव्य - कुमार विमल — अर्चना प्रकाशन, प्र.सं.1969

29. आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य - इन्द्रनाथ मदान — राधाकृष्ण प्रकाशन, 2, अनसारी रोड, प्र.सं.1978

30. इतिहास हँता — जगदीश चतुर्वेदी — जगतराम एण्ड सन्स, प्र.सं.1982

31. उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान — डा. दंगल झाल्टे — वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1987

32. कविता और मूल्यसंक्रमण — डॉ. कमलेशगुप्त — प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.1985

33. कविता की तीसरी आँख - प्रभाकर श्रोत्रिय
नाशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली. प्र.सं.1980

34. कविता की मुक्ति डा. नन्दकिशोर नवल
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1980

35. कवितांतर डा.जगदीश गुप्त
रामबाग कानपूर, प्र.सं.1975

36. कहानी नयी कहानी नामवर सिंह
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं.1966

37. छायावाद डा. रवीन्द्र भ्रमर
राजकमल प्रकाशन, फौज बाजार,
नई दिल्ली, प्र.सं.1970

38. छायावाद सं. डा.उदयभानु सिंह
समसामयिक प्रकाशन, दिल्ली

39. छायावाद ऐतिहासिक सामाजिक विश्लेषण
नामवर सिंह
सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र.सं.1977

40. छायावाद का सौन्दर्यशास्त्री अध्ययन
डा.कुमार विमल
राजकमल प्रकाशन, फौज बाजार,
दिल्ली, प्र.सं.1971

41. छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य
डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
प्र.सं.1968

42. तारसप्तक
सं.अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,
द्वि.प्र.1966

43. दस्तावेज
जगदीश चतुर्वेदी
वसुन्धरा पब्लिशिंग हाउस
इन्द्रपुरी, नई दिल्ली, प्र.सं.1980

44. दिशान्तर
डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव
डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
अनुराग प्रकाशन, वाराणसी,
प्र.सं.1971

45. द्विवेदी युगीन खण्डकाव्य - डॉ. सरोजिनी अग्रवाल
सुलभ प्रकाशन, प्र.सं.1987

46. नई कविता
सं.डा. जगदीश गुप्त
डा. विजयदेव नारायण साही
किताबघर, इलाहाबाद,
प्र.सं.1964

47. नई कविता और अस्तित्ववाद - राम विलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.197

48. नई कविता का आत्मसंघर्ष- गजानन माधव मुक्तिबोध
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर
प्र.सं.1964

49. नयी कहानी की भूमिका कमलेश्वर
शब्दकार, 2203, गली उकीलान
तुर्कमान गेट, दिल्ली, प्र.सं.1978

50. नई कविता का इतिहास - डा.बैजनाथ सिंहल
संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1977

51. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र - गजानन माधव
भारतीय ज्ञानपीठ,प्रकाशन,काशी
प्र.सं.1960

52. नई कविता की भूमिका डा.प्रेमशंकर
नाशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली, प्र.सं.1988

53. नई कविता में मूल्यबोध शशि सहगल
अभिनव प्रकाशन, प्र.सं.1976

54. नई कविता नई आलोचना और कला - कुमार विमल
भारतीय भवन, प्र.सं.1983

55. नयी कविता, नये कवि विश्वंभर मानव
लोकभारती प्रकाशन, द्वि.सं.1968

56. नयी कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि
डा. उषा चौहान
विमलेश पुस्तक भण्डार, दिल्ली,सं.1990

57. निराला की साहित्य साधना द्वितीय खण्ड
डा. रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1972

58. नयी कहानी उपलब्धि और सीमाएँ
डा.गोरखसिंह शेखाल
राम पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

59. फिलहाल — अशोक वाजपेई राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली, प्र.सं.1970

60. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास
भूपसिंह भूपेन्द्र
श्याम प्रकाशन, फिल्म कालोनी,
जयपुर, प्र.सं.1987

61. मेरे समय के शब्द — केदारनाथ सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1993

62. रचना और आलोचना — देवीशंकर अवस्थी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,

63. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि
डा. धनंजय
अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्र.सं.1970

64· समकालीन साहित्य : एक नई दृष्टि
इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1977

65· समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य विश्लेषण
डा· प्रेमकुमार
इन्दु प्रकाशन, अलीगढ, प्र·सं·1983

66· साहित्य संबन्धी कुछ विचार - प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, वर्तमान सं·1981

67· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डा·कान्तिवर्मा
रामचन्द्र एण्ड कम्पनी, दरियागंज,
नई दिल्ली, प्र·सं· 1966

68· स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य -
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत
सरकार, प्र·सं·1997

69· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - डा· रामकुमार गुप्त
हिन्दी साहित्य परिषद,
अहमदाबाद, प्र·सं·1989

70· हिन्दी उपन्यास डा· सुषमा धवान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र·सं·1961

71· हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ - लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र·सं·1970

72. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
द्वि,प्र.1982

73. हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह - डा. मनमोहन सहगल
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली
प्र.सं.1973

74. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग - डॉ.त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी,
प्र.सं.1973

75. हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन
डॉ. लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री
प्रतापचन्द जैसवाल,
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा,प्र.सं.1961

76. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - सं.प्रभाकर श्रोत्रिय
मैकमिलन क.लि. प्र.सं.1978

77. हिन्दी कहानी अपनी जबानी - इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1968

78. हिन्दी कहानी एक अंतरंग परिचय - श्री. उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

79. हिन्दी कहानी का इतिहास - डा. लालचन्द गुप्त "मंगल"
संजीव प्रकाशन, कुरुक्षेत्र,प्र.सं.1988

80. हिन्दी नवलेखन — रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी
प्र.सं.1960

81. हिन्दी लघु उपन्यास — घनश्याम "मधुप"
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1971

82. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास — बच्चन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
प्र.सं.1996

83. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा,
बीसवीं संस्करण 1988

84. हिन्दी साहित्य का इतिहास — सं.डा.नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं.1973

पत्र-पत्रिकाएं

85. आजकल — संपादक मन्मथनाथ गुप्त
1965 फरवरी

86. आजकल — अगस्त 1972
(स्वतंत्रता रजत जयन्ती विशेषांक)

87. आजकल — संपादक केशवगोपाल निगम

88.	आलोचना त्रैमासिक	संपादक नामवरसिंह 1968 सितम्बर
89.	आलोचना त्रैमासिक	जनवरी-मार्च 1986
90.	कल्पांत	दिल्ली का निर्भीक एवं निष्पक्ष साप्ताहिक, 1992 फरवरी 7
91.	नई धारा	जून-जुलाई 1975 ‍(सं. उदयराज सिंह)
92.	नई धारा	जून-जुलाई 1984
93.	भाषा त्रैमासिक	संपादक जगदीश चतुर्वेदी मार्च 1980
94.	भाषा त्रैमासिक	सितम्बर 1982
95.	वागर्थ	भारतीय भाषा परिषद अगस्त 1997
96.	समकालीन साहित्य समाचार - सं. जगतराम आर्य	भाषा साप्ताहिक, सितम्बर 1992
97.	समीक्षा त्रैमासिक	सं. देवेन्द्र शर्मा जुलाई -अगस्त 1972
98.	समीक्षा त्रैमासिक	सितम्बर 1974
99.	समीक्षा त्रैमासिक	अक्तूबर 1975